Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SATVIK JEEVAN

1941 G.K.U.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112919

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

सत्वं सुरवे सज्ञ्र याति

सात्विक जीवन

इस वर्ष (वेद) मे ?? अङ्क नही है 12वां अङ्क प्रकाशित ही नहीं हुआ

(9)

[इस अङ्कका मूल्य आठ आना

सम्पादक— महेन्द्र नाथ वर्मा

. २ अङ्क १]

B. C. PONNAPPA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

२ आक्टूबर सन् १९४९ ई॰ को ... प्राप्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात्विक जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त कुछ

विशिष्ट सम्मतियां

माननीय श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन

'सात्विक जीवन' के चार अङ्क मुझको मिले। मैंने इन अङ्कोंको देखकर यह समझा है कि जीवनमें पवित्रता लाना 'सात्विक जीवन' का ध्येय है....मैं पत्रका हृदयसे स्वागत करता हूं।

सम्पादक, आर्य महिला

'सात्विक जीवन' का जन्म भारतके उज्ज्वल भविष्यका द्योतक है – इसकी शैशवकालीन आभा हमें इस बातका पूर्ण विश्वास दिलाती है। हम हृदयसे इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि चाहते हैं।

श्रीबृजलाल बियाणी, अकोला

'सात्विक जीवन' जैसे पत्रोंकी देशको अत्यन्त आवश्यकता है। मैं 'सात्विक जीवनकी हृदयसे प्रगति चाहता हूं। मुझे आशा है कि 'सात्विक जीवन' अपने ध्येयकी प्राप्तिमें सफल होगा।

आचार्य अभयदेवजी गुरुकुल कांगड़ी

आपका पत्र बहुत उपयोगी बातोंको बतानेवाला होता है और मनुष्यको उच्च जीवनकी तरफ प्रेरणा देनेवाला होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

112919
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
112919

श्री युगलकिशोर बिड़ला

** पत्रको देखनेसे पता चलता है कि कई लेख विशेष हितकर और आर्य संस्कृति के गौरवको प्रकट करनेवाले हैं। आपका उद्योग प्रशंसनीय है। मुझे आशा है कि आपके पत्र द्वारा अधिकाधिक आर्य संस्कृतिके तथा गौरवका विस्तार होता रहेगा।

पं० ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्य, मालिक अमृतधारा, लाहौर

'सात्विक जीवन' देखकर प्रसन्नता हुई, क्योंकि केवल सदाचार सम्बन्धी पत्र देखनेमें नहीं आये। पत्र सदा उन्नति करे – ऐसी हमारी कामना है।

मूल्य प्रति अंक ।), वार्षिक ३), पुस्तकालयों, विद्यालयों तथा छात्रोंसे २)

प्रकाशक—

सात्विक जीवन कार्यालय

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकोंसे निवेदन

गत वर्ष विजया दशमीके अवसरपर श्री मनसुखराय मोरकी प्रेरणासे सात्विक जीवनका प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था और तबसे आज तक यह मानव समाजकी अधिकाधिक सेवा करता आ रहा है। इसका सारा श्रेय श्री मनसुखराय मोरको ही है। पीछे हमारे पाठकोंने तथा और भी सज्जनोंने हमको राय दी कि इसका प्रकाशन मासिक होना चाहिये, क्योंकि साप्ताहिक होनेसे ऐसे उपयोगी पत्रकी फाइल रखनेमें असुविधा होती है। श्री मनसुखराय मोरकी भी यही इच्छा हुई। उसके बाद उन्हींकी प्रेरणासे इसका विशेषांक निकालनेका भी निश्चय हुआ और तब यह तै किया गया कि विशेषांकके बादसे ही इसको मासिकका रूप दे दिया जाये। अतः अब पाठकोंके पास यह अपने नये रूपमें ही पहुंचा करेगा। हम आशा करते हैं कि जिस प्रकार हमारे पाठकोंने इसको गत वर्ष अपनाया उसी प्रकार आगे भी अपनायेंगे जिससे उत्साहित और अनुप्राणित होकर हम पाठकोंकी अधिकसे अधिक सेवा करनेमें समर्थ हो सकें।

रलियाराम गुप्त
प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची

	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	सदाचार शिक्षण (कविता)	पं० अयोध्यासिंह —उपाध्याय 'हरिऔध'	१
२	आत्मसंयम	महात्मा गान्धी	२
३	वेदान्त क्या है ?	श्री स्वामी शिवानन्द	३
४	ब्रह्मचर्य	श्री जयदयाल गोयेनका	५
५	भारतीय संस्कृतिकी विशेषता	—श्री युगल किशोर बिड़ला	९
६	असम्प्रदान (कहानी)	पं० अम्बिका प्रसाद —वाजपेयी	१०
७	भस्त्रा प्राणायामकी विशेष विधि	—पं० ठाकुरदत्त शर्मा	१३
८	धार्मिक जीवन ही सफल जीवन है	—श्री हारान चन्द्र भट्टाचार्य	१४
९	वास्तविक धर्म और हमारा जीवन	—श्री गंगाप्रसाद भौतिका	१५
१०	सात्विक जीवन	श्री भोलेबाबाजी महाराज	१७
११	शक्तियोग	राजगुरु हरदत्त शास्त्री	१९
१२	मानव जीवनमें धर्मका स्थान	—राय बहादुर रामदेव चोखानी	२२
१३	मनकी पवित्रता	श्री पद्मपत सिंहानिया	२४
१४	अहिंसाकी वास्तविक व्याख्या	—श्री घनश्याम दास बिड़ला	२५
१५	लोकोत्तर दार्शनिक शंकर	—प्रो० माहेश्वरी सिंह 'महेश'	२७
१६	ब्रह्म और जीवकी स्थिति	—श्री स्वामी करपात्रीजी	२९
१७	शान्ति कैसे प्राप्त हो ?	पं० उदयनारायण त्रिपाठी	३१
१८	सदाचरणका महत्व	श्री 'सुमन' शेखपुरी	३३
१९	कर्मयोग ही सर्वश्रेष्ठ योग है	—श्री आर० सी० दत्त	३५
२०	भक्तिका महत्व	श्री स्वामी योगानन्दजी	३६
२१	उपवास करनेवालोंसे निवेदन	—श्री रामचन्द्र वर्मा	३८
२२	माता-पिताओंका कर्त्तव्य	श्री वामन —चिन्तामणि तवकर	३९
२३	योगिराज अरविन्दके विचार	सङ्कलित	४१
२४	जीवन	पं० नारायणदत्त त्रिपाठी	४४
२५	मनको संयमित रखनेका साधन	—पं गोरखनाथ शास्त्री	४५
२६	मौनावलम्बनसे शक्तिकी वृद्धि	—श्री अमरनाथ कौशिक	४६
२७	साम्यबुद्धिकी श्रेष्ठता	श्री रामगोपाल मोहता	४७
२८	गृहस्थ जीवनकी सफलता	श्रीरामेश्वर सिंह	४९
२९	त्याग किसका और कैसे ?	श्री विष्णु —गोपाल शास्त्री	५०
३०	वेदान्त-रहस्य	श्री स्वामी रामाश्रमजी —परमहंस	५२
३१	उषःपानका हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव	—पं० लक्ष्मी प्रसाद पाण्डेय	५६
३२	कब और क्या खाना चाहिये	पाण्डेय —पराशर भट्टाचार्य	५९
३३	सुख	श्री दानबिहारीलाल शर्मा	६२
३४	कर्मका रहस्य	प्राप्त	६४
३५	ब्रह्मचर्य ही शक्ति है	प्रो० रमेश शर्मा	६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	लेखक	पृष्ठ
३६ आहारसे ब्रह्मचर्यका सम्बन्ध	श्री स्वामी —शिवानन्दजी	६९
३७ फलाहारसे लाभ	श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा	७३
३८ ब्रह्मका स्वरूप	श्री हीरेन्द्रनाथ दत्त	७५
३९ जीवन-स्रोत तथा स्वास्थ्य	प्रो० भवानी प्रसाद	७७
४० प्राणायामसे स्वास्थ्य तथा आयुकी वृद्धि	—श्री स्वामी सर्वानन्द	७९
४१ सिगरेटका विष	श्री डाक्टर ज्ञानचन्द्रजी	८२
४२ योग तथा उसका उपयोग	श्री बालकराम शास्त्री	८६
४३ वैदिक सत्यसुख	पं० गोपालचन्द्र मिश्र	८९
४४ सच्चा सुख कहाँ है ?	श्री विष्णु प्रसाद राय	९३
४५ उन्नतिका एकमात्र साधन	श्री जयकृष्ण दास —अग्रवाल	९५
४६ शान्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन	श्री तुलसीराम —सरावगी	९७
४७ सदाचार तथा दीर्घजीवन	श्री कमलधारी —सिंह 'कमलेश'	९८
४८ रामराज्य	पं० रामशंकर त्रिपाठी	१००
४९ हमारा परम कर्तव्य	श्री मनसुखराय मोर	१०१
५० उपवास करनेसे लाभ	श्री हलियाराम गुप्त	१०२
५१ गोदुग्ध तथा हमारा स्वास्थ्य	श्री छोटेलाल — कानोडिया	१०४
५२ संसारके तत्ववेत्ताओं पर उपनिषदोंका प्रभाव	— श्री पं० अयोध्या प्रसाद	१०५
५३ मन और उसका निग्रह	पं० रघुनन्दन शास्त्री	१११
५४ धर्मका साधक	महामहोपाध्याय पं सकल —नारायण शर्मा	११३
५५ सफलताका साधन	पं० जगन्मोहन शुक्ल	११३
५६ सम्पादकीय		११४

उद्देश्य और नियम

१—'सात्विक जीवन' प्रत्येक सौर मासकी १५ तारीख तक प्रकाशित होता है।

२—'सात्विक जीवन' में ब्रह्मचर्य, सदाचार, स्वास्थ्य, आरोग्यता, दर्शनशास्त्र, आध्यात्मिक आख्यायिकाओं, भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं तत्सम्बन्धी विषयोंपर गवेषणापूर्ण लेख रहते हैं।

३—समस्त मानव-समाजको अधिकाधिक उन्नत और विकसित करना ही इसका ध्येय है।

४—यह सदाचार एवं सात्विक वृत्ति द्वारा मनुष्य-जीवनको सफल बनानेका प्रचार करेगा।

५—प्रकाशित लेख प्रमाणित एवं अनुभूत होंगे। केवल विचार-पूर्ण लेख ही प्रकाशित किये जायेंगे।

६—विद्वानों, विशेषज्ञों, मनोविज्ञानवेत्ताओं एवं अनुभवी डाक्टरोंके विचारपूर्ण लेखोंकी व्यवस्था है, जिससे मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक शक्तिकी वृद्धि करे।

७—किसी भी अवस्थामें गन्दे, अश्लील, साम्प्रदायिक, किसी धर्म, व्यक्ति अथवा जातिपर आक्षेप करनेवाले लेख नहीं प्रकाशित किये जायेंगे।

८—लेखको काटने-छांटने तथा छापने नछापनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है।

९—अप्रकाशित हस्तलिपियां प्रेषककी ओरसे आवश्यक टिकट मिलनेपर ही वापस की जायेंगी।

१०—लेखादि सम्बन्धी पत्र सम्पादकको और व्यवस्था सम्बन्धी व्यवस्थापकको लिखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामचतुष्टय

No. 288.

THE GITA PRESS, GORAKHPUR.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered No. C. 2773.

संरक्षक—
श्री मनसुखराय मोर

सत्वं सुखे सञ्जयति

सात्विक जीवन

B. C. PONNAPPA.

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत् ॥

वर्ष २ } कलकत्ता विजयादशमी (सौर-आश्विन) १९९८ { अंक १

सदाचार शिक्षा

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

आंखसे आंसू क्यों निकले ।
क्यों न तिमिर में दिव्य ज्योति उसकी दीपक सा बले ।
जो निकले तो उसकी बूंदें मुक्तावलि सी लसी ।
बने हार उस वीर कण्ठ का जो होवे साहसी ।
तार बँधे उसकी धारायें हों इतनी बलवती ।
वह जाये प्रवाह में जिसके पाशव व्रतका व्रती ।
बरौनियोंके नोकोंमें जो वह दिखलायी पड़े ।
तो उसको अवलोक पातकीके रोयें हों खड़े ।
जो कोई कपोल उसके गिरनेसे विलसित सा बने ।
तो ममता मय मानस नभमें चारु चांदनी तने ।
और कुछ अधिक आगे बढ़ जो वह मिट्टीमें मिले ।
तो उसको अवलोक कलेजा पाहन सा भी हिले ।
सलिल को न वह रोक सकेगा दुख जायेंगे हरे ।
फिर क्यों नहीं नयन नय नत रह विनयन भाजन भरे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मसंयम

महात्मा गान्धी

अपने कामको पाप माननेवाले भी बार-बार यह आग्रह करके कि उनके उस कामका समाजसे कोई सम्बन्ध नहीं है पापमें इतने फंस जाते हैं कि अपने पापको पाप माननेमें भी उन्हें सन्देह होने लगता है एवं उसी पापका वे प्रचार करने लगते हैं। पाप छिपा नहीं रह सकता किन्तु उस पापका जहर सारे समाजमें फैलता है। इसका यह अर्थ होता है कि गुप्त पापसे समाजको बड़ी हानि पहुंचती है।

इसका उपाय केवल आत्मसंयम ही है। कायदा कानून बनाकर इसे नहीं रोका जा सकता। इसीलिये अविवाहितोंके सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यके पक्षमें लोकमत तैयार करना परमावश्यक है, जो लोग अपनी विषयेच्छापर इतना काबू नहीं रख सकते हैं उनके लिये विवाह करना आवश्यक है और विवाहके बाद अतिशय संयमके साथ उन्हें जीवन बिताना चाहिये।

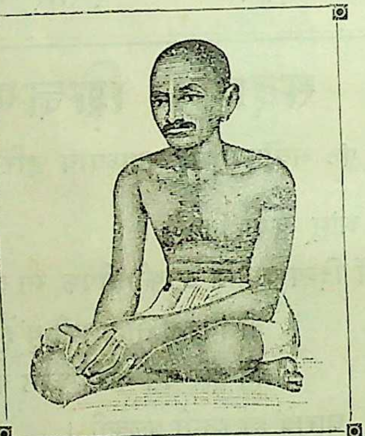

परन्तु कितने लोग ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मचर्यसे स्त्री-पुरुषके स्वास्थ्यको हानि पहुंचती है और यह कहना कि ब्रह्मचर्य पालन करो उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर और इस हक पर कि वे अपने इच्छानुसार सुखसे जीवन बितायें, असह्य आक्रमण है। विषयेच्छा भी नींद और भूख जैसी कोई वस्तु नहीं है कि जिसके बिना आदमी जी ही न सके। अगर हम नहीं खाये तो कमजोर हो जायेंगे, अगर सोयें नहीं तो भी बीमार पड़ेंगे, और अगर शौचको रोकें तब कई बीमारियां होंगी किन्तु विषयेच्छाको तो हम खुशीसे रोक सकते हैं और इस इच्छाको रोकनेकी ताकत भी भगवानने ही हमें दी है। आज कल विषयेच्छा स्वाभाविक इच्छा कही जाती है, इसका कारण यह है कि आजकलकी हमारी सभ्यतामें कितनी एक ऐसी उत्तेजक बातें भरी पड़ी हैं जिनसे हमारे युवक युवतियोंमें यह इच्छा समयसे पहिले ही जाग्रत हो जाती है।

विषय-सम्बन्धी सभी उत्तेजक बातें इच्छाको अधिक प्रबल कर देती हैं। उन बातोंसे बचनेका फल यह होता है कि उनका प्रभाव मन्द हो जाता है और इस प्रकार इच्छा धीरे-धीरे कम हो जाती है। युवक लोग यह समझते हैं कि विषय-निग्रह करना एक असाधारण काम है और इसीलिये असम्भव है किन्तु वे लोग जो स्वयं संयमसे रहते हैं, सिद्ध करते हैं कि पवित्रताका जीवन तन्दुरुस्ती बिगाड़े बिना भी बिताया जा सकता है।

सर जेम्स पैगटकी धारणा है कि पवित्रतासे जिस प्रकार आत्माको क्षति नहीं पहुंचती, उसी प्रकार शरीरको भी नहीं—और इन्द्रिय-संयम सबसे उत्तम आचरण है। डाक्टरपेटियर कहते हैंकि पूर्ण संयमके बारेमें यह कल्पना करना कि वह खतरनाक है—बिलकुल गलत ख्याल है और उसको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि यह बच्चोंके ही मनमें घर नहीं करता है बल्कि उनके माता-पिताओंके भी। अगर संसारमें हम ब्रह्मचारियोंकी ओर देखें तो वे किसीसे न तो चरित्र बलमें कम हैं, और न संकल्प बलमें; शरीर बलमें तो जरा भी कम नहीं हैं। वे यदि विवाह भी करें तो गृहस्थ-धर्मके पालनकी योग्यता में भी वे दूसरोंसे कुछ भी कम नहीं हैं। शरीरके साधारण बढ़ावके लिये पूर्ण संयमका पालन परमावश्यक है। इसलिये वयः प्राप्त युवक अपने बलका जितना अधिक संयम कर सकें, उतना ही अच्छा है क्योंकि उस उम्रमें बचपनकी बनिस्बत रोगको रोकनेकी शक्ति कम होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदान्त क्या है ?

श्रीमत् परमहंस स्वामी शिवानन्द सरस्वती

वेदान्त कहते हैं ब्रह्मज्ञानको। ब्रह्मज्ञानके जिज्ञासुके लिये उपनिषदोंका स्वाध्याय करना अत्यावश्यक है। उपनिषदोंके स्वाध्यायके समय आपको ऐसे जिज्ञासुओंके अनेक उदाहरण मिलेंगे, जो पूर्ण निष्ठाके साथ ब्रह्मकी खोजमें तत्पर थे। नचिकेताको पराज्ञानकी प्राप्ति यमसे हुई थी। कबन्धि, सत्यकाम, सुकेश आदिने ब्रह्मज्ञान-प्राप्त्यर्थ पिप्पलादकी शरण ली थी और पूर्ण निष्ठा रखनेके कारण उनको अपने उद्देश्यमें सफलता प्राप्त हुई थी।

इस शरीर रूपी दृढ़ दीवाल और सन्दूकके अन्दर आत्मा-रूपी रत्न पड़ा है। इस आत्माको पांच परदोंने आच्छादित कर रखा है। ये परदे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय नामक पांच कोश हैं। यदि आत्मतत्वको जानना है तो इन पंचकोशोंको पार करना पड़ेगा। इनको पार किये बिना आप आत्माको किसी प्रकार नहीं जान सकते हो। अन्तरस्थित आत्माको जाननेकी चेष्टा किये बिना ही आत्मस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त करनेके लिये उद्योग करना वैसा ही है जैसा रत्नको छोड़कर कौड़ीकी तलाश।

ईश्वरके दर्शन यदि हृदयके भीतर नहीं होंगे तो बाहर नहीं हो सकते। इसलिये उसकी तलाश हृदयके अन्दर ही करनी चाहिये। अपने हृदयको पवित्र बनाओ, वासनाओं और आकांक्षाओंको नष्ट करो, मनकी संकल्प-विकल्पनात्मक प्रवृत्तियोंको मिटा डालो, मनको शुद्ध करो तभी आपको सद्वस्तुका ज्ञान हो सकता है और अक्षय सुख और शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है।

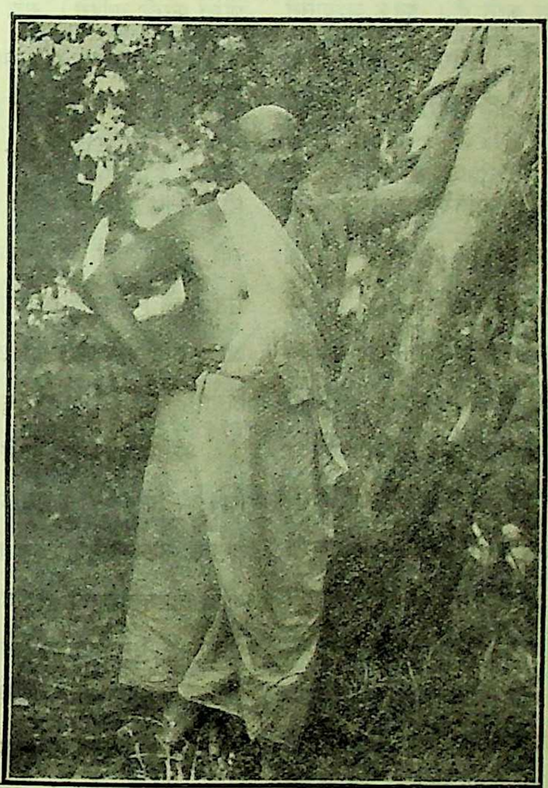

[इस लेखके लेखक]

यदि आप अमृततत्वका पान करना चाहो, यदि आत्मसुखमें अभीभूत हो जाना चाहो, यदि आत्माके सत्यस्वरूपका दर्शन करना चाहो तो आपको अहंमन्यता और दम्भका परित्याग कर नम्रताका गुण अपने अन्दर ले आना होगा। यदि आपके अन्दर विवेक, वैराग्य और मुमुक्षुत्व आदिके भाव प्रबल होंगे तो आप निश्चय ही ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति करनेमें समर्थ हो सकोगे। जब तक कि आपके अन्दर धार्मिक भावना दृढ़ और बलवती न होगी तबतक आप ध्यान करनेमें समर्थ नहीं हो सकते हो। यदि आप ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो यथेष्ट नैतिक शक्तिका संचय करना होगा। इसके बिना न तो आप आध्यात्मिक पथपर चलनेके योग्य हो सकते हो और न वेदान्तके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्यको समझ सकते हो। नैतिकशक्ति-विहीन पुरुष संसारमें भी कुछ नहीं कर सकता। हो सकता है आपको संसारमें थोड़ी बहुत सफलता मिल जाये, लेकिन जहांतक वास्तविक सुख और शांतिका सम्बन्ध है, आप उससे कोसों दूर रहोगे। जबतक आपकी चित्तवृत्तियाँ शान्त न होंगी, मन एक स्थानपर केन्द्रित न होगा तबतक आप आत्मविश्लेषण एवं ध्यान नहीं कर सकते। उपर्युक्त चार साधन विक्षिप्त मनको शान्त करते हैं, चित्तवृत्तियोंका निरोध करते हैं, मन एवं शरीरको स्वस्थ और सबल करते हैं तथा आलस्य और प्रमादको दूर करते हैं। इनके अभ्याससे इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है, सदासद्का ज्ञान होता है और विश्वके नश्वर पदार्थोंके प्रति विरक्तिका भावोदय होता है।

अपनी वासनाओंका विनाश करो, मांगनेकी प्रवृत्तिसे बचो, आत्मस्वरूपको पहचानो तथा इस बातका अनुभव करो कि आत्मा निर्द्वन्द्व, निरीह है। आत्मा सदा शुद्ध है, आप्तकाम है— इस बातका अनुभव करते ही आपके अन्दरसे वासनायें भापकी तरह उड़ जायेंगी। वासनात्मक प्रवृत्तिको मिटानेका सर्वोत्तम, सरल और सुगम उपाय यही है। इसके बाद आपके अन्दर इतनी शक्ति भर जायेगी कि आप प्रकृतिके पंचतत्वों पर अधिकार कर लोगे, अष्ट सिद्धियां और नव निधियां आपके चरण चूमेंगी तथा आप जो चाहोगे, हो जायेगा। भगवान ईसाने समुद्रकी लहरोंकी गति रोक दी थी, शम्स तबरीजने सूर्यको नीचे कर दिया था, निम्बार्कने सूर्यकी गति रोक दी थी, ज्ञानदेवने जड़ दीवालको भी गतिशील बना दिया था, विश्वामित्रने त्रिशंकुकी रचना कर दी थी तथा एक नयी सृष्टिको उत्पन्न कर दिया था, स्वामी अक्कलकोटने मृत व्यक्तिको जीवित कर दिया था— ये सब किसके प्रभाव से? इसका कारण यह था कि वे सब आप्तकाम थे, उनके अन्दर कोई इच्छा, वासना या अभिलाषा नहीं थी। संसारके कल्याणार्थ उन्होंने जो संकल्प किया उसकी पूर्ति तत्क्षण हो गयी।

इस बातका सदा ध्यान रखो कि आत्मा सदा अजर है, अमर है, अविनाशी है, अपरिवर्तनशील है तथा आनन्दमय है। आत्माको जो लोग विकारी समझते हैं वे भूल करते हैं। ऐसी भ्रान्ति मायाके कारण होती है। मनको सदा ऊंचे विचारों में लगाना चाहिये और उसकी गति सदा अध्यात्मपथकी ओर प्रेरित करनी चाहिये। सदा भगवन्नामका जप तथा ध्यान करना चाहिये। सदा जप और ध्यान करनेसे आप निर्विकल्प समाधिकी दशाको प्राप्त कर सकते हो।

मन संकल्प-विकल्पोंका एक समूह मात्र है। आप भले ही वैषयिक पदार्थोंको छोड़ दो, भले ही विषय-भोगसे अलग रहो, किन्तु जहां आप ध्यानादि कार्यमें प्रवृत्त होगे वहां ही मन उनके चिन्तनमें तल्लीन हो जायेगा। अहंभावका लोप करके आप इस दोषको दूर कर सकते हो। सरल जीवन और उच्च विचारसे आप इस दोषको दूर कर सकते हो।

अतीतका चिन्तन कभी न करो, और न तो भविष्यके लिये ही विचार करो, इस प्रकार भी आपके अन्दर वासनाकी तरंगका उठना सर्वथा बन्द हो जायेगा। जब भी सोचो केवल अपने आत्मस्वरूपकी ही बात सोचो। इस प्रकार आप आत्मसाक्षात्कार सुगमतया कर लोगे।

तत्त्वमसिका भाव अपने अन्दर दृढ़ करो। सबको आत्मभावसे देखो, सबमें ही अपने स्वरूपका अनुभव करो। अपने अन्दर दिव्य शक्तिका अनुभव करो तथा अपने रोम-रोमसे सोऽहम् का उच्चारण करो, यही वेदान्तका रहस्य है, इसीकी प्राप्ति मनुष्यका परम लक्ष्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य

श्री जयदयाल गोयेनका

76,138

ब्रह्मचर्यका यौगिक अर्थ है ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये वेदोंका अध्ययन करना। प्राचीन कालमें छात्रगण ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये गुरुके यहां रहकर वीर्यकी रक्षा करते हुए वेदाध्ययन करते थे। इसलिये धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य शब्द वीर्यरक्षाके अर्थमें रूढ़ हो गया। आज हमें इसी वीर्यरक्षाके सम्बन्धमें कुछ विचार करना है। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यका नाश ही मृत्यु है। वीर्यरक्षाके प्रभावसे ही प्राचीन कालके लोग दीर्घजीवी, नीरोग, हृष्टपुष्ट, बलवान, बुद्धिमान, तेजस्वी, शूरवीर और दृढ़संकल्प होते थे। वीर्यरक्षाके कारण ही वे शीत, आतप, वर्षा आदिको सहकर नाना प्रकारके तप करनेमें समर्थ होते थे। ब्रह्मचर्यके बलसे ही वे प्राणवायुको रोककर शरीर और मनकी शुद्धिके द्वारा नाना प्रकारके योग साधनोंमें सफलता प्राप्त करते थे। ब्रह्मचर्यके बलसे वे थोड़े ही समयमें नाना प्रकारकी विद्याओंको सीखकर अपने ज्ञानके द्वारा अपना और जगत्का लौकिक एवं परमार्थिक दोनों प्रकारका कल्याण करनेमें समर्थ होते थे। शरीरमें सार वस्तु वीर्य ही है। इसीके नाशसे आज हमारा देश रसातलको पहुंच गया है। ब्रह्मचर्यके नाशके कारण ही आज हमलोग नाना प्रकारकी बीमारियोंके शिकार हो रहे हैं, थोड़ी ही अवस्थामें कालके गालमें जा रहे हैं। इसीके कारण आज हम लोग अपने-अपने बल, तेज, वीरता और आत्मसम्मानको खोकर पराधीनताकी बेड़ीमें जकड़े हुए हैं। और जो हमारा देश किसी समय विश्वका सिरमौर और सभ्यताका उद्गम स्थान बना हुआ था वही आज दूसरोंके द्वारा लांछित और पददलित हो रहा है। विद्या-बुद्धि, बल-वीर्य, कला-कौशल—सबमें आज हम पिछड़े हुए हैं। इसीके कारण आज हम चरित्रसे भी गिर गये हैं। सारांश यह है कि किसी भी बातको लेकर आज हम संसारके सामने अपना मस्तक ऊंचा नहीं कर सकते। वीर्यका नाश ही हमारी इस गिरी हुई दशाका मूल कारण मालूम होता है। वीर्यके नाशसे शरीर, बल, तेज, बुद्धि, धन, मान, लोक, परलोक—सबकी हानि होती है। परमात्माकी प्राप्ति तो वीर्यकी रक्षा न करनेवालोंसे कोसों दूर रहती है।

ब्रह्मचर्यके बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। रोगसे मुक्त होनेके लिये, स्वास्थ्यलाभके लिये, बलबु-द्धिके विकासके लिये, विद्याभ्यासके लिये तथा योगाभ्यासके लिये भी ब्रह्मचर्यकी बड़ी आवश्यकता है। उत्तम सन्तानकी प्राप्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, सिद्धियोंकी प्राप्ति, अन्तःकरणकी शुद्धि तथा परमात्माकी प्राप्ति—ब्रह्मचर्यसे सब कुछ सम्भव है और ब्रह्मचर्यके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। सांख्ययोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग—सभी साधनोंमें ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता होती है। अतः लोक परलोकमें अपना हित चाहनेवालेको बड़ी सावधानी एवं तत्परताके साथ वीर्यरक्षाके लिये चेष्टा करनी चाहिये।

सब प्रकारके मैथुनके त्यागका नाम ही ब्रह्मचर्य है। मैथुनके निम्नलिखित प्रकार शास्त्रोंमें कहे गये हैं—

(१) **स्मरण**—किसी सुन्दर युवती स्त्रीके रूप-लावण्य अथवा हाव-भाव, कटाक्ष एवं शृङ्गारका स्मरण करना, कुत्सित पुरुषोंकी कुत्सित क्रियाओंका स्मरण करना, अपने द्वारा पूर्वमें घटी हुई मैथुन आदि क्रियाका स्मरण करना, भविष्यमें किसी स्त्रीके साथ मैथुन करनेका संकल्प अथवा भावना करना, नाना चन्दन, इत्र, फुलेल, लवेन्डर आदि कामोद्दीपक एवं शृङ्गारके पदार्थोंका स्मरण करना, पूर्वमें देखे हुए किसी सुन्दर स्त्री अथवा बालकके चित्रका अथवा गन्दे चित्रका स्मरण करना—ये सभी मानसिक मैथुनके अन्तर्गत हैं।

(२) **श्रवण**—गन्दे तथा कामोद्दीपक एवं शृङ्गार रसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गानोंको सुनना, शृङ्गार रसका गद्य-पद्यात्मक वर्णन सुनना, स्त्रियोंके रूप-लावण्य तथा अंगोंका वर्णन सुनना, उनके हाव-भाव कटाक्षका वर्णन सुनना, काम विषयक बातें सुनना ये सभी श्रवण रूप मैथुनके अन्तर्गत हैं।

(३) कीर्तन—अश्लील बातोंका कथन, शृङ्गार रसका वर्णन, स्त्रियोंके रूप-लावण्य, यौवन एवं शृङ्गारकी प्रशंसा तथा उनके हाव-भाव कटाक्ष आदिका वर्णन, विलासिता का वर्णन, कामोद्दीपक अथवा गन्दे गीत गाना तथा ऐसे साहित्यको स्वयं पढ़ना और दूसरोंको सुनाना तथा कथा आदिमें ऐसे प्रसंगोंको विस्तारके साथ कहना—ये सभी कीर्तन रूप मैथुनके अन्तर्गत हैं।

(४) प्रेक्षण!—स्त्रियोंके रूप-लावण्य, शृङ्गार तथा उनके अंगोंकी रचनाको देखना, किसी सुन्दर स्त्री अथवा सुन्दर बालकके चित्रको देखना, शृङ्गार रसके नाटक सिनेमा देखना, कामोद्दीपक वस्तुओं तथा सजावटके सामानको देखना, दर्पण आदिमें अपना रूप तथा शृङ्गार देखना – ये सभी प्रेक्षणा रूप मैथुनके अन्तर्गत हैं।

(५) केलि—स्त्रियोंके साथ हंसी मजाक करना, नाचना, गाना, आमोद-प्रमोदके लिये क्लब वगैरहमें जाना, जलविहारमें जाना, जलविहार करना, फाग खेलना, गन्दी चेष्टाएं करना—ये सभी केलिरूप मैथुनके अन्तर्गत है।

(६) शृङ्गार—अपनेको सुन्दर दिखलानेके लिये बाल संवारना, कंघी करना, काकुल रखना, शरीरको वस्त्राभूषणादिसे सजाना, इत्र, फुलेल, लवेन्डर आदिका व्यवहार करना, फूलोंकी माला धारण करना, अंगराग लगाना, सुरमा लगाना, साबुन, तेल लगाना, पाउडर लगाना, दांतोंमें मिस्सी लगाना, दांतोंमें सोना जड़वाना, शौकके लिये बिना आवश्यकताके चश्मा लगाना, होंठ लाल करनेके लिये पान खाना—ये सब शृङ्गारके अन्तर्गत हैं।

(७) गुह्य भाषण—स्त्रियोंके साथ एकान्तमें अश्लील बातें करना, उनके रूप-लावण्य, यौवन एवं शृङ्गारकी प्रशंसा करना, हंसी मजाक करना—ये सभी गुह्य भाषण रूप मैथुनके अन्तर्गत हैं।

(८) स्पर्श—काम बुद्धिसे किसी स्त्री अथवा बालकको स्पर्श करना, चुम्बन करना, आलिङ्गन करना, कामोद्दीपक तथा कोमल पदार्थोंका स्पर्श करना तथा स्त्री संग करना—ये सभी स्पर्शरूप मैथुनके अन्तर्गत है।

उपर्युक्त बातें पुरुषोंको दृष्टिमें रखकर ही कही गयी हैं। स्त्रियोंको भी पुरुषोंके सम्बन्धमें यही बातें समझनी चाहिये। पुरुषोंको परस्त्रीके साथ और स्त्रियोंको परपुरुषके साथ तो इन आठों प्रकारके मैथुनोंका त्याग हर हालतमें करना ही चाहिये। ऐसा न करनेवाले महान् पापके भागी होते हैं। और इस लोकमें तथा परलोकमें महान् दुःख भोगते हैं। गृहस्थोंको अपनी विवाहिता पत्नीके साथ भी ऋतुकालकी अनिन्दित रात्रियोंको छोड़कर शेष समयमें उक्त आठों प्रकारके मैथुनोंसे बचना चाहिये। ऐसा करनेवाले गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारी हैं। बाकी तीन आश्रम बालकों तथा विधवा स्त्रियोंके लिये तो सभी अवस्थाओंमें उक्त आठों प्रकारके मैथुनोंका त्याग सर्वथा अनिवार्य है।

परमात्मा प्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये उपर्युक्त ब्रह्मचर्यके पालन मात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है, यह बात भगवान श्रीकृष्णने गीताके आठवें अध्यायके ११ वें श्लोकमें कही है। भगवान् कहते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

कठोपनिषद्में भी एक मन्त्र ऐसा ही आया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१।२।१४

उक्त दोनों ही मन्त्रोंमें परमपदकी इच्छासे ब्रह्मचर्यके पालनकी बात आयी है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे शरीरमें बल, तेज, उत्साह एवं ओजकी वृद्धि होती है। शीत उष्ण, पीड़ा आदि सहन करनेकी शक्ति आती है, अधिक परिश्रम करनेपर भी थकावट कम आती है प्राण वायुको रोकनेकी शक्ति आती है। शरीरमें फुर्ती एवं चेतनता रहती है, आलस्य तथा तन्द्रा कम आती है, बीमारियोंके आक्रमणको रोकनेकी शक्ति आती है, मन प्रसन्न रहता है, कार्य करनेकी क्षमता प्रचुर मात्रामें रहती है, दूसरेके मनपर प्रभाव डालनेकी शक्ति आती है, सन्तान दीर्घायु बलिष्ठ एवं स्वस्थ होती है, इन्द्रियां सबल रहती हैं, शरीरके अंग-प्रत्यङ्ग सुदृढ़ रहते हैं; आयु बढ़ती है, वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती, शरीर स्वस्थ एवं हलका रहता है, काम वासना कम होती है, स्मरण शक्ति बढ़ती है, बुद्धि तीव्र होती है, मन बलवान् होता है, कायरता नहीं आती, कर्तव्यकर्म करनेमें अनुत्साह नहीं होता, बड़ीसे बड़ी विपत्ति आनेपर भी धैर्य नहीं छूटता, कठिनाइयों एवं विघ्न-बाधाओंका वीरतापूर्वक सामना करनेकी शक्ति आती है, धर्मपर दृढ़ आस्था होती है, अन्तःकरण शुद्ध रहता है, आत्म-सम्मानका भाव बढ़ता है, दुर्बलोंको सतानेकी प्रवृत्ति कम होती है, क्रोध, ईर्षा, द्वेष आदिके भाव कम होते हैं, क्षमाका भाव बढ़ता है, दूसरोंके प्रति सहिष्णुता तथा सहानुभूति बढ़ती है, दूसरोंका कष्ट दूर करने तथा दीन दुखियोंकी सेवा करनेका भाव बढ़ता है, सत्वगुणकी वृद्धि होती है, वीर्यमें अमोघता आती है परस्त्रीके प्रति मातृभाव जागृत होता है, नास्तिकता तथा निराशाके भाव कम होते हैं, असफलतामें भी विषाद नहीं होता, सबके प्रति प्रेम एवं सद्भाव रहता है तथा सबसे बढ़कर भगवत् प्राप्तिकी योग्यता आती है, जो मनुष्य जीवनका चरम फल है जिसके लिये यह मनुष्य देह हमको मिली है।

इसके विपरीत ब्रह्मचर्यके नाशसे मनुष्य नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार हो जाता है, शरीर खोखला हो जाता है, थोड़ा भी परिश्रम अथवा कष्ट सहन नहीं होता, शीत, उष्ण आदिका प्रभाव शरीर पर बहुत जल्दी होता है, स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है, सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है, सन्तान उत्पन्न होती भी है तो दुर्बल एवं अल्पायु होती है, मन अत्यन्त दुर्बल हो जाता है, संकल्प शक्ति कमजोर हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, जरा भी प्रतिकूलता सहन नहीं होती, आत्म विश्वास कम हो जाता है, काम करनेमें उत्साह नहीं रहता, शरीरमें आलस्य छाया रहता है, चित्त सदा सशंकित रहता है, मनमें विषाद छाया रहता है, कोई भी नया काम हाथमें लेनेमें भय मालूम होता है, थोड़े-से भी मानसिक परिश्रमसे दिमागमें थकान आ जाती है, बुद्धि मन्द हो जाती है, अधिक सोचनेकी शक्ति नहीं रहती, असमयमें ही वृद्धावस्था आ घेरती है और थोड़ी ही अवस्थामें मनुष्य कालके गालमें चला जाता है, चित्त स्थिर नहीं हो पाता, मन और इन्द्रियां वशमें नहीं हो पातीं और मनुष्य भगवत्प्राप्तिके मार्गसे कोसों दूर हट जाता है। वह न इस लोकमें ही सुखी रहता है न परलोकमें ही सुख मिलता है। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको चाहिये कि बड़ी सावधानीसे वीर्यकी रक्षा करे। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है। इस बातको सदा स्मरण रखे। गृहस्थाश्रममें भी केवल सन्तानोत्पादनके उद्देश्यसे ऋतुकालमें अधिकसे अधिक महीनेमें दो बार स्त्री संग करे।

ब्रह्मचर्य रक्षाके उपाय—उपर्युक्त प्रकारके मैथुनोंके त्यागके अतिरिक्त निम्नलिखित साधन भी ब्रह्मचर्यकी रक्षामें सहायक हो सकते हैं।

(१) भोजनमें उत्तेजक पदार्थोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। मिर्च, राई, गरम मसाले, अचार, खटाई, अधिक मीठा और अधिक गरम चीजें नहीं खानी चाहिये। भोजन खूब चबाकर करना चाहिये। भोजन सदा सादा, ताजा और नियमित समयपर करना चाहिये। मांस, मद्य, भांग आदि अन्य नशीली वस्तुएं तथा केशर, कस्तूरी और मकरध्वज आदि बाजीकरण औषधोंका भी सेवन नहीं करना चाहिये।

(२) यथासाध्य नित्य खुली हवामें सबेरे और सायंकाल घूमना चाहिये।

(३) रातको जल्दी सोकर सबेरे ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् पहर भर रात रहे अथवा सूर्योदयसे कमसे कम एक घण्टे भर पूर्व अवश्य उठ जाना चाहिये। सोते समय पेशाब करके हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैर धोकर तथा कुल्ला करके भगवानका स्मरण करते हुए सोना चाहिये ।

(४) कुसङ्गका सर्वथा त्याग कर यथा साध्य सदाचारी, विरक्त, भगवद्भक्तोंका संग करना चाहिये, जिससे मलिन वासनायें नष्ट होकर हृदयमें अच्छे भावका संग्रह हो ।

(५) पति पत्नीको छोड़कर अन्य स्त्री पुरुष अकेलेमें कभी न बैठें और न एकान्तमें बात चीत ही करें ।

(६) रामायण, महाभारत, उपनिषद्, श्री मद्भागवत तथा भगवद्गीता आदि उत्तम ग्रन्थोंका नित्य नियम पूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये । इससे बुद्धि शुद्ध होती है और मनमें गन्दे विचार नहीं आते ।

(७) आलस्य और प्रमादमें समय नहीं बिताना चाहिये । मनको सदा किसी न किसी अच्छे काममें लगाये रखना चाहिये ।

(८) मूत्रत्याग और मलत्यागके बाद इन्द्रियको ठण्ढे जलसे धोना चाहिये और मल मूत्रकी हाजतको कभी नहीं रोकना चाहिये ।

(९) यथासाध्य ठण्ढे जलसे नित्य स्नान करना चाहिये ।

(१०) नित्य नियमित रूपसे किसी प्रकारका व्यायाम करना चाहिये । हो सके तो नित्यप्रति कुछ आसन एवं प्राणायामका भी अभ्यास करना चाहिये ।

(११) लंगोट या कोपीन अवश्य रखना चाहिये ।

(१२) नित्य नियमिय रूपसे कुछ समय तक परमात्माका ध्यान अवश्य करना चाहिये ।

(१३) यथाशक्ति भगवानके किसी भी नामका श्रद्धा पूर्वक एवं प्रेमपूर्वक जप तथा कीर्तन करना चाहिये । कामवासना जाग्रत हो तो नाम जपकी धुन लगा देनी चाहिये अथवा जोर-जोरसे कीर्तन करने लगना चाहिये । काम वासना नाम, जप और कीर्तनके सामने कभी नहीं ठहर सकती ।

(१४) जगतसे वैराग्यकी भावना करनी चाहिये । संसार की अनित्यताका बार-बार स्मरण करना चाहिये । मृत्युको सदा याद रखना चाहिये ।

(१५) पुरुषोंको स्त्रीके शरीरमें और स्त्रियोंको पुरुषोंके शरीरमें मलिनत्व बुद्धि करनी चाहिये । ऐसा समझना चाहिये कि जिस आकृतिको हम सुन्दर समझते हैं वह वास्तवमें चमड़ेमें लपेटा हुआ मांस, अस्थि, रुधिर, मज्जा, मल, मूत्र, कफ आदि मलिन एवं अपवित्र पदार्थोंका एक घृणित पिण्ड मात्र है ।

(१६) महीनेमें कमसे कम दो दिन अर्थात् प्रत्येक एकादशीको (सम्भव हो तो निर्जल) उपवास करना चाहिये और अमावस्या तथा पूर्णिमाको केवल एक ही समय अर्थात् दिनमें भोजन करना चाहिये ।

(१७) भगवानकी लीलाओं तथा महापुरुषों एवं वीर ब्रह्मचारियोंके चरित्रोंका मनन करना चाहिये ।

(१८) यथासाध्य सबमें परमात्मभावना करनी चाहिये ।

(१९) नित्य निरन्तर भगवानको स्मरण रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

ऊपर जितने साधन बताये गये हैं उनमें अन्तिम साधन सबसे उत्तम तथा सबसे अधिक कारग है । यदि नित्य निरन्तर अन्तःकरणको भगवद्भावसे मरते रहनेकी चेष्टा की जाये तो मनमें गन्दे भाव कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकते और इस प्रकार ब्रह्मचर्यकी रक्षा हो सकती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृतिकी विशेषता

श्री युगल किशोर बिड़ला

भारतीय आर्य संस्कृति जिस प्रकार संसारमें सबसे प्राचीन समझी जाती है, उसी प्रकार इसके दार्शनिक, आध्यात्मिक ज्ञानका भी आसन सबसे ऊंचा है, क्योंकि वह पूर्ण सत्यको प्रकट करता हुआ साथमें आत्मिक उन्नतिके लिये पात्र और अधिकारी भेदसे, अनेक प्रकारके भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यकर्मोंका तथा देश-कालकी परिस्थितिको लक्ष्यमें रखता हुआ इस प्रकारका आदेश देता है, जिससे उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ जीवात्मा उसी मोक्ष (अमृतपद) की प्राप्ति कर सके।

प्राचीन ऋषि-मुनियों तथा दार्शनिक महापुरुषों यथा—वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, कपिल, पतञ्जलि और व्यास आदिसे लेकर भगवान बुद्ध, महावीर, गुरु नानक और कबीर आदि पिछले संत, महात्माओंके उपदेशोंमें वही ज्ञान-गाथा अनेक प्रकारसे भरी पड़ी है जिसे सांख्य, योग, वेदान्तके मूल-ग्रन्थ तथा उपनिषद और गीता आदि या धम्मपद तथा सन्तवाणीके विचार व विवेकके साथ पढ़ने व सुननेसे सभी भली प्रकारसे अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि सत्य तो सदा एक ही प्रकारका रहेगा। समझनेकी रीति अनेक प्रकारकी होते हुए भी उन आर्य सद्ग्रन्थोंके मूल और अन्तमें किंचित विभिन्नता नहीं रहती। इतिहास इसका साक्षी है कि भारतकी तरह संसारके किसी भी देशमें आध्यात्मिक तत्वज्ञानका साक्षात्कार नहीं किया गया। यही भारतीय संस्कृतिकी विशेषता व महत्ता है। यद्यपि सांसारिक या शारीरिक सुख समृद्धिके ज्ञानमें भी प्राचीन भारत उस समय किसीसे पीछे नहीं था। यों तो वर्तमान समयके यूरोप आदि देशोंने भौतिक ज्ञानमें बहुत कुछ उन्नति की है, तब भी यह नहीं कह सकते कि इससे सांसारिक सुख भी कुछ विशेष प्रकारसे बढ़ गये हैं। यदि कुछ लोग ऐसा समझते भी हों तब भी यह जानना चाहिये कि उसके साथ आध्यात्मिक सुख या शान्ति की तुलना नहीं हो सकती। फिर अनन्तकालकी तुलनामें एक जन्मके सांसारिक सुखोंका कुछ भी महत्व नहीं है, यदि उन सुखोंके लिये अनुचित कर्म करते हुए अपने भावी अनन्त जीवनको बिगाड़ लिया जाये।

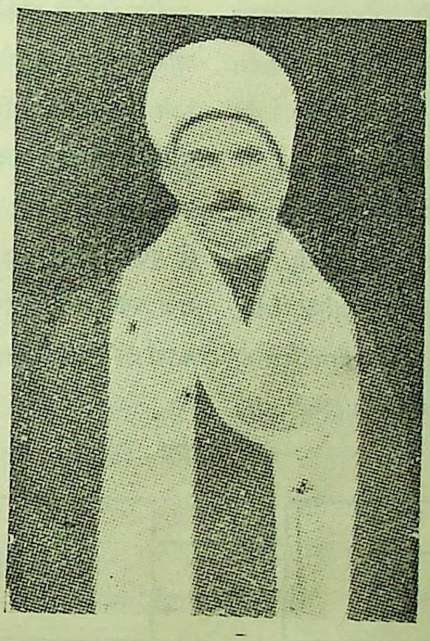

[इस लेखके लेखक]

भारतीय संस्कृतिका आदर्श वही रहा है जिससे सत्यके अटल नियमोंका ज्ञान प्राप्त करते हुए मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकारकी उन्नति करता जाये। वह आंख मूंद कर किसी एक नामधारी देवदूत या सन्तके विचारोंपर निर्भर नहीं, किन्तु जो सिद्धान्त तर्क पर टिक सकें, जो अनुभवगम्य हों, किसी भी देश व कालमें मनुष्य मात्रके लिये जो सच्चा हितकर मार्ग दिखाते हों, उनसे आगे विशेष कहने या बतलानेकी किसीकी भी सामर्थ्य न हो ऐसे सत् सिद्धान्तोंपर भारतीय संस्कृति और ज्ञान निर्भर है।

आर्य-धर्मियोंका अन्तिम ध्येय तो निर्वाण अर्थात् परम शान्ति चाहनेका ही होता है, जिससे आवागमनके चक्करसे छूट कर, जन्म, मृत्यु, व्याधि और बुढ़ापा आदि दुखोंसे सदाके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुटकारा पाकर परमानन्दकी प्राप्ति की जाये। किन्तु इसके लिये शम, दम आदिसे तथा निष्काम कर्मों और भक्ति द्वारा अनेक उपायोंसे चित्तको निर्मल व निष्काम बनानेकी आवश्यकता होती है, जिससे उत्तरोत्तर उन्नति होती जाये। ऐसा करते और सन्मार्गपर चलते हुए अनेक जन्मोंके पीछे ही मोक्ष प्राप्ति की आशा रहती है।

मनुष्य स्वयं अपना स्वामी है, दूसरा कौन स्वामी हो सकता है? अपनेको भली प्रकार दमन कर लेनेपर वह एक दुर्लभ स्वामीको पाता है। प्राचीन समयमें तो अनेक ऋषि-मुनि, साधु-सन्त तथा राजा जनक जैसे कई राजर्षि भी इन आदर्शोंपर चलते हुए, एक जन्ममें ही जीवन-मुक्तिका अनुभव करनेवाले बन गये हैं। उस समय तो अधिकांश साधारण जनता भी धर्मके आदर्शपर चलनेवाली होती थी। यही कारण था कि कसाईका काम करनेवालोंकी भी, उनके तत्वज्ञान एवं धर्माचरणके कारण, जीवन-मुक्तोंमें गणना की जाती थी।

भगवान बुद्धके समय अम्बपाली नामकी वेश्या, जो बुद्धको अपने यहां एक दिन भिक्षा-निमन्त्रण देकर आ रही थी, उस भोजनके निमन्त्रणको, एक दिनके लिये स्थगित करनेके लिये, वैशाली नगरीके राजकुमारके आग्रह करने, तथा समूची वैशाली नगरीका राज्य देनेके लोभ पर भी, तैयार नहीं हुई थी। त्याग और धर्मपर दृढ़ आस्थाके ऐसे उदाहरण भारतीय साहित्यमें सहस्रों मिलेंगे। चाणक्य ऐसे कूट राजनीतिज्ञ भी त्यागके आदर्शको आगे रखते थे।

सम्राट अशोकका धर्म-प्रेम तो विश्व-विख्यात है, जिसकी सद्भावना व प्रेमसे पृथ्वीके अधिकांश देश आर्य-संस्कृति व आर्य-धर्मके उपासक बन गये थे। इस गिरी हुई दशामें भी इस देशमें महात्मा गान्धी उन्हीं आदर्शोंके प्रमाण स्वरूप हैं। वर्तमान समयमें तो यहां वे उच्च आदर्श लुप्त-से हो गये हैं तथा अन्य देशोंमें तो सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिकी आशामें एक राष्ट्र दूसरेका तथा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिका गला घोंटता दिखायी पड़ रहा है, किन्तु केवल सांसारिक सुखोंके ही पीछे दौड़नेसे सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। आर्य-संस्कृतिका आदर्श मनुष्य मात्रका लक्ष्य होना चाहिये। इसलिये मैं आर्य धर्मसे भिन्न मत रखनेवाले सभीसे प्रार्थना करता हूं कि वे भी इन आदर्शोंपर विचार तथा मनन करें। इससे उनके लिये कल्याणकी ही सम्भावना है और हम हिन्दू लोग तो इसके विशेष प्रकारसे उत्तराधिकारी हैं। इसलिये तन, मन तथा धनसे जगतके तथा अपने कल्याणके लिये, इसका प्रचार करना ही हमारा पवित्र कर्तव्य होना चाहिये।

असम्प्रदान

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

प्राचीन कालमें मगधराज्यके राजगह (राजगृह) नगरमें बोधिसत्त मगधराज्यके एक सेठ थे। अस्सी कोटि धनके अधिपति होनेके कारण वे करोड़पति कहाते थे। उस समय वाराणसी नगरमें भी एक अस्सी कोटिका धनी रहता था जिसका नाम पिलिय था। उससे करोड़पतिका बड़ा मेल था। कालचक्रसे किसी कारणवश पिलिय सेठ बड़ी विपद्में पड़ा और उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। जब वह दरिद्र और असहाय हो गया, तब करोड़पतिसे सहायता की आशासे अपनी स्त्रीके साथ पैदल चलकर राजगह नगर अपने मित्रके घर पहुंचा।

करोड़पतिने उसे देखते ही 'आओ भाई' कह उसे छाती से लगाया और नियमानुसार उसका सत्कार सम्मान करने लगा। इस प्रकार कई दिन बीतनेपर करोड़पतिने पूछा, 'भाई, तुम किस प्रयोजनसे आये हो, बताओ।' पिलिय सेठने कहा, 'मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी मुसीबतमें हूं; मेरा सब धन चला गया। अब तुम सहायता न करोगे, तो मेरा निस्तार नहीं है।'

'सहायता क्यों न करूंगा? तुम निश्चिन्त रहो' यह कह-कर भाण्डागार खोलकर करोड़पतिने पिलिप सेठको ४० करोड़ सुवर्ण दिया। अनन्तर अपनी स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति, दास-दासी प्रभृतिको दो भागोंमें बांट एक भाग मित्रको दे दिया। पिलिप यह विपुल धन लेकर वाराणसीको लौट गया और वहीं रहने लगा।

इसके बाद करोड़पति सेठ पर वैसी ही विपत्ति आयी। इससे किस प्रकार छूटूं यह सोचते-सोचते उनके मनमें आया, 'मैंने तो एक बार अपने मित्रका बड़ा उपकार किया था, उसे अपने समस्त विभवका आधा भाग दे दिया था। वह यह अस्वीकार न कर सकेगा, इसलिए उसीके पास चलूं।' ऐसा संकल्प कर स्त्रीको साथ ले पैदल वाराणसीको चल पड़े और वहां पहुंच स्त्रीसे बोले, 'प्रिये, तुम मेरे साथ सड़क पर पैदल चलोगी तो अच्छा न दिखेगा। मैं जाकर तुम्हें ले जानेके लिए सवारी आदि भेजता हूं। तुम उस पर चढ़ बहुतसे अनुचरोंके साथ नगरमें प्रवेश करना। जब तक सवारी न भेजूं, तब तक यहीं ठहरना।' यह कह उन्होंने स्त्रीको एक धर्मशालामें टिका दिया और अकेले नगर में प्रवेश कर पिलिपके घर पहुंचे और सेठको संदेसा भेजा, 'राजगृहसे आपके मित्र करोड़पति आये हैं।'

पिलिपने कहा 'उन्हें बुलाओ।' किन्तु उनकी अवस्था देखकर न तो यह उठा और न उन्हे नमस्कार ही किया, केवल इतना ही पूछा कि 'क्यों आये हो?' करोड़पतिने उत्तर दिया, 'आपसे दरस परस करने।' 'कहां ठहरे हो?' 'अभी तक ठहरनेका ठीक नहीं हुआ है, स्त्रीको धर्मशालामें छोड़कर तुरत यहां चला आया हूं।' यहां तो तुम्हारे रहनेका कोई सुबीता न होगा। जाओ कहीं डेरा ठीक करो। वहीं पका कर खाना और जहां इच्छा हो, चले जाना। पर अब हमसे न मिलना' यह कह इसने एक नौकरको आज्ञा दी 'मेरे मित्रके कपड़ेके खूंट में एक पाव कनकी दो।' उसी दिन पिलिपने हजार गाड़ी बढ़िया धान साफ कराके बखारीमें भराया था। फिर भी वह बड़ा चोर ऐसा कृतघ्न निकला कि जिससे ४० कोटि सुवर्ण पाया था उस मित्रको अब केवल एक पाव कनकी दी।

पिलिपका नौकर एक पाव कनकी नापकर उसे एक टोकरी में रख बोधिसत्तके पास ले आया। बोधिसत्त विचारने लगे, 'यह पापी मुझसे ४० कोटि सुवर्ण पाकर अब मुझे केवल एक पाव कनकी दे रहा है। यह मैं लूं या न लूं?' अनन्तर उन्होंने सोचा 'इस कृतघ्न और मित्रद्रोहीने यह जानकर कि मेरा सर्वस्व स्वाहा हो गया है, मित्रता तोड़ दी है, परन्तु यदि मैं यह एक पाव कनकी अति तुच्छ समझकर न ग्रहण करूं, तो मुझपर भी मित्रता नष्ट करनेका दोष लगेगा। जो मूढ़ और नीच प्रवृत्तिके लोग होते हैं वे ही मिली हुई वस्तुको छोटी समझ उससे विमुख होते हैं और इस प्रकार बन्धुता नष्ट करते हैं। इसलिए इसने जो एक पाव कनकी दी है, उसे ही लेकर यथा साध्य मित्रधर्मकी रक्षा करूं।' यह स्थिरकर कपड़ेके खूंट में कनकी बांध वे उसी धर्मशालाको लौट गये।

उनकी स्त्रीने पूछा, 'आर्यपुत्र, मित्रने क्या दिया?' बोधिसत्तने कहा, प्रिये मेरे मित्र पिलिपने एक पाव कनकी देकर मुझे आज ही विदा कर दिया है।

'आपने उसे क्यों लिया? यह क्या ४० कोटि सुवर्णके अनुरूप बदला है?' यह कह बोधिसत्तकी स्त्री रोने लगी।

बोधिसत्त बोले, 'प्रिये, तुम मत रोओ। उसके साथ मित्रता भंग न हो जाये इस आशंकासे इसे ले लिया है। इसके लिये तुम क्यों दुःखी होती हो?' अनन्तर उन्होंने यह गाथा पढ़ीः—

मित्रकी दी वस्तु यदि तुच्छ हो,
तो भी तुम उसे ग्रहण करो।
जो नहीं लेता है, वह मूर्ख
मित्रताबन्धन तोड़ता है।
मेरे मित्रने पाव भर कनकी दी,
तो भी उसका सम्मान रखनेके लिये,
मैंने उसे आनन्दचित्तसे ले लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कोई मित्रता नष्ट करता है ?

अवस्था-वैगुण्य चिरस्थायी नहीं होता ।

सब लोग कहते हैं कि मित्रता शाश्वत होती है ।

परन्तु यह सुनकर भी उनकी पत्नीका रोना बन्द न हुआ । करोड़पति सेठने पिलिपको जो दास दिये थे, उन्हींमें एक किसान था । उसने धर्मशालाके पाससे जाते समय सेठानीका रोना सुना और अन्दर गया और पुराने मालिक और मालिकिन-को देख और उनके पैरों पड़कर रोते-रोते पूछा, "आप यहां कैसे आये ?" बोधिसत्तने उससे खोलकर सब बातें कह दीं । यह सुन उसने कहा, 'मालिक, कोई चिन्ता नहीं है । जो होनी थी, वह हो गयी ।' यह कह वह उन्हें अपने घर ले गया, सुगन्धित जलसे उन्हें स्नान कराया और उत्तम भोजन कराया । फिर और दासोंको भी बताया, 'हमारे पुराने मालिक आये हैं ।' इस प्रकार कई दिन बीते । वह एक दिन सब दासोंको साथ ले राज-दरबारमें जा 'दुहाई महाराजकी' कहकर चिल्लाने लगा । राजाने उन्हें बुलाकर पूछा कि क्या बात है । उन्होंने राजाको घटनावली बता दी । उनकी बात सुन राजाने दोनों सेठोंको बुलाया और करोड़पति सेठसे पूछा, 'तुमने क्या सच-मुच पिलिप सेठको ४० कोटि सुवर्ण दिया था ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'महाराज, मेरा मित्र जब अभावग्रस्त हो, मेरे पास राज-गृहमें पहुंचा था, तब उसे केवल ४० कोटि सुवर्ण ही नहीं दिया था; उसके साथ ही अपनी स्थावर, अस्थावर, दास, दासी समस्त सम्पत्तिका आधा भाग भी दान किया था ।'

'क्यों जी पिलिप ! क्या यह सच है ?'

'हां महाराज, सच है ।'

अच्छा, यह मनुष्य जब अभावग्रस्त हो तुम्हारे पास सहा-यताकी आशासे उपस्थित हुआ था, तब क्या तुमने इसका उप-युक्त सत्कार और सम्मान किया था ?"

यह प्रश्न सुन पिलिप चुप रह गया । तब राजाने फिर पूछा, 'क्या तुमने इसके खूंटमें एक पाव कनकी बांधकर इसे बिदा किया था ?' फिर भी पिलिप चुप रहा । इसके बाद राजाने कर्त्तव्य-निर्णय करनेके लिये मंत्रियोंसे परामर्श किया और पिलिपके विषयमें दण्डस्वरूप यह आदेश दिया—'तुम लोग पिलिपके घर जाकर उसकी सारी सम्पत्ति करोड़पति सेठको दे दो ।'

यह सुन बोधिसत्तने कहा, 'महाराज मैं दूसरेका धन नहीं चाहता । मैंने जो दिया था, वही लौटा देनेकी आज्ञा दीजिये ।' तब राजाने आदेश दिया कि बोधिसतको उनका पहले दिया हुआ धन लौटा देना चाहिये । बोधिसत्त अपना पूर्वदत्त विभव पाकर दास-दासियोंसे घिरकर राजगहको लौटे और कामकाज और सम्पत्तिकी सुव्यवस्था की । अनन्तर दानादि सत्कर्म कर उन्होंने जीवनके अन्तमें कर्मानुरूप फल भोगनेके लिये लोका-न्तर प्रस्थान किया ।

— जब हमारी शिक्षाका आधार पाठको सूखा और नीरस बना देना ही है, तो फिर बालकोंके मत्थे चंचलता और प्रमत्तताका दोष मढ़ना हमारे लिये स्वाभाविक ही है । यदि प्रचलित अप्राकृति शिक्षा-प्रणालीके बदले बालक उस स्वतन्त्र शिक्षाका सहारा ले, जो उसके लिये प्राकृतिक हो, तो 'अनवधानता' का आक्षेप आप ही दूर हो जाये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भस्त्रा प्राणायामकी विशेष विधि

कवि विनोद वैद्य भूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य, अध्यक्ष, 'अमृतधारा' लाहौर ।

भूमिका—हठयोग प्रदीपिकामें भस्त्रा प्राणायामकी जो विधि लिखी है प्रायः वही हठयोगी बतलाते हैं और उसीका अभ्यास करते कराते हैं । परन्तु जो विधि मैं नीचे लिखता हूं यह एक उत्तम योगी श्री स्वामी नारायण तीर्थजी महाराजकी अनुभव की हुई है जिसको हर कोई सरलतासे कर सकता है । उन्होंने मुझे ही नहीं, और भी बहुतसे शिष्योंको यह विधि बतलायी थी और सबने इससे लाभ उठाया । स्वास्थ्यके वास्ते भी यह बड़ी लाभदायक है और मनकी एकाग्रताके लिये भी साधारण विधिसे श्रेष्ठ है ।

विधि—पद्मासन या सिद्धासन पर बैठ जायें । दायें हाथ के अंगूठेसे दायां नथना बन्द करके बायेंसे प्राणायाम शुरू करें । वायु बाहर फेंककर फिर शनैः-शनैः भीतर ले जायें और जितनी भरी जा सके भरकर उसी समय धीरे धीरे बाहर निकाल दें; यह एक श्वास हुआ । ऐसे दस दीर्घ श्वास लेकर फिर अंगूठेको हटाकर अंगूठेके साथकी उंगलीसे बायां नथना दबाकर दायेंसे

प्राणायाममें एक स्वर बन्द करते हुए हाथकी पोजीशन

उसी प्रकार दस दीर्घ श्वास लें । इसके पश्चात् दायें नथनेको बन्द करके बायेंसे श्वास खींचें और उसी समय बायेंको बन्द

[इस लेखके लेखक]

करके दायेंसे निकाल दें । निकालनेके साथ ही दायेंसे अब भीतर खींचें और बायेंसे निकालें । पहले जहां एक ही नथनेसे पूरक और रेचक करते थे अब एक रन्ध्र—दायें—से पूरक करके दूसरेसे रेचक करते हैं ; रेचकवालेसे फिर पूरक होता है । ऐसे बारी-बारीसे दस श्वास लेते जायें । कुल तीस दीर्घ श्वास लेनेके पश्चात् अब जिस नथनेसे आरम्भ किया था उसी नथनेसे श्वास को शनैः-शनैः भीतर कर खुला नथना भी बन्द करके कुम्भक करें । शक्तिके अनुसार श्वास भीतर रखकर फिर बहुत शनैः-शनैः दूसरे नथनेसे बाहर निकाल दें फिर जिस नथनेसे श्वास रेचन किया है उससे पूरक करके और यथाशक्ति रोककर दूसरेसे निकाल दें, यह सारी विधि एक प्राणायाम हुआ ।

इसमें पहले-पहल दस मिनट, फिर बारह, पन्द्रह, बीस मिनट भी लगते हैं । अधिक अभ्याससे कुम्भक बहुत बढ़ाया भी जा सकता है । ऐसे तीन प्राणायाम कर लिये जायें तो बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ होता है, इसमें आध, पौन घण्टा लग जाता है।

विशेष वक्तव्य—१—तीस पूरक रेचक जो किये जाते हैं उनमें श्वास भीतर लेने और बाहर निकालनेका समय प्रायः एक होना चाहिये। इसके पश्चात् जो प्राणायाम किया जाता है, उसकी मात्रा १ : ४ : २ की होनी चाहिये, अर्थात् जितना समय पूरकमें लगे, उससे चार गुना कुम्भकमें और दो गुना रेचकमें लगना चाहिये। इसके लिये पहली बार टाइमपीस पास रख सकते हैं, इसकी टिक-टिकके साथ एक ओ३म्, दो ओ३म्, तीन ओ३म् ऐसे गिनना चाहिये। पहले पूरकमें बारह ओ३म् गिनें, कुम्भकमें अड़तालीस ओ३म् और रेचकमें चौबीस ओ३म् फिर शनैः-शनैः; यह समय बढ़ता जायेगा।

२—अप्रैलसे सितम्बर तक तो आरम्भ बायें नथनेसे अर्थात् चन्द्र स्वरसे करना चाहिये, क्योंकि वह शीतल है। परन्तु अक्तूबरसे मार्च तक इसके विपरीत सूर्यस्वर अर्थात् दायें से आरम्भ करना चाहिये जो कि उष्ण है।

३—जब कुम्भक करने लगें तो गर्दनको झुकाकर ठोढ़ीको छातीसे लगा लेना चाहिये और उसी समय मूल द्वारको खूब संकोच करना चाहिये, इससे ऊपर व नीचे बन्ध हो जाता है। रेचकके समय भी श्वासको बहुत शनैः-शनैः इसी मुद्रामें निकालना चाहिये,बंध कुछ ढीला करना चाहिये। रेचक करनेके पश्चात् गर्दनको उठा लेना चाहिये।

४—इस प्राणायामके पश्चात् ध्यान लगानेका नियम यह है कि श्वास पर ध्यान लगायें। भीतर जब श्वास जाये तो मनमें ओ३म् का उच्चारण करें; बाहर जाय तब कुछ नहीं। श्वास इससे सूक्ष्म हो जाता है और एकाग्रता बढ़ जाती है। इसके और भी बहुतसे लाभ हैं।

—सर्वाधिकार सुरक्षित।

धार्मिक जीवन ही सफल जीवन है

व्याकरणाचार्य श्री हारानचन्द्र भट्टाचार्य

जो मनुष्यको सच्चा सुख देनेमें समर्थ तथा इस संसारको धारण करनेवाला है, वही धर्म है। वह धर्म दो प्रकारका है—साधारण धर्म तथा विशेष धर्म। जो मनुष्य मात्रके लिये आवश्यक कर्त्तव्य है, उसे साधारण धर्म कहते हैं और जो सकल मनुष्योंके कर्तव्यके अन्तर्गत नहीं है—केवल व्यक्ति विशेषके आचरणके लिये जिसका उपदेश किया गया, वह विशेष धर्म है।

धर्म शास्त्रकारोंमें भगवान् मनुका स्थान सर्वोपरि है। भगवान मनुने साधारण धर्मके विषयमें कहा है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अर्थात् धैर्य, क्षमा, अन्तःकरणका संयम, अस्तेय अर्थात् किसीकी कोई वस्तु उसकी आज्ञाके बिना न लेना, शरीरकी पवित्रता, इन्द्रियोंका संयम, व्यावहारिक ज्ञान, अध्यात्म विद्याका परिशीलन, सत्य तथा किसी पर क्रोध न करना—ये दस धर्मके लक्षण हैं।

साधारण धर्म सबके लिये सभी अवस्थामें कर्तव्य है, यह भी मनुजीकी आज्ञा है।

इस साधारण धर्ममें सत्यका बड़ा महत्व है। महाभारत—शान्तिपर्व—में कहा है—किसी समय प्रजापतिके मनमें सत्यके महत्वके विषयमें जिज्ञासा हुई। उन्होंने सत्यके साथ एक सहस्र अश्वमेघ यज्ञोंको तौला; उसमें उन्हें सत्यका पलड़ा भारी मिला।

सरलता सत्यका ही एक रूप है; उसके विषयमें महाभारतमें कहा है—सारे तीर्थोंमें स्नान करना तथा उसके साथ सरल बर्ताव रखना—इन दोनोंमें सरलता ही श्रेष्ठ है।

[महाभारत-उद्योग ३५।२]

महाभारतमें व्यासजीने सूत्र-रूपमें धर्मके स्वरूपका विवेचन करते हुए निर्णय किया है—जो कुछ अपना अप्रिय है, दूसरोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयमें भी उसका आचरण नहीं करना चाहिये। संक्षेपमें धर्मका स्वरूप यही है।

[महाभारत-उद्योग ३९।७२—७३]

इन बातोंसे धार्मिक जीवन —सात्विक जीवन—के स्वरूपका परिचय मिलता है। मनुष्य यदि सच्चे मार्गपर चलना चाहे तो उपर्युक्त सिद्धान्तों पर अवश्य ही ध्यान रखना होगा। इन कर्तव्योंका पालन किये बिना सात्विक जीवनका लाभ कभी नहीं हो सकता। सात्विक जीवनके लिये साधारण धर्मोंके पालनके साथ-साथ विशेष धर्मोंका भी पालन आवश्यक है। विशेष धर्म अधिकारियोंकी भिन्नतासे भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। शास्त्रोंमें इन विशेष धर्मोंका विस्तार रूपसे वर्णन है। जो धार्मिक जीवन की इच्छा रखते हैं, उनको शास्त्रोंसे इन धर्मोंको जानकर अपनी योग्यताके अनुसार उनका आचरण करना उचित है और तभी जीवनमें सुख, शान्ति और सफलता मिल सकती है।

वास्तविक धर्म और हमारा जीवन

श्रीगंगाप्रसाद भोतिका, एम० ए०, बी० एल०

भारतीय संस्कृतिके अनुसार हमारे जीवनमें धर्मका स्थान बहुत ऊंचा है। यहां तो मनुष्यका जीवन गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्त धर्मसे ही ओत-प्रोत है। मानव जीवनका प्रत्येक कार्य धार्मिक नियमोंसे संचालित होता है। धर्मसे यहां अभिप्राय साम्प्रदायिक रीति रिवाजोंसे नहीं है। वे तो प्रत्येक देश और कालमें बदलते रहे हैं। किन्तु धर्मके जो मूल सिद्धान्त हैं वे सनातन कालसे जिस रूपमें चले आये हैं अनन्तकाल तक उसी रूपमें चलते रहेंगे। उनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। भगवान् मनुने धर्मके जो दश लक्षण लिखे हैं वे उसी कोटिके हैं। उन्हें किसी भी समाजमें अपने जीवनमें स्थान देनेमें पग-पगपर दुस्तर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। किन्तु जो मनुष्य अपने जीवनको सात्विक बनाना चाहता है वह इन कठिनाइयोंसे घबराकर अपने निश्चित मार्गसे विचलित नहीं होता। वह तो निरन्तर इस बातकी चेष्टा करता ही रहता है कि उसका जीवन वास्तवमें धार्मिक बने जिससे वह मनुष्य-जीवनके ध्येयको प्राप्त कर सके। धर्मके जिन लक्षणोंकी ऊपर चर्चाकी गयी है वे इस प्रकार हैं—

[इस लेखके लेखक]

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धृति (धैर्य) क्षमा, दम (बुरी वृत्तियोंका दमन) चोरीका त्याग, शुद्धता, इन्द्रियोंको वशमें रखना, बुद्धिसे काम लेना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याध्ययन करना, सत्य और अक्रोध (अहिंसा) का पालन-ये धर्मके दश लक्षण हैं। जो लोग धर्मके इन लक्षणोंके अनुसार अपने जीवनको चलाते हैं वे ही वास्तवमें धार्मिक कहे जा सकते हैं। आज तो लोग धर्मके नामपर झूठे आडम्बरोंको प्रश्रय दे रहे हैं जिससे परस्पर वैमनस्य बढ़ता है और शान्ति नष्ट होती है। इन आडम्बरोंने ही तो धर्मके नामको बदनाम कर दिया है। आज तो जो धर्मकी चर्चा करता है उसे लोग सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं। उनका ख्याल है—या तो यह अपने स्वार्थकी बात कहेगा या परस्पर द्वेष फैलनेकी शिक्षा देगा। इसलिये अच्छे लोग धर्मके नामसे कोसों दूर रहते हैं। किन्तु यह स्थिति वांछनीय नहीं है। आवश्यकता इस बातकी है कि धर्मके मूल सिद्धान्तोंका प्रचार किया जाये जिससे मनुष्य-समाजका चरित्रबल बढ़े और उच्छृङ्खल जीवन बितानेकी ओर लोगोंकी जो प्रवृत्ति बढ़ रही है उसमें रुकावट हो। देशका वास्तविक कल्याण तभी हो सकता जब नागरिकोंमें कर्तव्य पालनकी भावना बढ़े और यह तभी बढ़ सकती है जब धर्मका असली तत्व हृदयङ्गम कर लिया जाये।

महात्मा गान्धी वास्तवमें धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सत्य और अहिंसा पर उनकी अटूट श्रद्धा है। ये मनु द्वारा बतलाये हुए दश लक्षणोंमेंसे दो लक्षण हैं। इन दो लक्षणोंपर पूरा जोर देने और उनका अक्षरशः पालन करनेके कारण आज उन्होंने भारतवर्षकी काया-पलट कर दी है। जो लोग उनसे मतभेद रखते हैं वे भी उनकी सत्यता और अहिंसा पर किसी प्रकारका अविश्वास नहीं करते। जो राजनीति आज कूटनीतिके रूपमें परिणत हो गयी है उसमें सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंका समावेश करके उन्होंने संसारके सामने एक आश्चर्यजनक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। असली धर्मके तत्वको उन्होंने समझा है। उनके जीवनमें हम धर्मके सभी लक्षणोंका समावेश पाते हैं किन्तु सत्य और अहिंसा तो उनके प्राण ही हैं। आज संसारके सामने उन्होंने वास्तविक धार्मिक जीवनका एक ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित कर दिया है। जो लोग धर्मका नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़ते हैं वे भी उनके परम भक्त हैं। यह बात स्पष्ट बतला रही है कि लोगोंकी धर्मके प्रति अवहेलना नहीं है, बल्कि धर्मके नामपर जो अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और धार्मिक जीवन व्यतीत करके धर्मको बदनाम करते हैं उन्हींके प्रति लोगोंकी अश्रद्धा है।

हिन्दू-धर्मने मनुष्यके कार्योंको इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया है कि उसका प्रत्येक कार्य धर्मके अन्तर्भूत होना चाहिये। खाना, पीना, सोना, उठना आदि जो स्वास्थ्यके नियम हैं उनपर भी धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं, जिससे मनुष्यका प्रत्येक कार्य सात्विक जीवनको प्रश्रय देनेवाला हो। बात है भी ठीक ही। यदि हम अपने आहार-विहारको नियंत्रित न रखेंगे तो हमारी मानसिक वृत्तियोंको प्रोत्साहन मिलेगा जिससे हमें धार्मिक जीवन बितानेमें काफी कठिनाई होगी। जबतक हम अपने जीवनके प्रत्येक कार्यको धर्मके नियमोंके अनुकूल करनेका प्रयत्न न करेंगे, तबतक हम सच्चे धार्मिक नहीं बन सकते। इसीलिये हमारे पूर्वजोंने प्रत्येक कार्यकी व्यवस्थाको—चाहे वह कार्य सामाजिक, राजनीतिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी किसी भी प्रकारका क्यों न हो—धर्मका रूप दिया है। यदि आप सच्चे धार्मिक बनकर अपनी आत्माका कल्याण चाहते हैं तो आपको अपने प्रत्येक कार्यको करते समय यह देख लेना होगा कि वह धार्मिक नियमोंके प्रतिकूल तो नहीं है। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपको धार्मिक जीवन बितानेमें काफी बाधाओंका सामना करना पड़ेगा और बहुत कुछ सम्भव है कि आप उन बाधाओंके कारण धार्मिक पथको छोड़कर अधार्मिक जीवन व्यतीत करने लगें। आज हमारे नवयुवक उत्पथगामी हो रहे हैं इसका ही यह परिणाम है कि वे धर्मका मखौल उड़ाते और अनियन्त्रित जीवन व्यतीत करते हैं जिससे नाना प्रकारके प्रलोभनोंमें फंसकर अपने जीवनको बरबाद कर देते हैं। वर्तमान समयमें भौतिकवादकी चरमोन्नतिके कारण पद-पदपर प्रलोभनोंकी भरमार रहती है जिनसे बचना बहुत ही दुष्कर कार्य है। उनसे वही मनुष्य बच सकता है जिसे वास्तविक धर्मकी शिक्षा मिली है और जिसने मानव जीवनमें धर्मका क्या स्थान है इसे हृदयंगम कर लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात्विक जीवन

श्री भोले बाबाजी महाराज

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥

इस न्यायसे सतोगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिये सतोगुण ग्राह्य है। रजोगुणसे लोभ होता है और तमोगुणसे प्रमाद, मोह और अज्ञान होता है। इसलिये रजोगुण, तमोगुण दोनों त्याज्य हैं। आहार, यज्ञ, तप और दान ये चारों गुणोंके भेदसे सात्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकारके शास्त्रोंने बताये हैं; ये भी सात्विकी ग्राह्य हैं और राजसी, तामसी त्याज्य हैं। उसी प्रकार ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, बुद्धि, धृति, ये भी सात्विकी ग्राह्य हैं और दूसरे दो त्याज्य हैं। इन सबका फल सुख भी सात्विकी ग्राह्य और राजसी, तामसी त्याज्य है। इन सबका होना आहारके ऊपर निर्भर है। कहा भी है—जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन। सात्विकी आहारसे शरीर स्वस्थ रहता है और पुष्ट भी होता है। स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कई विद्वानोंका मत इस प्रकार है—

एक - मनुष्यके लिये यह बड़ा भारी निन्दित कर्म है कि लापरवाहीके कारण समयसे पहले वृद्ध हो जाये और मनुष्यका अधिकाररूप कर्म, भक्ति अथवा ज्ञान न प्राप्त कर सके।

दूसरा—उत्तम स्वास्थ्य वह है जो रातको मीठी नींद सुलाता है, सबेरे भी प्रसन्नमुख उठाता है। सर्वदा प्रसन्न बनाता है और उत्साह तथा सौन्दर्य बढ़ाता है।

तीसरा—श्रेष्ठ स्वास्थ्य वह है, जिसके अनुग्रहसे मस्तिष्कमेंसे प्रकृतिके नये-नये नियम प्रकट होते हैं और बढ़ते हुए चिरकाल तक विद्यमान रहते हैं।

चौथा—प्रशस्त स्वास्थ्य वह है जिसके कारण जीवात्मा इस भौतिक शरीरमें सुख शान्तिसे रहता हुआ, अपनी आंखोंकी खिड़कियोंमेंसे अपनी प्रसन्नता दिखाये।

पांचवां—इस पृथ्वीपर स्वास्थ्य ईश्वरकी सबसे उत्तम देन है।

छठा—अस्वस्थ जीवन व्यतीत करनेसे मरना हजारगुना उत्कृष्ट है।

सातवां—धन-द्रव्य, मान-जान, ऐश्वर्य-प्रभुता इत्यादिका प्राप्त करना स्वास्थ्यके ऊपर निर्भर है, सबके प्राप्त करनेका साधन स्वास्थ्य ही है।

उपर्युक्त विद्वानोंके कथनसे और अपने सबके अनुभवसे सिद्ध है कि स्वास्थ्य ठीक होने पर ही बाहरकी सब चीजें और सब पदार्थ अच्छे लगते हैं, नहीं तो नहीं। इसलिये सात्विक-जीवनके प्रेमियोंको अपने शरीरका स्वस्थ रखनेमें दत्तचित्त रहना उचित है। स्वास्थ्य बिना लौकिक, पारमार्थिक कोई कार्य नहीं हो सकते। ईश्वर-भजन, जप, ध्यान, कथा-श्रवण, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि इन सबमें स्वास्थ्यकी मुख्य आवश्यकता है। तब कौन ऐसा मूर्ख होगा जो लापरवाही करके अपने स्वास्थ्यको बिगाड़कर समयसे पहले रोगी, अथवा वृद्धा होकर अपने जीवनको बिगाड़ लेगा? कोई नहीं, सिवाय मूर्खके कोई नहीं। मित्रो! स्वास्थ्य पर ध्यान देकर धर्म सीखो, नित्य सुखकी खोज करो, सत्शास्त्र पढ़ो, सत्संग करो, ईश्वर आपकी सब कामनाएं पूर्ण करेगा। चतुर पुरुषके लिये थोड़ा कहना बहुत होता है। मूर्खको दिन रात समझाया करो कुछ भी नहीं समझता। इसलिये यम, नियम आदिका पालन करते हुए स्वस्थ रहकर संन्ध्या, वन्दन, स्वाध्याय आदि नित्यकर्म करते हुए आनन्दसे सात्विक जीवन व्यतीत करो। नीचेकी कविता आपको आपका सब कर्तव्य बताकर कल्याणपथपर आरूढ़ करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन यही है सात्विकी

(१)

ज्यादा कमी मत खाइये, कम भी न भोजन कीजिये।
आरोग्य जिससे तन रहे, आहार ऐसा लीजिये ।।
आरोग्यता सुख-मन्त्र है, सबके बड़े ही काम की।
आरोग्य जीवन है सफल, जीवन यही है सात्विकी ।।

(२)

दो भाग भरले अन्नसे, इक भाग मांही जल भरे।
इक भाग रखे शेष जिससे प्राण सुख पूर्वक धरे ॥
आहार देता दुःख है, आहार ही करता सुखी।
आहार नियमी हो सुखी, जीवन यही है सात्विकी ।।

(३)

आहार जीवन हेतु है, नर धीर ऐसा जानना।
जीवन मिला आहार हित नरमूढ़ ऐसा मानता ।।
नर धीरकी चल चाल तू, मत चाल चल नरमूढ़ की।
यह शिष्ट जनका मार्ग है, जीवन यही है सात्विकी ।।

(४)

ज्यादा कभी मत जागिये, ज्यादा कभी मत सोइये।
आलस्य या गप-शप्पमें, ना व्यर्थ आयुष खोइये ।।
चर्या नियत कर लिजिये, सप्ताहकी दिन रातकी।
सब कार्य कीजे नियमके, जीवन यही है सात्विकी ।।

(५)

जो कार्य करना होय सो, सोचे विना मत कीजिये।
पहिले समझ लो, सोचलो, फिर हाथ उसमें दीजिये ।।
आरम्भ करके कार्य फिर चिन्ता न कीजे अन्तकी।
उत्साहसे हो कार्य सब, जीवन यही है सात्विकी ।।

(६)

सत्शास्त्र पढ़िये प्रेमसे, सत्संग माहीं लाइये।
दुर्ग्रन्थ मत पढ़िये कभी, ना दुष्ट मित्र बनाइये ।।
सत्संग देता है खबर, इस लोककी परलोककी।
सब मर्म देता है बना, जीवन यही है सात्विकी ।।

(७)

वेदाङ्ग पढ़, साहित्य पढ़िये, काव्य पढ़िये चावसे।
पढ़िये गणित रेखा गणित न्यायादि धरिये भावसे ।।
इतिहास आदिक देख सब, चिन्ता मिटा दो चित्तको।
जितना सके उतना धरे, जीवन यही है सात्विकी ।।

(८)

पढ़ धर्म शिक्षक शास्त्र तू, पढ़ भक्ति शिक्षक शास्त्र रे।
विद्या सभी धर श्रेय कारी, मोक्ष शिक्षक शास्त्र रे ।।
दे चित्त शिष्टाचारमें, जड़ काट दुष्टाचार की।
सीढ़ि यही है स्वर्गकी, जीवन यही है सात्विकी ।।

(९)

आचार्य द्वारा शास्त्र पढ़, हो शान्त मन एकाग्रसे।
विक्षिप्तताको दूर करके, बुद्धि शुद्ध विचारसे ।।
कर गर्व विद्याका नहीं, तज गन्धतक अभिमानकी।
ज्ञानी अमानी हो सरल, जीवन यही है सात्विकी ।।

(१०)

गुरुवाक्यका कर अनुसरण, विश्वास श्रद्धायुक्त हो।
बतलाय है जो शास्त्र, कर आधार संशयमुक्त हो ।।
गुरु शास्त्रके उपदेश पर दे छाप दृढ़ विश्वासकी।
गुरु शास्त्र आज्ञा मानना जीवन यही है सात्विकी ।।

(११)

संध्यादि जितने हैं नियम, सब ही नियमसे चाल रे।
उत्साहसे अनुरागसे, सब दोष मनके टाल रे ।।
मन कर्म चातक रूप करके मित्र बन तू चातकी।
मन कर्म वाणी शुद्ध रख, जीवन यही है सात्विकी ।।

(१२)

चौथे पहरमें रातके, जब पुण्य ब्रह्ममुहूर्त हो।
दे त्याग निद्रा शीघ्र ही, मत नींदमें आसक्त हो ।।
विश्वेशसे कर जोड़के कर प्रार्थना कल्याण की।
जगदीशकी आराधना, जीवन यही है सात्विकी ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३)

सुख शान्तिका भंडार, तेरे चित्त मांही गुप्त है।
तजकर अहंता प्राप्त कर, क्यों हो रहा संतप्त है॥
सुख सिन्धु मांही मग्न हो जा भूल सुध बुध देह की।
सब काम तज हरि भज सदा, जीवन यही है सात्विकी॥

(१४)

संमुख सदा रह ईशके, संसारसे मुख मोड़ कर।
नाता अमीसे तोड़ दे, शिव शान्तमें मन जोड़कर॥
भोला! उलटता मत्स्य जब तक प्यास बुझती मत्स्य की।
संमुख सदा रह ईशके, जीवन यही है सात्विकी॥

दो०—सात्विक जीवन जे करें, होंय सतोगुणयुक्त। 'भोला' भगवद्भक्त हों, पीछे हों भवमुक्त॥

शक्तियोग

राजगुरु पं० हरदत्त शास्त्री

सच्चिदानन्द-विभवात् सकलात् परमेश्वरादा-
सीत् शक्तिस्ततोनादः नादाद् विन्दु समुद्भवः।
परशक्तिमय साक्षात् त्रिधासौ भिद्यतेपुनः
विन्दु नादौ बीजमिति तस्यभेदाः समीरिताः।

अव्यक्त शुद्धात्मा निष्कल अर्थात् कलनारहित विशुद्ध नित्य स्वयं प्रकाश है उसी सच्चिदानन्दसे सकल कलनात्मक स्फूर्ति होती है। उस सकल ब्रह्मसे शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, एवं उस शक्तिसे नाद विन्दु संसारका बीज उत्पन्न होता है। उस सच्चिदानन्द परम शक्तिके साथ मनके योग करनेको शक्तियोग कहते हैं। जिस शक्तिसे

भीषास्मात् वातः पवति भीषो देति सूर्यो-
भीषश्चन्द्रमतारका मृत्युर्धावति पञ्चमः।

यह सच्चिदानन्दमयी शक्ति है जिसके भयसे वायु, सूर्य चन्द्रमा, तारागण मृत्यु तक डरती है उस परम शक्तिका आराधन करना शक्तियोग है, विद्या-अविद्या, परा-अपरा, इसी शक्तिके अव्यक्त और व्यक्तभेद हैं। इसके व्यक्त रूपकी उपासनासे लोग मृत्यु तकको विजय कर लेते हैं और अव्यक्तसे मोक्ष।

"विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयँसह।
अविद्ययामृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।"

इसी प्रकार सार समुच्चयमें

"एतस्या परतस्थिता भगवति भूतस्वधि-
देवाधिपा विर्व्वाणाख्य कलार्द्ध चन्द्र कुटिला
सषोड़शान्तर्गता।"

इसीको निर्वाणकला और बोधनी शक्ति तन्त्र-शास्त्रमें कहा है। उपासनामें इसीको षोड़शी अमाकला कहते हैं। षोड़शीकी उपासना हादि और कादि—दोनों मोक्ष्य विद्या कही गयी हैं। सुमेधाने इसी शक्ति योगको

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।

प्रसन्नता अर्थात् विकास होनेसे मोक्षसिद्धि कही है। ऋषिपुत्री वागाम्भृणीने इसी शक्तियोगका ऋग्वेदमें उपदेश किया है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम × × ×।
अहं भूमि मददाम् आर्याय। इत्यादि।

अर्थात् मैं ही शक्ति स्वरूपसे वसुरुद्रको चलाती हूं। इत्यादि। आचार्य कृत सौन्दर्य लहरीमें इसी शक्ति योगकी महिमामें

शिवशक्त्यायुक्तः यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।

शिव शक्तिके योगसे ही प्रभाव युक्त हो सकता है। बीज कोशके अनुसार हकार शक्तिबीज शिव शब्दपर हकारके योगसे शिव (कल्याण, मंगल) बनता है। यदि शक्ति, बीज निकाल दें तो "शिव" अर्थात् (प्रेत) मुर्दा हो जाता है। इसी शक्ति-बोधके महत्म्यपर अपराधक्षमायापन स्तोत्रमें लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवानि त्वत्पाणि ग्रहण परिपाटी फलमिदम्।

अर्थात् शिवजी तो भस्म धारण किये चितामें रहनेवाले अमंगलमूर्ति थे :पर महामाये पार्वति, तुम शक्तिके योगसे आज वही ईश्वर-शक्तिशाली हो गये हैं। तन्त्रसारमें कहा है—

अमा षोड़श भागेन देवि प्रोक्ता महाकला
सास्थिता परम माया देहिनां देहधारिणी।

मनुष्य देहमें यह सोलहवीं कलारूपी अमाकला है। सार समुच्चयमें षोड़शी कलाका इस प्रकार वर्णन किया है—

एतस्या परतस्थिता भगवति भूताधिदेवा परा
निर्व्वाणाख्य कलार्द्धचन्द्र कुटिला सा षोड़शान्तर्गता
वालाग्रस्य सहस्रधा विभगतिस्ये केन भागेन वा
सूक्ष्मत्वा सदृशी त्रिलोक जननी या द्वादशार्कप्रभा

सम्पूर्ण प्राणीमात्रकी आदि भगवति षोड़शी अर्द्धचन्द्रा कलामें मोक्षकला वालके सहस्रांशका एकांश सूक्ष्मकला त्रिलोककी माता द्वादश सूर्यके प्रकाशवाली भगवति शान्ति है।

इसीको षट्चक्र निरूपणमें कहा है—

विद्युत्कोटि समान कोमल तनुर्विद्योदिना-
द्योमुखी नित्यानन्द परम्पराति विगलत्पीयूषधारा-
धरा। कोटि बिजलीके सदृश चमकनेवाली आनन्दरूपी अमृत-धारा बहानेवाली नीचेकी ओर मुख किये वह कुण्डलिनी रूपा शक्ति है। उसके योगसे दुःखोंसे बच जाओगे—

तं विद्यात् दुःख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्।

स्वच्छन्द संग्रहमें इस प्रकार वर्णन किया है—

ब्रह्माणि त्वपरा शक्ति ब्रह्मणोत्संग गामिनि।
द्वारे सुमोक्ष मार्गस्य रोधयित्वा व्यवस्थिता॥
तोभित्वातु वरारोहे उर्द्ध्व शक्ति परां शिवाम्।
शक्ति तत्वात्मिका देवीं प्रसुप्त भुजगाकृतिम्॥

कुण्डलिनी शक्ति जिसका वर्णन षट्चक्र निरूपणमें इस प्रकार आया है उसे चित्राका स्वरूप कहकर यह बताया—

तस्योर्द्ध्वे विशतन्तु सोदर कला सूक्ष्मा जग-
न्मोहिनी ब्रह्मद्वार मुखं मुखेन मधुरं संछादयन्ती
स्वयं। शङ्खा वर्त निभा नवीन चपला माला
विलासास्पदा सुप्ता सर्प समा शिवोपरिलसत् सार्द्ध
त्रिवृत्ताकृति:॥

कमलतन्तुके समान अतिसूक्ष्म संसारको मोहमयी निद्रामें डालनेवाली शङ्खके समान आवर्तनवाली ब्रह्मद्वार ज्ञानशक्तिको ढंककर साढ़े तीन फेरे लगाकर सोयी हुई सांपकी तरह शिवके ऊपर मूलाधारमें स्थित इस कुण्डलिनीको जागृत करना शक्ति योगका रहस्य है। यह शक्तियोग दो प्रकारका है—विश्व शक्ति योग और देह शक्तियोग। सबसे प्रथम इसमें समताकी आवश्यकता है। देह शक्तियोगमें मेरुदण्डके दोनों बाजूमें जो ये सिराएं हैं अर्थात् इड़ा और पिंगला, (चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी) इन दोनोंकी समतामें गुरुपदिष्ट साधन करनेमें सन्ध्या हो जायेगी अर्थात् सुषुम्नाका विकास होगा और उसी परम्परासे वज्रा और चित्राका विकास होगा तब ब्रह्मनाड़ी अर्थात् चित्राके बीच छिद्रमेंषट्चक्र ओर तदधिष्ठात्री देवता अधिदेवता और षट्चक्रोंकी अधिनायिका डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी शक्तियोंका विकास उन शक्तियोंके योगसे भ्रूमध्यमें स्थित होकर:सहस्रार पर्यन्त शिवकी प्राप्ति निर्वाणकला षोड़शी शक्तिका योग हो जायेगा। इन षट्चक्रोंसे अकारसे हकार पर्यन्त शब्दकी अभिव्यक्ति होती है। अकार स्पष्टी रचनात्मक हकार विसर्ग संहारात्मकवर्ण बनते हैं, पर ध्यान रहे कि मूलाधारके अन्तिम वर्णसे वर्णक्षर अर्थात् रंग, ध्वनि और नाद पैदा होते हैं जैसे मूलाधार चतुर्दलमें वं सं शं षं हैं। आचार्यने इन चक्रोंका वर्णन इन प्रकार सौन्दर्य लहरीमें किया है—

मही मूलाधारे कमपि मणि पुरे हुतवहं
स्थित स्वाधिष्ठाने हृदिपवनमाकाशमुपरि।
मनोपि भ्रूमध्ये सकलमपि भीत्वा कुलपथी
सहस्रारे पद्मे सहरहसि पत्या विहरसि॥

मूलाधार चार, कमल पृथ्वीतत्व लं बीज स्वाधिष्ठान षटदल, जलतत्व वं बीज मणीपूर १० दशदल, वह्नितत्व रं बीज हृदयमें, अनाहत १२ दल, यं बीजविशुद्ध १६ दल, आकाशतत्व हं बीज भ्रूमध्यमें। इस प्रकार इन षट्रस दलोंसे उस परम शक्तिकी सहस्रार कमलमें शान्त दशामें लाना पूर्ण शक्तियोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सम्मोहन तन्त्रमें भ्रूमध्य आज्ञाचक्रका अति सूक्ष्म वर्णन किया है—

इन्दुर्ललाट देशे च तदूर्द्धे बोधनी स्मृता।
तदूर्द्धं भातिनाप्तैसौ अर्धचन्द्राकृति परः॥
तदूर्द्धेच महानादो लांगुलाकृतिरुज्ज्वलः।
तदूर्द्धेच कलाप्रोक्ताः आञ्जीति योगी वल्लभा।
उन्मनीच तदूर्ध्वेच यद्गत्वा न निवर्तते॥

ललाट प्रदेशमें चन्द्रमाका स्थान, उससे ऊपर बोधनी शक्तिका विकास स्थान, उसके ऊपर नाड और महानाड, उसके ऊपर तिरछी रेखा, आञ्जीकला ; इसीमें ध्यान करनेसे योगवस्था योगियोंको मिलता है। उसके ऊपर उन्मनी असंप्रज्ञात समाधिका स्थान मोक्ष-सिद्धिका स्थान है।

यत्र गत्वातु मनसो मनत्वं नैव विद्यते।

यह उन्मनी वह स्थान है जहांपर मनके संयमन करनेसे मन नहीं रहता है इसका ज्ञान—

गुरुपदेशतोज्ञेयं नतु शास्त्रार्थ कोटिभिः।

पुस्तकोंके रटनेसे यह ज्ञान नहीं होगा, यह गुरुके उपदेशसे होगा—

तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवाभि गच्छेत्।

इस अव्यक्तके ज्ञानके लिये गुरुके पास जाना चाहिये। इस स्थानमें मनके संयम करनेसे—

इहस्थाने चित्तं निरवधि निधायात्तपवनो यदि क्रुद्धो योगी चलयति समस्तं त्रिभुवनम्। न च ब्रह्मा विष्णु न च हरिहरौ तदीयं सामर्थ्यं समायेतुमलं नापिगणपतिः॥

इस स्थानमें मनके निरन्तर संयम न करनेवाले शक्ति योगी की यह शक्ति हो जाती है कि यदि वह कभी क्रोधित हो जाय तो त्रिभुवनको हिला देता है। ब्रह्मा विष्णु रुद्र गणेश सूर्य कोई उसकी शक्तिको सामना नहीं कर सकता है। इन्हीं पर निर्वाण कला अवलम्बित है। गीतामें कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

यहांपर शरीर छोड़ती बेर जो ॐ का व्यवहार करता है उसकी जो आत्मगति होती है, उसको इस प्रकार दिखाया है—

इहस्थाने विष्णोरतुलपरमा मोदमुदरे,
समारोप्य प्राणात् प्रमुदितमना प्राण निधने।
परं नित्यं देवं पुरुषमजमाद्यं त्रिजगतां
पुराणं योगीन्द्रः प्रविशति च वेदान्त विदितम्॥

इस स्थानपर प्राण उत्क्रान्तिके सम जो प्राण और मन लगाकर अर्थात् राजयोग हठयोगसे विष्णु-पदमें प्राण रखकर प्रसन्नचित्त हंसते हुए प्राण त्याग देता है वह वेदान्त विदित उस परम धामको पहुंच जाता है।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढ़ानानु पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥

जीवन उतक्रान्तिके समय ज्ञान दृष्टिसे वह अपनी आत्माको देख सकता है। आगम कल्पद्रुममें इसका प्रथम साधन निरालम्ब मुद्रा बतायी है—

त्यजेत् शैथिल्यमेषानां नासाग्रे रोपयेद्दृशौ।
मुखं विवृणुयात् किञ्चित् दन्तैर्दन्तानृसंस्पृशेत्॥
रसना मन्तराकुर्या दनंगे धारयेन्मनः।
ईयं सा परमा मुद्रा निरालम्बेति पञ्चमी॥

पहले शिथिलीकरण करके फिर शैथिल्य छोड़कर नासिकाके अग्रभागमें दोनों नेत्रोंकी दृष्टि डाले, मुख जरा बन्द-सा रखे ऊपर नीचेके दांत परस्पर न लगें। जिह्वा मुखके अन्दर रहे, मन अव्यक्तमें लगाये यह निरालम्ब मुद्रा है।

नित्य इड़ा-पिंगलाकी सन्धिमें और रात्रि-दिनकी सन्धिमें इस शक्तियोगका अभ्यास यम, नियम प्रतिष्ठावाला और आहार इन्द्रियोंके द्वारा जो भोग अन्दर लिया जाता है तथा विहार जो बाहर किया जाता है। इस क्रमका जिसने शास्त्र पद्धतिपर बना लिया हो वही इस योगको कर सकता है। और पुरुषोंके लिये तो यह केवल प्रयास मात्र है। संक्षिप्त शक्तिके योगके लिये समयाभाव है इसलिये विश्वयोगको अति संक्षिप्त रूपसे दिखाते हैं उसमें इड़ा पिंगला की समता **समं पश्यन् हिसर्वत्र** सब जगह समदृष्टि रहे कहा है—

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योगमुच्यते

॥ 2919
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र समदृष्टी रखे, फलकी अकांक्षा न करे। गीतामें **समः संग विवर्जित** आया है— अर्थात फलाशक्ति न हो समताका भाव रहे **शीतोष्ण सुख दुःखेषु**— इन्द्रियोंके सुख भोग और असुख अभोग समान जाने, **न परेषु संदध्यात्**—जो बात अपने आपको दुःखदायी है वह दूसरेको न करे ऐसी साम्यावस्था साधन करनेवाला योगी महाशक्ति योगका अधिकारी होता है। प्रायः वर्ष भरमें दो बार संसारके ईड़ा पिंगलाकी सन्धि हो जाती है जिसे नवरात्रि कहते हैं। इन दिनोंमें रात्रि दिन बराबर हो जानेसे चन्द्र सूर्यकी समानतासे विश्वकी सुषुम्नाका विकास हो जाता है। ये नव दिन नवरात्र नामसे प्रसिद्ध हैं। इन दिनोंसब इन्द्रियोंको उनके व्यापारसे रात्रिकर अन्तर्मुख कर महाशक्तिका व्रत करे। उस व्रतमें अपने आपको विश्वका अनुभव करे। सब व्यवहार अन्तर्मुख वृत्तिमें लय कर वह पराशक्ति अर्द्धमात्रा जिसका शब्दमें वर्णन नहीं होता उसका आगम शास्त्रोक्त योग करे। पर देख ले जबतक मन क्षिप्त-विक्षिप्त रहे तवतक इसके पूर्व पुण्यकर्म जिनका शास्त्रमें वर्णन है उन्हें करे और कुछ चन्द्रायण व्रत इसके पूर्व करे क्योंकि जबतक पाप कर्मका संस्कार रहेगा तबतक मन इस योगमें नहीं लग सकता है, यथा गीतामें कहा है---

येषान्त्वन्त गतं पापं जनानां पुण्य कर्मणां।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां द्रढ़व्रताः॥

जिनके पाप नाश हो जाते हैं वही दृढ़ व्रती होकर माता का भजन कर सकता है।

मानव जीवनमें धर्मका स्थान

राय बहादुर रामदेव चोखानी

मनुष्य और पशुमें यही भेद है कि पशु अपने जीवनको सुधारनेमें असमर्थ रहता है जब मनुष्य इहलोक तथा परलोक दोनोंको सुधारनेकी सर्वथा क्षमता रखता है। पर खेद तो इस बातका है कि हम लोग इतने अचेत रहते हैं कि अपनी सच्ची भलाईके लिये बहुत थोड़ा ही प्रयत्न करते हैं बल्कि मनुष्यके शरीरको पाकर भी उससे लाभ उठानेके बदले अपने इहलोक और परलोक दोनोंके हितोंके विरुद्ध ही आचरण करते रहते हैं। इस सम्बन्धमें कई एक ऐसी मूल बातें हैं जिनपर हमारा ध्यान जाना अत्यन्त आवश्यक है।

[इस लेखके लेखक]

मनुष्योचित कर्त्तव्यके लिये परमावश्यक है कि आरम्भसे ही उसकी शिक्षा दीक्षा तथा ब्रह्मचर्य पालनका उत्तम प्रबन्ध हो जो कि हरएक व्यक्तिके भावी जीवनसे विशेष सम्बन्ध रखते हैं। पर वास्तविक अवस्था आजकल पूर्णतः विपरीत पायी जाती है। हमलोग चाहते तो हैं भलाई पर काम करते हैं बुराई के। पर यह कदापि सम्भव नहीं, क्योंकि बबूलके पेड़ बोयेंगे तो उनसे आम पैदा नहीं हो सकते।

लड़कपनसे ही हमारे बच्चे ऐसे वातावरणमें रहते हैं जिसका कुप्रभाव उनके भावी जीवनपर पड़े बिना नहीं रह सकता। हमलोग बालूकी नींवपर घर बनाकर उसकी रक्षा चाहतेहैं, यह कैसे हो सकता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति और गृह जीवनमें सच्चे ब्रह्मचर्य और आचार-विचारोंकी रक्षाका हमारे पास कोई साधन नहीं दिखायी देता। इस दशामें यदि हमारी सन्तान बल वीर्य तथा चरित्रहीन हो तो आश्चर्य क्या? पशु पक्षी अपने प्राकृतिक स्वभावसे प्रेरित होकर अपनी शारीरिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा करनेमें समर्थ रहते हैं पर हम आर्य सन्तान जिन्हें अपने प्राचीन गौरवका पूरा ज्ञान होना चाहिये इस समय इस दिशामें संसारकी अन्य जातियोंकी अपेक्षा सब प्रकारसे निर्बल बने हुए हैं। यह सचमुच लज्जाकी बात है।

प्रथमसे ही देखा जाय तो हम अनीति और भूलके रास्ते पर हैं। किस अवस्थामें गर्भाधान हो और किस प्रकार हमारे अन्यान्य बहुमूल्य संस्कारोंकी रक्षा हो, किस प्रकार बालकका पालन पोषण हो, किस प्रकार उसकी शिक्षा-दीक्षा हो इसकी हम कहां तक जानकारी रखते हैं यह किसीसे छिपा नहीं है। किस दिशामें हमारा जीवन वर्तमान समयमें प्रवाहित हो रहा है यह अत्यन्त विचारणीय है, पर क्या हम इसके लिये कुछ भी समय अथवा मन लगाते हैं? उत्तर मिलेगा कि बिलकुल नहीं। हमें तो अपने नाना प्रकारके झंझटोंसे फुर्सत ही कहां जो हम ऐसे साधारण समझे जानेवाले कामोंपर ध्यान दें। जब तक विचारशील पुरुष इन बातोंपर आवश्यक ध्यान नहीं देंगे किसी अच्छे फलकी प्राप्तिका स्वप्न देखना विडम्बना मात्र है।

सात्विक जीवन तब तक नहीं बन सकता जबतक उसके लिये कोई पूरी साधना न हो और साधना तब तक नहीं बन पड़ सकती जब तक उसके लिये कुछ सज्जन कार्य रूपमें अग्रसर न हों। इसी प्रकार धर्मकी साधना तब तक नहीं हो सकती जब तक उसका प्रधान साधन सात्विक जीवन नहीं अपनाया जाता। सात्विक जीवन क्या वस्तु है इसे शायद बहुत थोड़े ही लोग समझते हैं। यहां तक भी देखा जाता है कि पूर्ण तामसिक और राजसिक वातावरणमें रहनेवाले लोग बड़ेसे बड़े सात्विक जीवनको पालन करनेवाले व्यक्तियोंसे अपने आपको किसी प्रकार कम नहीं समझते। मनुष्य जीवनमें धर्म ही प्रधान है पर हां धर्म क्या वस्तु है इसकी जिज्ञासा होनी चाहिये। प्रायः धर्मका नाम लिया जाता है पर उसे जीवनमें अपनानेकी चेष्टा बहुत कम देखी जाती है। इसीलिये आज हम धार्मिक कहलाते हुए भी नाना प्रकारके कष्टोंसे घिरे हुए हैं। यदि धर्मका सच्चा पालन हो तो यह कभी सम्भव नहीं कि मनुष्य किसी प्रकारके भी कष्टका सामना करे।

अन्तमें मैं गोस्वामी तुलसीदासजीके ही एक वचनका उल्लेख करूंगा जो उनकी विश्वविख्यात विनय पत्रिकामें पाया जाता है। गोस्वामीजीका कहना है कि हे दीनदयालु! पाप, दारिद्र्य, दुःख और तीन प्रकारके दुस्सह, दैविक, दैहिक, भौतिक तापोंसे दुनियां जली जा रही है। हे भगवन्! यह आर्त्त आपके द्वारपर पुकार रहा है, क्योंकि सभीके सब प्रकारके सुख जाते रहे हैं। गोस्वामीजी इस पदमें आगे चलकर किस प्रकार मनुष्योंको यह कष्ट हो रहे हैं, उसका दिग्दर्शन कराते हैं और सुखकी हानिका हेतु धर्म मार्गका त्याग ही बतलाते हैं। इस सम्बन्धमें हमारे शास्त्रोंकी यह वाणी हमें स्मरण रखनी चाहिये कि यदि हम धर्मकी रक्षा करेंगे तो धर्म हमारी रक्षा करेगा—यथा धर्मो रक्षति रक्षितः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनकी पवित्रता

श्री पद्मपत सिंहानिया

यों तो मनुष्य मात्र ही सत्व-रज-तमका समन्वय है पर तमकी प्रधानता तथा प्रचुरता ही हमारे जीवनको कलुषित और निर्वीर्य कर रही है। अब वह तो समय रहा नहीं कि जातियोंके ऊपर गुण-भाव निर्भर हो तथा शूद्र ही तम भाव प्रधान और ब्राह्मण सत्वप्रधान समझा जाये। वर्ण-व्यवस्थाके व्यक्तिक्रमके साथ अब यह व्यवस्था भी बिगड़ गयी है। ऐसा मालूम होता है कि तमके एक आवरणने समाजको ढँक दिया है। जबतक यह तमोभाव दूर न होगा सात्विक-जीवन व्यतीत करना तो दूर रहा, उसकी महत्ता भी दिमागमें नहीं आ सकती।

जिसे सात्विक-जीवन व्यतीत करना हो उसे पहिले अपने मनसे तमोभाव या रजोभावको दूर कर देना चाहिये। इसके लिये यह लाजिमी है कि मनको पवित्र रखा जाये। मन ही संकल्प-विकल्पका आगार तथा ज्ञान-विज्ञानका सागर है। जबतक मनको शुद्ध नहीं किया जायेगा, कोई लाभ न होगा। शास्त्र वचन है कि—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो:

अर्थात् मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण यह मन ही है। इसलिये सात्विक-जीवनके अभिलाषीको पहले अपने मन ही को शुद्ध करना चाहिये। स्पष्ट निर्देश है—

मन: पूतं समाचरेत्

मनको पवित्र करके आचरण करे। मनको पवित्र रखना बड़ा कठिन काम है। इसके लिये बड़ी साधनाकी, बड़ी तपश्चर्या की जरूरत होती है। यह तो हवाकी तरह चंचल है। इसे सिखलाना होगा कि यह किसीका बुरा न सोचे, किसी की निन्दा न सोचे, किसीकी हानि करनेका ध्यान न करे और —स्थावर जङ्गम संसारके समस्त प्राणियोंको आत्मवत् देखे, जब मन इतना करने लायक हो जायेगा तो उसको मैला करनेवाला कोई हो ही नहीं सकता। वह सत्यका अवतार तथा सात्विकताका प्रतीक हो जायेगा। इसलिये हर तरहसे प्रयत्न कर, गुरुकी सहायतासे, शास्त्रोंकी सहायतासे, महापुरुषोंके जीवनके अध्ययनसे हमको केवल एक बात सीखनी है—मनको किस प्रकार पवित्र तथा निर्मल रखा जाये। यदि इसका ज्ञान हो गया तो सब कुछ सध सकेगा और मनुष्य वास्तविक सात्विक जीवन बिता सकेगा।

[इस लेखके लेखक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसाकी वास्तविक व्याख्या

श्रीघनश्यामदास विड़ला

संसारको उलटे मार्गसे हटाकर सीधे मार्गपर लानेके लिये ही महापुरुषोंका जन्म होता है। भिन्न-भिन्न महापुरुषोंने अपनी उद्देश्यसिद्धिके लिये भिन्न-भिन्न मार्गोंका अनुसरण किया, पर इन सब मार्गोंके पीछे लक्ष्य तो एक ही था—नीतिकी स्थापना और अनीतिका नाश—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

इस लक्ष्य-पूर्तिके लिये भिन्न-भिन्न महापुरुषोंके साधनोंकी बाहरी शक्ल-सूरतमें अवश्य ही भेद दिखायी देता है। प्रजाको सुशिक्षण देना, उसकी सोयी हुई उत्तम भावनाओंको जाग्रत करना, इन सब उद्देश्योंकी प्राप्ति महापुरुष अपने खुदके आचरण द्वारा और उपदेश आदेशके द्वारा करते हैं। **ममवर्तमानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः** यह श्री कृष्णने कहा है। गांधीजी कहते हैं—जैसे शारीरिक व्यायाम द्वार शारीरिक गठन प्राप्त हो सकता है और बौद्धिक व्यायाम द्वारा बौद्धिक विकास, जैसे ही आत्मोन्नतिके लिये आध्यात्मिक व्यायाम जरूरी है और आध्यात्मिक व्यायामका आधार बहुत अंशमें गुरुके जीवन और चरित्र पर निर्भर करता है। गुरु यदि शिष्योंसे मीलों दूर भी हो, तो भी अपने चरित्र-बलसे वह शिष्योंके चरित्रोंको प्रभावान्वित कर सकता है। यदि मैं स्वयं झूठ बोलता हूं, तो अपने लड़कोंको सत्यकी महिमा कैसे सिखा सकता हूं? एक कायर शिक्षक अपने विद्यार्थियोंको बहादुर नहीं बना सकता, न एक भोगी अध्यापक बालकोंको आत्म-निग्रह सिखा सकता है। इसलिये मैंने यह देख लिया कि मुझे कुछ नहीं तो अपने बालकोंके लिये ही सही, सत्यवान्, शुद्ध और शुभकर्मी बनना चाहिये। इसलिये सभी महापुरुषोंने अपने चरित्र और उपदेशों द्वारा ही धर्मका प्रचार किया है। धर्मकी वृद्धिसे अधर्मका स्वतः ही नाश होता है। पर कभी-कभी अधर्म पर सीधा प्रहार भी महापुरुषोंने किया है। और अनीतिके नाश करनेके साधनोंका जब हम अवलोकन करते हैं, तो मालूम होता है कि महापुरुषों के इन साधनोंके बाहरी स्वरूपमें काफी भेद रहा है।

श्री कृष्णने भूमिका भार हलका किया, अर्थात् संसारमें पापोंका बोझ कम किया, तब जिन साधनोंका उपयोग किया, उनके बाहरी रूपमें और बुद्धके साधनोंके बाहरी रूपमें अवश्य भेद मिलता है। महाभारतका युद्ध, कंसका नाश, शिशुपाल और जरासंध इत्यादि दुष्ट राजाओंका श्री कृष्णके द्वारा बध होना इत्यादि घटनाएं हम ऐतिहासिक मान लें, तो यह कहना होगा कि श्रीकृष्णका भूमि-भार हटानेका तरीका और बुद्धका तरीका बाहरी स्वरूपमें भिन्न-भिन्न थे? पर हम कह सकते हैं कि मूल तो दोनों तरीकोंका एक ही है। जिनका बध किया उनसे श्रीकृष्णको न द्वेष था, न ईर्षा थी, न उन्हें उनके प्रति क्रोध था—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

यह लक्ष्य था और जिस तरह एक विज्ञ जर्राह रोगीके सड़े अङ्गको रोगीकी भलाईके लिये ही काटकर फेंक देता है, उसी तरह श्रीकृष्णने और श्रीरामचन्द्रने समाजकी रक्षाके लिये और जिनका बध किया गया उनकी भलाईके लिये, दुष्टोंका दमन किया। जिनका बध किया गया—जैसे रावण, कंस, जरासन्ध इत्यादि, उन्हें भी श्रीराम और श्रीकृष्णने सुगति ही दी—ऐसा हमारे पुराण बताते हैं।

महापुरुषोंने दुष्टोंका बध किया, इसलिये हमें भी ऐसा ही करना चाहिये, ऐसी दलील तो हिंसाके पक्षपाती चटपट दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालते हैं। पर यह भूल जाते हैं कि ये बध बिना क्रोध, बिना द्वेष, फलासक्तिसे रहित होकर समाजकी रक्षाके लिये किये गये थे, और जो मारे गये उन्हें भगवान् द्वारा सुगति मिली। इसलिये मूलमें तो राम क्या, कृष्ण क्या, और बुद्ध क्या, सभी समानतया अहिंसावादी थे। राम और कृष्णके साधनोंका बाहरी रूप हिंसात्मक दिखायी देते हुए भी हिंसा नहीं कह सकते, क्योंकि **न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा** और फिर—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्व भूतात्म भूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।

इन बचनोंको यदि हम ध्यानपूर्वक सोचें, तो सहज ही समझमें आ जायेगा कि श्रीराम और श्रीकृष्ण हिंसासे उतने ही दूर थे जितने कि बुद्ध।

गान्धीजीने भी बछड़ेकी हत्या करके उसे अहिंसा बताया, क्योंकि मार देना ही हिंसा नहीं है—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान्न हंति न निबध्यते॥

हिंसा और अहिंसाका निर्णय करनेके लिये हमें यह भी जानना जरूरी है कि मारनेवालेने किस मानसिक स्थितिमें, किस भावनासे बध किया है। बध करनेवालेकी मानसिक स्थिति और भावना ही हमें इस निर्णय पर पहुंचा सकती है कि अमुक कर्म हिंसा है या अहिंसा। पर राग-द्वेषसे रहित होकर अक्रोधपूर्वक, शुद्धभावसे लोक कल्याणके लिये, किसीका बध करनेवाला क्या कोई साधारण पुरुष हो सकता है? वह तो कोई असाधारण दैवी पुरुष ही हो सकता है। इसके माने यह भी हुए कि उत्तम उद्देश्यके लिये भी हिंसात्मक शस्त्र-ग्रहण साधारण मनुष्यका धर्म नहीं बन सकता। राग, द्वेष, क्रोध और ईर्ष्यासे जकड़े हुए हम न तो हिंसाशस्त्र धर्मपूर्वक चला सकते हैं, न राग, द्वेषके कारण जिनकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गयी है, वे यही निर्णय कर सकते हैं कि बध योग्य दुष्ट कौन है। राग-द्वेष से रहित हुए बिना हम यह भी तो सही निर्णय नहीं कर सकते कि दुष्ट हम हैं या हमारा विरोधी। यदि हम दुष्ट हैं और हमारा विरोधी सज्जन है, तो फिर लोक-कल्याणका बहाना लेकर हम यदि हिंसा-शस्त्रका उपयोग करते हैं, तो पाप ही करते हैं और आत्म-वंचना भी करते हैं। असलमें तो अनासक्तिपूर्वक हिंसा-शस्त्रका उपयोग केवल उन उच्च महापुरुषोंके लिये ही सुरक्षित समझना चाहिये, जिनमें कमलकी तरह जलमें रहते हुए भी अलिप्त रहनेकी शक्ति है।

जो अहिंसक नहीं बन सका वह आत्म-रक्षाके लिये चाहे हिंसाका प्रयोग करे, पर वहां तुलना हिंसा और अहिंसाके बीच नहीं है। तुलना है कायरता और आत्म-रक्षाके लिये की गयी हिंसाके बीच। और कायरता अवश्य ही आत्म-रक्षाके लिये की गयी हिंसासे भी बुरी है। कायरता तमःप्रधान है। आत्म-रक्षा के लिये की गयी हिंसा रजोगुणी भी हो सकती है। पर आत्म-रक्षाके लिये की गयी हिंसा भी शुद्ध धर्म नहीं अपेक्षाकृत धर्म ही है। शुद्ध धर्म तो अहिंसा ही है।

स्पष्ट करनेके लिये हम कह सकते हैं कि डकैतीके लिये एक डाकू जब हिंसा करता है तब वह निकृष्ट पाप करता है। आत्मरक्षाके लिये, देश या धर्मकी रक्षाके लिये की गयी हिंसा, यदि न्याय हमारे साथ है तो, उस डकैत द्वारा की गयी हिंसाकी तुलनामें धर्म है। पर अच्छे हेतुके लिये अनासक्त होकर की गयी हिंसा अहिंसा ही है और इसलिये शुद्ध धर्म है। उसी तरह कायरता लेकर धारण की गयी अहिंसा, अहिंसा नहीं, पाप है। अशोक वीर था। उसने दिग्विजयके बाद सोचा कि साम्राज्य-स्थापनके लिये की गयी हिंसा पाप है। इसलिये उसने क्षमा-धर्मका अनुसरण किया। वह वीरकी क्षमा थी, पर उसीका पौत्र अपनी कायरता ढांकनेके लिये अशोककी नकल करने लगा। उसमें न क्षमा थी, न शौर्य था। उसमें थी कायरता। इसलिये कवियोंने उसे मोहात्माके नामसे पुकारा। बलिष्ठकी अहिंसा ही, जो विवेकके साथ है, शुद्ध अहिंसा है। वह एक सत्वगुणमयी वृत्ति है। कायरकी अहिंसा और डाकूकी हिंसा दोनों पाप हैं। अनासक्तकी हिंसा और बलिष्टके द्वारा विवेकसे की गयी अहिंसा दोनों ही धर्म हैं और अहिंसा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकोत्तर दार्शनिक शंकर

प्रो० माहेश्वरी सिंह 'महेश' एम० ए०

"Samkara the sublime stands out as a heroic figure of the first rank in the somewhat mostly crowded of the religious thinkers of medieval India. Such diverse gifts did he possess that different images come to our mind when we try to recall his versatile personality. He was a philosopher and a poet, a savant and a saint, a mystic and a religious reformer. His earthly life was a little more than three decades like that of Christ but in that short span this lion of Vedant acted and achieved like hundreds."

—Sir S. Radha Krishnan.

भारतके अन्यान्य महाजनोंके युगकी तरह शंकरका युग भी इतिहासके गम्भीर गह्वरमें विलीन हो गया है। इस सम्बन्धमें विभिन्न विद्वान विभिन्न मत प्रकट करते हैं। दाक्षिणात्य महा-पंडित तैलङ्ग महाशयका कथन है कि शंकरका जीवनकाल छठीं सदीका मध्य या अन्तिम चरण है। पाश्चात्य इतिहास मर्मज्ञ कीथका मत है कि वे छठी सदीके प्रथम चरणमें ही वर्तमान थे। जो हो, इन मत विभिन्नताओंको देखते हुए सिर्फ इसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि शंकर छठीं सदीमें हुए थे।

शंकरका जन्म मालाबारके कलादि नामक स्थानमें अति पवित्र नामसुद्री ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। कहा जाता है कि केवल आठ वर्षकी अवस्थामें ही शङ्करने समस्त वेद-वेदाङ्ग पर पूर्ण रूपसे अधिकार प्राप्त कर लिया। उनके गुरु गोविन्द पद थे। गोविन्दपद गौड़पदके शिष्य थे। शंकरके शिष्योंने अपने गुरु-देवके विषयमें जो कुछ लिखा है वह इतना स्वल्प है कि हम उनके जीवन तथा अखिल भारतमें प्रचारित तथा प्रस्तरित कार्य-क्षेपके विषयमें कुछ भी नहीं जान सकते हैं। उन्होंने एक शिक्षक तथा उपदेशककी तरह विशाल भारतकी, रामेश्वरसे बदरीनाथ एवं कामरूपसे काश्मीर, यात्रा की। इस यात्रामें उन्होंने विभिन्न स्कूलके विचारकोंसे शास्त्रार्थ किया एवं समग्र सच्चे वैदिक धर्मकी स्थापना की तथा उसे पुनर्जीवन प्रदान किया। उन्होंने भारतके चारों कोनोंमें चार मठ स्थापित किये। वे मठ हैं—पूर्वमें पुरी (उड़ीसा) में, दक्षिणमें शृंगेरी (मैसूर) में, पश्चिममें द्वारिका (काठियावाड़) में तथा उत्तरमें बदरीनाथ (हिमालय) में। कहा जाता है कि उन्होंने अपना विश्वविश्रुत वेदान्त भाष्य इसी बदरीनाथमें समाप्त किया था एवं यहीं कुल ३२ वर्षकी अवस्थामें शरीर त्याग किया था। वे योगी थे-इसका पता इससे चलता है कि उन्होंने अमरूक नामक राजाके मृत शरीरमें प्रवेश किया। शंकरका मातृप्रेम जग-विख्यात है। उन्होंने अपनी माताका अन्तिम संस्कार मठीय जीवनके नियम तथा अनुशासनका विरोध कर किया था। फलतः उन्हें उस समाजका कोप-भाजन बनना पड़ा।

शंकरका दर्शन अद्वैतवादके नामसे प्रसिद्ध है। सर चार्ल्स इलियटके मतानुसार शंकर-सिद्धान्तको सम्यक्, ठोस एवं विस्तीर्ण भारतीय दर्शनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। थीबांट साहबका मत है कि शंकरने जिस सिद्धान्तका प्रदिपादन किया वह—भारतकी भूमिमें उत्पन्न जितने भी सिद्धान्त हैं उनमें विशुद्ध धार्मिक तथा दार्शनिक दृष्टिसे सर्व महत्वपूर्ण है। थीबाँट साहब आगे चलकर कहते हैं कि गम्भीरता तथा स्पष्टताके क्षेत्रमें कोई दार्श-निक सिद्धान्त इसकी तुलनामें नहीं आता। सर सर्वपल्ली राधा—कृष्णनका मत है कि इसने मानव-आशा और विश्वासको एक नवदिशाका भी संकेत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य दार्शनिकोंकी तरह शंकरने अपने दर्शनका कोई शृङ्खलाबद्ध विश्लेषण हमें नहीं दिया है। उनके विचार तो उपनिषदों, गीता और ब्रह्मसूत्रोंमें बिखरे पड़े हैं।

शंकर उन कितने मौलिक ग्रन्थोंके स्रष्टा हैं, जो वेदान्तके चरम कोटिके प्रमाणिक ग्रन्थोंमें माने जाते हैं। उन्होंने विभिन्न हिन्दू देवी-देवताओंके विनयमें जो मन्त्र और गीत रचे हैं वे विश्व-साहित्यके अमूल कोष होनेके साथ-साथ कवि-प्रतिभाके अद्भुत प्रमाण हैं। इनसे उनकी स्वाभाविकता एवं विश्व सहानुभूति टपकी पड़ती है। यह बहुत ही ठीक कहा गया है— विस्वता पूरित ऐसे मस्तिष्क बहुत ही कम प्राप्त हैं। वे केवल तर्कशास्त्रके ही पंडित न थे वरन् पवित्र और दिव्य कालके आचार्य कलाकार थे। इनकी अमर रचनाओंमें इनका बहुमुखी व्यक्तित्व उभरा पड़ता है। इनकी रचनाओंसे इनका मस्तिष्क, इनका जोश, इनका तर्क, इनके भाव, इनका ज्ञान एवं इनके गुण छिलके पड़ते हैं।

शंकरके दर्शनकी वास्तविक प्रशंसा हम तबतक नहीं कर कर सकते जबतक हम संसारसे अपने आपको ऊपर न उठा लें। उन्होंने उपनिषदके सिद्धान्तोंको बतलाते हुए साफ-साफ कहा है कि मैंने इनके स्पष्टीकरण और भाष्यके सिवा और कुछ नहीं किया है। समस्त पाश्चात्य दार्शनिकोंमें सिर्फ कांट शंकरके अति संन्निकट आता दीखता है। कांटने शंकरकी तरह देश, काल और निमित्तको विचारके तीन पहलू बतलाये हैं। शंकरने अनुभव-जगतका विश्लेषण करते हुए इसे कर्त्ता और कर्ममें विभाजित किया है। कर्त्ता द्रष्टा है, जो आत्मनके सिवा और कोई नहीं। यही :आत्मन सर्व शक्तिमान है, यही सबमें व्याप्त है एवं इसका अस्तित्व कर्म, स्वप्न और निद्रामें परिव्याप्त है। यही 'सोऽहं' है। कर्ममें केवल वाह्य जगत, शरीर और इन्द्रियां ही सम्मिलित नहीं हैं वरन् इसमें समस्त ज्ञान और बुद्धि सन्निहित है। कर्त्ता और कर्ममें प्रकाश और अंधकार जैसा अन्तर है। कर्त्ताका कर्म किंवा कर्मका कर्त्ता होना नितान्त असम्भव है। शंकरका तर्क है कि कर्त्ताको विचारसे जानना असंभव है। कारण, विचार तो कर्मका एक अंग है। इस विषयमें कांट भी शंकरके साथ हैं। कर्म एक रूप है। इस रूपको अनिर्वचनीय कहा है। आधुनिक विचारकोंने भी शंकरकी तरह इसे अनिर्वचनीय नामसे पुकारा है। आज जब पाश्चात्य तथा पौर्वात्य दार्शनिकोंका तुलनात्मक विवेचन चल रहा है यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है पहला दूसरेका अर्थात् अद्वैतवादका पल्लवीकरण है। वास्तवमें शंकरकी दूरदर्शिता, उनकी ज्ञान-गरिमा, उनकी तर्क—पूर्णता तथा उनके विद्या-कौशलने उन्हें सर्वश्रेष्ठ पदपर बिठाया है।

हम एकमात्र शंकरमें ही पैगम्बर और दार्शनिकका एकीकरण पाते हैं। संस्कृत विद्वानों एवं विचारकोंके लिये शंकर एक महान दार्शनिक थे, जब कि कोटि-कोटि हिन्दुओंके लिए वे परमात्माके अवतार थे। उन्होंने हिन्दुत्वको पुनर्जीवन देते हुए इसे पवित्र भी किया है। उन्होंने दक्षिण भारतके अपवित्र शाक्त पूजाको रोका, शिवपूजाकी गलत प्रथाको बंद किया तथा कापालिक प्रथाका घोर विरोध किया। उनमें भारत-शक्तिने आश्रय ग्रहण किया था। उन्होंने सारी भारतभूमिकी अपवित्रताका नाश किया। उन्होंने गलत पथसे भटकती हुई भारतीयताका उद्धार किया।

आज जब कि पुनः भारतीयता संकटमें पड़ी चीख रही है शंकरके अवतारकी बड़ी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म और जीवकी स्थिति

श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज

कुछ लोग कहते हैं कि सौन्दर्य, माधुर्यादिमें, गुण सम्पन्न, सगुण साकार भगवानमें ही आनन्द है। अदृश्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, निराकार, निर्विकार परमात्मा पाषाणरूप है। उसमें सुखका लेश भी नहीं है। परन्तु यदि यहां विवेचन किया जाये तो यही विदित होता है कि जहां कहीं भी किसी प्रकारके सुखका स्वरूप होता है, वह सभीसुख निराकार ही है। कहीं भी सुखका स्वरूप नील, पीत, हरित या मूर्त नहीं देखा जाता। चिरकालके वियोगसे संतप्त कामुक अपनी प्रियतमा कान्ताके परिरम्भणसे आनन्दका अनुभव करता है, उत्कट पिपासा और बुभुक्षासे परिपीड़ित मनुष्यको शीतल, मधुर, सुगन्धित जल एवं सौगन्ध्य, सौरस्य, माधुर्य सम्पन्न पक्वान्नके मिलनेपर आनन्द होता है। यहां विवेचन करना चाहिये कि यह जो आनन्द है उसका क्या रूप है। नील या पीत, लघु या गुरु, बृहत्परिमाण-परिमित या मध्यम परिमाण-परिमित है? यहां यह कहना न होगा कि शीतल, सुमधुर जल, पक्वान्न या कमिनी स्वयं आनन्द रूप नहीं है; क्योंकि बुभुक्षा, पिपासा तथा काम-व्यथा विना कामिनी आदिमें आनन्दका गन्ध भी उपलब्ध नहीं होता। वह आनन्द सर्वत्र ही अशब्द, अस्पर्श अरूप, अगन्ध, अदृश्य तथा निराकार ही है।

प्रेमस्पदमें प्रेमके उद्रेकसे आनन्दका उद्रेक होता है। आनंद के उद्रेकमें अन्तर्बाह्य सर्व दृश्य जगतका विस्मरणके उद्रेकमें अन्तर्बाह्य दृश्यका विस्मरण होता है। ऐसे ही सुषुप्ति-कालमें प्राज्ञ परमात्माके सम्मिलन-जन्य आनन्दसे प्रपञ्चका विस्मरण होता है। सप्रपञ्च ब्रह्ममें सातिशय प्रेम होता है। अतएव वहां सातिशय आनन्द तथा प्रपंच-विस्मरण भी कुछ मात्रामें ही होता है। सर्वोपाधि विनिर्मुक्त भगवान ही निरावरण होनेके कारण निरतिशय प्रेमके आस्पद हैं। उन्हींके सम्मिलनमें निरतिशय आनन्द होता है, और तभी सम्पूर्ण रूपसे सर्व दृश्यका अत्यन्ताभाव होता है। अधिष्ठान साक्षात्कार द्वारा जबतक आवरण-निवृत्ति नहीं होती, तबतक जीवको पूर्ण रूपेण ब्रह्मका परिष्वंग नहीं होता। जितना व्यवधान-शून्य प्रियतम परिष्वंग होता है, उतना ही अधिक आनन्द व्यक्त होता है। सृष्टि या प्रबोध-कालमें भोग्य और भोक्ता सभी अपने महाकारणसे दूर हो जाते हैं। प्रलय तथा सुषुप्तिमें वे सभी अपने कारणके सन्निधानमें पहुंच जाते हैं।

यद्यपि जैसे तरंग किसी अवस्थामें भी सागरसे वियुक्त नहीं होते किन्तु सदा सागरके अंकमें ही उनकी स्थिति होती है, महासागरसे फेन, बुद् बुद् तरंगकी तरह परमानन्द सुधासागरसे उत्पन्न होनेवाले समस्त तत्वोंकी स्थिति प्रभुके मंगलमय श्री अंगमें ही है, तथापि भ्रम-मूलक भेद और वियोग इतना स्पष्ट व्यक्त हो रहा है कि स्वाभाविक अभेद एवं सम्बन्ध अत्यन्त तिरोहित हो गया है। विस्मृत कण्ठमणिका अन्वेषण तथा महासागरके अन्तरंग होनेवाले हिम उपलकी पिपासा इस विषय के पोषक सुन्दर उदाहरण हैं। महा प्रलयके समय समस्त प्रपंच क्रमेण सबीज ब्रह्ममें लीन होता है। समस्त वन, पर्वत, नगर, ग्रामादि पार्थिव प्रपंच पृथ्वीमें विलीन हो जाता है। पृथ्वी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें एवं वायु आकाशमें लय हो जाता है। सृष्टिकालमें जैसे महाकारण, कार्योन्मुख विकसित होकर, सविशेष भावको प्राप्त होता है, वैसे ही प्रलयकालमें समस्त कार्य, कारणोन्मुख संकुचित होकर निर्विशेष भावको प्राप्त होता है।

तन्तुमें अङ्ग प्रावरण-शीतापनयनादि कार्य-कारण-क्षमता नहीं होती; परन्तु पटमें होती है यद्यपि वह तन्तुओंसे भिन्न कोई स्वतन्त्र पदार्थ न होकर केवल आतान वितानात्मक तन्तु रूप ही है। तथापि उसमें अंग आवरण तथा शीतापनयन करनेका सामर्थ्य होता है। तन्तुमें वह सामर्थ्य नहीं है जैसे ही घटमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलानयन करनेका सामर्थ्य है, किन्तु मृत्तिकामें नहीं। मृत्तिका जलानयन कर्तृत्व विशेष रहित होनेसे निर्विशेष है। घट जलानयन कर्तृत्वयुक्त होनेसे सविशेष होता है। पटमें शीता-पनयन कार्य-कारिता रूप विशेष है। अतः वह सविशेष है। तन्तु उससे हीन होनेके कारण निर्विशेष है। यद्यपि विवेचन करनेपर उपादान कारणसे भिन्न कार्य कुछ होता नहीं, तथापि कारण ही अपेक्षा कार्यमें कुछ अनिर्वचनीय विलक्षणता अवश्य होती है। मृत्तिका घट रूपमें व्यस्त होकर सविशेष होती है। घटके मृत्तिकामें लीन होनेपर घटकी अपेक्षा वह निर्विशेष और मृत्तिकाकी अपेक्षा घट सविशेष होता है। जल निर्गन्ध हैं पर उसका कार्य पृथ्वी गन्धवती है। नीरस तेजसे रसवान् जल एवं नीरूप वायुमें रूपयुक्त तेजकी उत्पत्ति होती है। कारणकी अपेक्षा कार्य सविशेष एवं कार्यकी अपेक्षा कारण निर्विशेष होता है। आकाशमें शब्द होता है। आकाश को भी 'अहंतत्व' (अहंकार) में एवं अहंकारको 'महतत्व' (समिष्टि ज्ञान) में 'महतत्व' को 'अव्यक्त' में लय चिन्तन करनेसे अत्यन्त निर्विशेषता होती है। महानिद्रा, तम, सुषुप्तिमें सर्व दृश्यका परमात्मामें लय होता है। सुषुप्ति या प्रलयमें जिस भगवत्स्वरूपमें सर्व भोज्य एवं भोक्ताका लय होता है, वह भी विश्व-शक्ति विशिष्ट ही है। यहां सबीज ब्रह्ममें ही सबीज प्रपञ्चका विलयन होता है। अतएव पार्थक्य भी सूक्ष्म रूपसे विद्यमान ही रहता है।

क्षीर-नीरके समिश्रणमें एकता-सी हो जाती है, परन्तु वस्तुतः क्षीर-नीरके अवयव पृथक् पृथक् ही रहते हैं। इसीलिये हंस उनका विवेचन कर लेता है। महासमुद्रमें नाना निर्झर निर्झरिणी एवं महानदियोंका संगम होता है। स्थूल दर्शियोंकी दृष्टिमें यद्यपि समुद्रके साथ सबकी एकता हो जाती है, परन्तु अभिज्ञजन समझते हैं कि महासमुद्रमें सभी निर्झर सरिताओंके जल पृथक पृथक विद्यमान हैं। सर्वज्ञ कल्प योगिजन एवं सर्वज्ञ शिरोमणि भगवान् उन सबका विवेचन एवं पृथक्करण कर सकते हैं। ठीक इसी तरह अनन्त ब्रह्माण्ड-जननी महाशक्ति-विशिष्ट भगवानमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड एवं तदन्तर्गत अनन्त जीव तथा उनके अनन्त कर्म और सभी भोग्य प्रपञ्च विलीन होते हैं। अत्यन्त सूक्ष्म दशामें पहुंचनेके कारण यद्यपि जीवोंके लिये उनका विवेचन और पृथक्करण अशक्य है तथापि सर्वान्तरात्मा सर्वेश्वर भगवान सभीका विवेचन एवं पृथक्करण कर सकते हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड, अनन्त जीव, एवं उनके अनन्त कर्मों तथा उनके फलोंको जानकर यथायोग्य विवेचन, नियोजन, यही परमेश्वरका विशेष कार्य है। किन-किन ब्रह्माण्डोंके, किन-किन जीवोंके, किन-किन जन्मोंके किन-किन कर्मोंका फल, किन-किन देशों एवं कालोंमें किस तरह प्रदान करना चाहिये, यह ज्ञान कर्म, एवं जीव इन दोनों ही के लिये अशक्य है। न तो कर्म ही अपने अनन्त स्वरूपों एवं फलोंको जान सकते हैं और न जीवोंको ही अनन्त कर्म एवं तत्फलोंका ज्ञान है। यदि हो भी तो फल सम्पादनकी शक्ति नहीं है। क्योंकि परमेश्वरके सिवा सभीकी शक्तियां क्षुद्र ही हैं। यदि जीवको कर्म एवं उनके फलोंका ज्ञान तथा फल सम्पादनकी शक्ति भी हो, तो भी जीव अपने शुभ कर्मोंके शुभ फलोंके ही सम्पादनमें रुचि रख सकता है। अशुभ कर्म एवं तत्फलोंके सम्पादनमें उसकी कथमपि रुचि एवं प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अतः सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् भगवानके बिना अन्यत्र सर्व ब्रह्माण्डन्तर्गत सर्व जीव तथा उनके कर्म तथा फलोंका ज्ञान और कर्म फलदानकी शक्ति का होना असम्भव है।

इस तरह अविद्या, काम, कर्म विशिष्ठ जीवका ही सुषुप्ति अवस्थामें सबीज ब्रह्मके साथ सायुज्य (एकता) होता है। ब्रह्म-सम्मिलनमें जीवको अद्भुत आनन्दकी प्राप्ति होती है। परन्तु सुषुप्तिमें सावरण जीवका सावरण ब्रह्मके साथ सम्मिलन होता है, इसलिये व्यवधानका अवशेष रहता है। व्यवधान रहित ब्रह्म-सम्मिलन तो तभी हो सकता है जब जीव स्वयं निरावरण होकर निरावरण ब्रह्मके साथ सम्मिलन प्राप्त करे। इस आवरण-निवृत्तिके लिये स्वधर्मानुष्ठान, भगवदाराधन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, अधिष्ठानभूत भगवानका साक्षात्कार किया जाता है। अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्तिसे ही जीवको व्यवधानशून्य ब्रह्मका सम्मिलन प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति कैसे प्राप्त हो !

पं० उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०, साहित्यरत्न

यस्सिन्द्रियाणि समथंगतानि,
अस्सायथासारथिना सुदन्ता।
पहीनमानस्स अनासवस्स,
देवादितस्स पिहयन्तितादिनो॥

सारथी द्वारा सुशिक्षित अश्वोंकी भांति जिसकी इन्द्रियां शान्त हैं, जिसका अभिमान नष्ट हो गया है, जो आस्रव (मल) रहित है, ऐसे पुरुषकी देवता भी स्पृहा करते हैं।

ऊपरका वाक्य धम्मपदकी एक गाथाका अनुवाद मात्र है। सचमुच जिनकी इन्द्रियां शान्त हैं, वे मनुष्य इस संसारमें धन्य हैं। किन्तु प्रश्न तो यह है कि इन्द्रियां शान्त हों कैसे। इस दृश्य जगतमें अनेक आकर्षक पदार्थ हैं। मनुष्यकी इन्द्रियां सदैव उन पदार्थोंकी ओर दौड़ती रहती हैं। एक साधारण आदमीके जीवनका यही चित्र है। इन्द्रियोंका राजा मन तो और चञ्चल है। गीतामें कहा गया है:—

चञ्चलंहि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याह निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

धम्मपदमें भी मनको कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों अथवा सुख-दुःख आदि अनुभवोंका अग्रगामी माना गया है। इस प्रकार इन्द्रियोंके दमनमें मनका दमन सर्व प्रथम आवश्यक है। केवल अध्ययन करने अथवा ज्ञान-कथन करनेसे भी मनको वशमें नहीं किया जा सकता। इसके लिये तो निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। अत्यन्त प्राचीन कालसे लोग मनको शान्त करनेके लिये ज्ञान और भक्तिका सहारा लेते आये हैं। ये दोनों मार्ग व्यावहारिक हैं। भक्त अपने मनको केन्द्रीभूत करके अपने इष्टदेवके चरणोंमें संलग्न कर देता है। निरन्तर अभ्यास द्वारा वह प्रतिक्षण अपने इष्टदेवकी विभूति, उनके मंगलमय रूप, उनके कल्याण स्वरूप कृत्योंका अनुभव एवं प्रत्यक्षीकरण करता है। ज्यों ज्यों वह अपने इष्टदेवकी ओर आकृष्ट होता जाता है त्यों-त्यों संसारसे वह दूर होता जाता है। बीच-बीचमें भक्त अपनी निर्बलताका भी अनुभव करता है। वह अपनी निर्बलताका अनुभव करता हुआ प्रतिक्षण सबल होनेका उद्योग करता है। इस प्रकार दृश्यमाण जगतसे खिंचकर जबतक उसका मन पूर्ण रूपसे इष्टदेवमें केन्द्रीभूत नहीं हो जाता तबतक वह एक क्षणके लिये भी विश्राम नहीं लेता।

भारतवर्षमें ऐसे अनेक भक्त हुए हैं। उदाहरण स्वरूप गोस्वामी तुलसीदासको ही ले लीजिये। तुलसीदासजीके आरम्भिक जीवन पर दृष्टिपात कीजिये। गोस्वामीजी एक अत्यन्त साधारण व्यक्तिके रूपमें आपको मिलेंगे। आगे चलकर उनके जीवन में पत्नीके उपदेशके द्वारा अथवा संसारके दुःखोंके कारण एक विरक्ति आती है। ऐसी विरक्ति प्रायः प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें आती है। किन्तु जहां साधारण मनुष्य एक क्षणमें ही उसे भूल जाता है वहां यह विरक्ति गोस्वामीजीके जीवनमें एक चिरस्थायी स्थान प्राप्त कर लेती है। धीरे-धीरे गोस्वामीजी राम-भक्तिकी ओर आकर्षित होते हैं और अन्तमें उनका जीवन ही राममय हो जाता है। साधनावस्थामें व्यावहारिक रूपसे भक्त भक्तिमार्गपर किस प्रकार अग्रसर होता है इसका सबसे सुन्दर उदाहरण हमें विनयपत्रिकामें मिलता है। आरम्भमें गोस्वामी जी देवताओंसे केवल इस बातकी प्रार्थना करते हैं कि उन्हें राम भक्ति प्राप्त हो। इसके पश्चात् वे अनुभव करते हैं कि उनका चञ्चलमन राममें पूर्ण रीतिसे केन्द्रीभूत नहीं हुआ; वे जोरसे चिल्ला उठते हैं:—

जो मोहिं राम लागते मीठे।
तो षटरस नवरस अनरसह्वै जाते सब सीठे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंचक विषय विविध तनुधरि अनुभवे,सुने अरु दीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने, सपने न अघाय उबीठे।
तुलसिदास प्रभुसों एकहिं बल, बचन कहत अतिढीठे।
नामको लाज राम करुनाकर, केहि न दिते करचीठे॥

ऊपरके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगा कि किस प्रकार भक्त अपने मनको इष्टदेवमें संलग्नकर शान्ति प्राप्त करते हैं।

एक दूसरा मार्ग ज्ञानका भी है। यह भक्तिकी अपेक्षा कठिन है। इसमें भी कुछ व्यावहारिक क्रियायें हैं। इस मार्गके अवलम्बन करनेसे भी चित्तकी शुद्धि होती है तथा मन कुमार्गसे हटकर सन्मार्गकी ओर जाता है। उदाहरण स्वरूप अनित्यताकी अनुभूति। मनुष्य इस बातकी अपने मनमें अनुभूति करता है कि संसारकी सभी वस्तुएं अनित्य हैं, इसी प्रकार वह इस बातका भी अनुभूति करता है कि अनित्य वस्तुओंके संयोगका अन्तिम परिणाम दुःख है। इस प्रकारकी अनुभूति भी मनुष्यका मन दृश्य जगतकी ओरसे खींचकर शान्तिकी ओर ले जाती है।

संसारमें रहनेवाले प्रत्येक प्राणीको ऊपरके मार्गोंमेंसे एक मार्गका अवलम्बन करना पड़ेगा तभी उसे वास्तविक सुख और शान्तिकी उपलब्धि हो सकेगी।

मनमें दो प्रकारकी प्रेरक वृत्तियां दिखलायी देती हैं। एक तो विषय-भोगकी प्रेरणा करती है और दूसरी विषय-भोगको त्याग करनेमें प्रवृत्त करती हैं। ये दोनों प्रकारकी प्रेरणाएं परस्पर विरोधी है और जीवनमें इन दोनोंमें परस्पर युद्ध होता रहता है। मनुष्यको इस युद्धमें किसी एक प्रेरणाका साथ देना ही पड़ता है। इस अवसर पर अविवेकी और विवेकी दोनोंके मार्ग विभिन्न हो जाते हैं। जहां विवेकी अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके वासनाका त्याग करता हुआ अपने सच्चे कल्याणके मार्ग पर अग्रसर होता है, वहां अविवेकी मनको स्वच्छन्द रखते हुए वासना-पङ्कमें फंसकर अधःपतनकी ओर अग्रसर होता है। अतएव विचारशक्तिका विकास करके मनुष्य अपने कर्मोंको इच्छानुसार बनानेमें सर्वथा समर्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचरणका महत्त्व

श्री 'सुमन' शेखूपुरी, साहित्यरत्न, प्र० सं०, 'शिक्षा-सुधा'

जिस समय संसारके विभिन्न देश और विभिन्न जातियाँ अज्ञानान्धकारमें परस्पर पाशविक व्यवहार किया करती थीं, उस समय सच्ची संस्कृतिके आदर्श-प्रतीक भारतने ही विश्वको सदाचार और मानवताका पाठ पढ़ाया था। हमारे वेद और शास्त्र इस बातके साक्षी हैं। विश्वभरमें जब पूर्णान्धकार था तब इस आर्यावर्तके हिमालयके, प्रांगणमें ही ज्ञान और सभ्यताका उषःकाल हुआ था।

हमारा देश सदासे अन्य राष्ट्रोंके लिए राजनीति, सभ्यता और सदाचारकी शिक्षा देनेमें सबका गुरु रहा है। महाभारतका समय भारतीय राष्ट्रके परमोत्कर्षका समय है और वही हमारे विनाश और ह्रासका भी काल है। हमको अच्छी तरह याद है कि भीष्म पितामह सदाचरण और ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें कितने सुदृढ़ और अप्रतिम थे। कौन भारतवासी नहीं जानता कि अर्जुनको अपने मनपर कितना अधिकार था। वीर युवा अर्जुनके बल और सौन्दर्यपर मोहित होकर कामातुरा उर्वशीने अर्जुनसे कहा था—'हे आर्यवीर! मैं तुम्हारे रूप और बलपर मुग्ध हूँ। तुम निस्संकोच मेरे इस अपूर्व यौवन रसका पान करो। उर्वशीको कामान्ध जानकर सदाचारी आर्यवीर अर्जुनने नतमस्तक होकर निवेदन किया था—'मातेश्वरी! तुम क्या कह रही हो? मैं एक भारतवासी हूँ। यह आर्यपुत्र अर्जुन पुत्र बनकर ही तुम्हारी सेवा कर सकता है।' इस विनम्रता, सदाचरण और पुत्रत्वको देखकर उर्वशी कुछसे कुछ हो गयी। वह अर्जुनको ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्षको सराहने लगी और 'धन्य-धन्य' कहने लगी।

इस समय भारत वही भारत है। इसकी भूमि और वन-पर्वत वही हैं परन्तु शोक है कि वे अर्जुन अब नहीं हैं, वे भारतीय भी अब नहीं हैं। यदि हैं तो उनकी संख्या उंगलियोंपर गिनी जा सकती है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों है? इतने महान् परिवर्तनका क्या कारण है?. लोग प्रायः इसका उत्तर यही दे देते हैं कि क्या किया जाये हवा ही कुछ ऐसी चल पड़ी है। जमाना बदल गया है। इसमें हमारा और आपका क्या दोष है? वस्तुतः ऐसा कहना भूल है। दोष हमारा और आपका ही है। जमाना कोई अलग चीज नहीं है। हम और आप लोगोंका समुदाय ही जमाना है। जैसा बदलना चाहते हैं वह वैसा ही बदल जाता है। किसी कविने कितनी ऊँची और आदर्शपूर्ण बात बतलायी है :—

"मर्द कहते हैं कि जमाना है बदलता हरदम ;
मर्द वे हैं जो जमाने को बदल देते हैं।"

यदि मानव समाजके कुछ दुराचारी और कामीजन देश और समाजमें दुराचारोंकी गन्दी नालियां बहाते हैं तो कोई चिन्ता नहीं। आपको सदाचरण तथा उच्च विचारोंकी सुन्दर सुरसरी बहानी चाहिए।

मनुष्यके लिए यदि कोई उच्च आदर्श है तो केवल सदाचरण है। मानवजीवनको लोक और परलोककी दृष्टिसे भी इससे आगे कोई श्रेष्ठतम पदार्थ नहीं। जिसने सदाचरणको अपने तनमनमें रमा लिया वह मनुष्यत्वमें ही देवत्वको प्राप्त हो गया। 'आचारेण हतोहतः अर्थात् आचरणसे गिरा हुआ प्राणी, दुनियांमें सबसे गिरा हुआ है। इसमें लेशमात्र भी असत्य नहीं कि 'यदि आचरण चला गया तो सब कुछ चला गया' (If character is lost every thing is lost)

आत्माकी शाश्वत शान्तिका सच्चा मार्ग सदाचरण है। संसारमें, मानवसमाजमें प्रतिष्ठा पानेका उपाय सदाचरण है। अपनी एक आवाजपर विश्वको हिलानेकी शक्ति सदाचरणमें है। योगिराज कृष्णकी मुरलीकी एक ही तानपर सारा व्रज उमड़ पड़ता था। यह सदाचरणकी ही तो महिमा थी। सदाचरणकी भाषा मौन होती है। वह नाद करता हुआ भी शान्त और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूक दृष्टिगोचर होता है। सदाचरणका पुजारी विश्वको अपने साथ कर सकता है। एक सदाचारीके पास चाहे साहित्यके प्रभावशाली शब्द न हों परन्तु तो भी मानवसमाज उससे प्रभावित होगा। उसके टूटे फूटे शब्द ही एक अद्भुत क्रान्ति कर सकते हैं। उसकी मौन वाणी ही मानव हृदयोंमें विद्युत्का संचार कर सकती है। सदाचरणकी महत्ताके वर्णनके लिये किसी भी साहित्यमें पर्याप्त शब्द नहीं हैं। वास्तवमें इसकी शक्ति और महत्त्व अपूर्व है। सदाचरणकी शक्ति हृदयकी नाड़ीमें सुन्दरता पिरो देती है। इसके प्रभावसे ज्ञान और कर्तव्यका तीसरा नेत्र खुल जाता है। सहृदयता राग अलापने लगती है; परोपकार और दयाका क्षेत्र विशाल हो जाता है। त्याग और तपश्चर्यामें आनन्द विभोर होकर मनुष्य विश्वके कल्याणमें रम जाता है। सदाचरणके पुजारीकी आत्मा विश्वके साथ आत्मसात् हो जाती है। उसमें अहर्निश विश्वबन्धुत्व और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का शब्द गुंजायमान होता रहता है।

सदाचारी निर्धन होता हुआ भी चक्रवर्ती सम्राट् है, अशिक्षित होता हुआ भी दिग्गज विद्वान है।

एक बार एक राजा आखेट खेलने गया। मृगके पीछे दौड़ते-दौड़ते सन्ध्या हो गयी और रात्रिका घनांधकार सर्वत्र छा गया। वह निर्जन वनमें अपना मार्ग भूल गया। भूखा-प्यासा इधर-उधर रातमें फिरता रहा। दैवयोगसे उसे उसी जंगलमें एक भीलकी झोपड़ी दिखायी दी। वह उसीकी तरफ चल दिया। भील अपने पेटके लिये जैसे तैसे चार रोटियां बनाता था और उन्हींको खा लेता था। चार रोटियोंसे अधिक अन्न न उसके पास था और न कमानेपर अधिक मिलता था। सारांश यह है कि प्रति दिन चार रोटियाँ ही उसके जीवनकी सर्वस्व थीं। दिनभरके परिश्रमका थका हुआ क्षुधित भील उन चार रोटियों-को खाने ही वाला था कि झोपड़ीके द्वारपर राजा भी आ गया। भील बड़े प्रेमसे बाहर गया और सत्कारके साथ नवागन्तुकको अन्दर ले गया। श्रद्धा पूर्वक भीलने अतिथि-सत्कार किया। राजाकी भूख शान्त करनेके लिए अपनी चारों रोटियां प्रेमपूर्वक उसे खिला दीं और स्वयं भूखा ही सो रहा।

इससे बढ़कर त्याग और तपस्या क्या हो सकती है? इस सत्कारका बदला चुकानेके लिए वह राजा अपने सारे राज्यको भी देकर मूल्य नहीं चुका पाता। भीलने अपनी भूखी आत्मा मसोसकर भी आनन्दसे अतिथि सेवा की। उसकी इस सहृदयतापर करोड़ोंकी संपदा पासंगका भी काम नहीं दे सकती। यह भावना तो सदाचरणकी भावना है। राजा इसका क्या बदला चुका सकता है। बदला तो उसका चुकाया जा सकता है जो कि बदले की भावनासे किया जाता है। भीलके लिये तो उस समयका अतिथि-सत्कार मानव धर्म था और था उसके जीवनका एक कर्तव्य। उसे उसने पूरा किया। उसमें बदलेका भाव न था।

एक पर्वके अवसर पर गंगामें स्नान करते-करते अचानक ही एक १० वर्षकी लड़की बह गयी और लगी डूबने। मनुष्य किनारेपर खड़े देख रहे थे और चिल्ला रहे थे। एक किसानने, जोकि साधारण रूपसे तैरना जानता था, लंगोट बांधकर एकदम छलांग मारी और बीच धारमें पहुंच गया। अपने प्राणोंको तिनकेके समान समझता हुआ और उस असहाय बालिकाके प्राण बचाना अपना परम कर्तव्य मानता हुआ नदीमें बढ़ता चला गया। निदान थोड़ी दूर जाकर ही सेवाव्रती किसानने बालिकाको पकड़ लिया और डूबनेसे बचा लिया। किनारेपर लाकर कर्तव्य परायण किसानने उस लड़कीकी अच्छी तरह परिचर्या की। उस समय मनुष्यकी मनुष्यता देवत्वकी प्रतिष्ठा प्राप्त कर रही थी। उस किसानको सब देख रहे थे। मन ही मन उसकी सराहना कर रहे थे और अपनेको धिक्कार रहे थे। किसानका वह सदा-चरण मौन था परन्तु अमिट प्रभाव जनतापर जमा रहा था।

इसी प्रकार तो सदाचरणका पुजारी अशिक्षित होता हुआ प्रवीण पण्डितोंसे भी बढ़कर प्रभावशाली वक्ता है। उसका हृदय इतना विशाल हो जाता है कि सारे संसारको वह अपना करना समझने लगता है। उसका दुख, हर्ष, शोक और शान्ति विश्वके साथ होती है। सदाचरणकी महत्ता कोई क्या लिख सकता है। सार रूपमें यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक जाति, समाज और राष्ट्र के शाश्वत सुख और शान्तिका मूल सदाचरण है। इसके पुजारी सच्चे परमानन्दका रसास्वादन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोग ही सर्वश्रेष्ठ योग है

श्री आर० सी० दत्त, एम० ए०

कर्म ही पूजा है, कर्म ही आराधना है। सबकी सेवा श्रद्धा एवं प्रेमके सा करो। कर्तृत्वपनका भाव अपने अन्दर न आने दो, फलकी आशा न करो। इस प्रकार निरन्तर निःस्वार्थ सेवासे आप शीघ्र ही ब्रह्म साक्षात्कार कर सकते हो। मनुष्य मात्रकी सेवा भगवानकी सेवा है। यदि निःस्वार्थ तथा निरभिमानयुक्त सेवा की जाये तो मनुष्यका हृदय विशाल होता है, संकीर्णता मिटती है तथा शीघ्र ही आत्मविकास होता है। काम कोई भी छोटा नहीं है। सभी कर्म महान हैं। यदि शुद्ध वृत्तिसे, ईमानदारीसे भङ्गीका भी कार्य किया जाये तो मनुष्य सुगमता पूर्वक आत्मसाक्षात्कार कर सकता है।

स्वार्थ बहुत ही बुरी चीज है। स्वार्थके वश होकर ही मनुष्य अपना तथा दूसरोंका अनिष्ट करता है। स्वार्थ ही के कारण उसका हृदय अत्यन्त संकीर्ण हो गया है। मानव जीवन के लिये स्वार्थ, एक अभिशाप है। इससे प्रज्ञा नष्ट हो जाती है। विषय भोगसे अथवा विषय भोगकी लालसासे मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। स्वार्थकी शिक्षा मनुष्य पहले पहल तभी सीखता है जब उसके अन्दर विषय भोगकी लालसा उत्पन्न होती है। आध्यात्मिक उन्नतिका श्रीगणेश तभी होता है जब मनुष्य स्वार्थ-भावनाका परित्याग करता है। आपके अंग प्रत्यंग में लोक सेवाका निःस्वार्थ भाव आना चाहिये। आप सेवा केवल सेवा करनेके लिये करो। सेवा निःस्वार्थ ही होनी चाहिये। परिणामकी, फलकी चिन्ता न करो। स्वल्प सेवाका भी पुरस्कार अपार होता है यदि वह निःस्वार्थ हो। विश्वबन्धुत्वका भाव आपके भीतर आना चाहिये, इससे आपका आत्मविकास होगा तथा आप असीम आनन्दका अनुभव करोगे। केवल बड़ी-बड़ी बातें करनेसे कोई लाभ नहीं होता है। निःस्वार्थ सेवा करते समय किसी प्रकारके दबावका अनुभव न करो। सोत्साह सेवा करो। उसमें आनन्दका अनुभव करना चाहिये।

इसके लिये एक उपाय है। आपके अन्दर भगवानके प्रति दृढ़ निष्ठा होनी चाहिये। यदि भगवानके प्रति आपकी भक्ति दृढ़ न हुई तो न आप प्रेम और उत्साहसे कार्य ही कर सकते हो और न उससे कोई लाभ ही हो सकता है। मनको सदा भगवानके ध्यान और नाम-जपमें लगाये रखना चाहिये। प्रायः कर्मयोगका और भक्तिका साहचर्य अच्छा होता है। कर्मयोगी अपना सब कुछ भगवानको अर्पण कर देता है। भगवानका समझकर और भगवानके लिये ही वह कर्म करता है।

कर्मयोगीको अपनी सेवाके पुरस्कार स्वरूप प्रेम, सराहना और प्रशंसाकी आशा नहीं करनी चाहिये। यह भी हो सकता है कि प्रारम्भमें आपके सभी कर्म निष्काम न हो सकें किन्तु इससे निराश और हतोत्साह नहीं होना चाहिये। कर्मयोगी-के लिये घबराहट और उद्विग्नता नामकी कोई चीज नहीं है। कर्म करनेके पूर्व और पीछे सावधानी पूर्वक आप सदा अपने उद्देश्य और मनकी भावनाका विश्लेषण कर लिया करो।

जो अपनी आवश्यकताओंको नियमित कर सकता है एवं अपनी इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रख सकता है वही कर्मयोगका आचरण कर सकता है। क्या कभी स्वार्थी, विषयलोलुप व्यक्ति के लिये दूसरोंकी निःस्वार्थ सेवा सम्भव है? ऐसा व्यक्ति संसार की सारी सम्पत्ति, सभी वस्तुएँ अपने लिये प्राप्त कर लेना चाहता है तथा अपनी वासनाओंकी पूर्ति करते समय दूसरोंकी हानिकी उसको तनिक भी चिन्ता नहीं रहती। दूसरी बात यह है कि आपको सदा दुःख सुख, हानि लाभ, मान अपमान सबमें सम वृत्तिका होना चाहिये। समत्व बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति ही कुछ कर सकता है। राग-द्वेषसे आपको सर्वथा मुक्त होना पड़ेगा। भगवान कृष्णने गीतामें कहा है कि कर्म वही शुद्ध है जो अनासक्त होकर किया जाये, जिसके फलकी आशा न रहे तथा जिसके करनेमें राग द्वेषादिका सामना न करना पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके अन्दर प्राणि मात्रके प्रति प्रेम है, जो सबकी सेवा करनेमें ही अपनेको धन्य समझते हैं उनपर ईश्वरकी विशेष अनुकम्पा रहती है। संसारमें रहकर जो व्यक्ति आत्मभावसे सब कर्म करता है, जो अपनेको सबमें और सबमें अपनेको समझता है वह अन्तमें आत्मसाक्षात्कार कर लेता है। यह कोई बात नहीं कि आप दूसरेकी आर्थिक सहायता ही करें। सब लोग आर्थिक सहायता ही नहीं कर सकते हैं। और फिर आर्थिक सहायता कोई बड़ी चीज नहीं है। असल सहायता तो भाव और विचारोंसे होती है। संसारसे विरक्त होकर पहाड़की गुफाओंमें रहनेवाले व्यक्तिसे वह व्यक्ति कहीं अधिक महान् है जो संसारमें रहकर प्राणीमात्रकी सेवा और सहायता करता है। दूसरोंको ऊपर उठानेमें आप जितना ही अधिक श्रम करोगे उतना ही अधिक आप स्वयं ऊपर उठोगे तथा दिव्य गुण आपके अन्दर भरेंगे। आत्मभावसे कर्मयोगका आचरण करना ज्ञानयोग के मुकाबलेमें कहीं अधिक कठिन है। सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे विरक्त होकर आप मनुष्य मात्रकी निःस्वार्थ सेवा करो तो निश्चय ही आपका लाभ होगा।

भक्तिका महत्व।

श्री स्वामी योगानन्दजी महाराज

भगवानके प्रति पूर्ण, निश्चल प्रेम, आसक्ति और निष्ठाको भक्ति कहते हैं। ईश्वरके प्रति पूरी आसक्ति होनी चाहिये। भगवानकी भक्तिके लिये अमूल्य पदार्थोंकी भेंट चढ़ाना आवश्यक नहीं। कितने लोग अस्पताल, स्कूल एवं धर्मशालाओंके निर्माणमें लाखों रुपये व्यय करते हैं किन्तु क्या वे शुद्ध हृदयसे ये सारे कार्य करते हैं? क्या उनका मन उधर रहता है? क्या वे शुद्ध भावसे सब कार्य करते हैं? कदापि नहीं। संसारके विभिन्न पदार्थोंके प्रति जितना भी प्रेम आपके भीतर हो सबको एकत्र कर उस प्रेमको भगवानके चरणोंमें लगाओ। शीघ्र ही आप ब्रह्म साक्षात्कार कर लोगे।

पाँच प्रकारके भाव होते हैं—शान्त, मधुर, वात्सल्य, दास्य और सख्य। इसमेंसे जो भी भाव आपको अपनी प्रकृतिके अनुकूल मालूम हो उसको अन्तिम सीमा तक विकसित करो। किसी एकका भी आश्रय लेकर यदि उसीका अभ्यास श्रद्धा और निष्ठासे किया जाये तो निश्चय ही सभी भावोंका उदय क्रमशः आपके भीतर होगा और आप पराभक्तिकी प्राप्ति सुगमतया कर सकोगे।

निरन्तर सत्सङ्ग करनेसे, जप, ध्यान, प्रार्थना, भजन, कीर्त्तन स्वाध्याय, सन्तोंकी सेवा, दान, आदि करनेसे भक्ति भावकी वृद्धि होती है। गुरु, इष्टदेव, सत्य, ईश्वर और ब्रह्म एक ही है। गुरुकी पूजा ईश्वरकी पूजा है, श्रद्धा होनी चाहिये। अहंभाव और अहंकारका सर्वथा परित्याग कर दो। गुरुके चरण कमलोंकी श्रद्धा और भक्तिके साथ पूजा करने पर ही ब्रह्मके साक्षात्कार करनेमें आपको सुगमता हो सकती है।

प्रह्लादकी भांति शुद्ध भावसे और तन्मय होकर भगवानकी आराधना करो। राधाकी भांति उनके नामका गुणगान करो। मीराकी भांति प्रेम-विह्वल होकर आंसू बहाओ। वाल्मीकि, तुकाराम और रामदासकी तरह उनके नामका जप करो।

इस बातका सदा ध्यान रखो कि भगवान परब्रह्म स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध रूपोंमें—इस संसाररूपी रंगमंच पर नाटकके अनेक पात्रोंकी भांति-प्रदर्शन करते हैं। वेश्या, चोर, बदमाश सबमें वही हैं। संसारमें जो कुछ भी है सबमें वह हैं, उनमें ही सब कुछ है। सबको नारायण भावसे देखो। इस प्रकार देखने पर आपके अन्दर चोर और बदमाशको देखने पर भी भक्ति और श्रद्धाका भाव उदय होगा और आप उनसे घृणा न करोगे।

भगवानकी प्रार्थना शुद्ध मनसे किया करो। सादा वस्त्र पहनो, सादा आहार रखो। सरल जीवन व्यतीत करना चाहिये। सदा इसका जप किया करो—'प्रभो मैं तुम्हारा हूं, तुम हमारे हो। हमारे तुम्हारे बीच कोई रोक-टोक नहीं। तुम जो चाहते हो वही होता है। तुम्हारी इच्छा ही सर्वोपरि है।" सब भार उन पर डालकर निश्चिन्त हो जाओ। आप क्यों व्यग्र होते हो। निरीह हो जाओ, अभिलाषाओंको पैदा ही न होने दो। भगवानके चरणोंमें पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण करके अहंभावका लोप कर दो। सन्तोंका उदाहरण आपके सम्मुख है। उनसे उपदेश लेकर अपना सुधार करो। भक्तिभावसे अशक्त, असमर्थ और रुग्ण व्यक्तियोंकी सेवा करो। आपके पास जो कुछ भी हो उसमें दूसरोंका भाग समझा करो। दूसरोंका भाग समझकर उनके भागके अनुसार देनेका प्रयत्न करो।

दिखावटी नमस्कार न करो। नमस्कार तो हृदयसे, श्रद्धासे करनेकी वस्तु है। जहां तक हो सबको नारायण भावसे साष्टाङ्ग नमस्कार करना चाहिये। ऐसा नमस्कार करनेके समय आप इस बातका अनुभव करो कि आप वास्तवमें नारायणकी मूर्तिके सामने हो। साधारण लौकिक नमस्कारका कोई महत्व नहीं है; उसका कोई मूल्य नहीं है। चाहे पशु हो या पक्षी आपके सामने जो भी आये उसको पूर्ण श्रद्धाके साथ नमस्कार करो। संसारमें जो भी कुछ है, ईश्वर सबमें व्याप्त है। यदि प्रारम्भमें आप ऐसा करनेमें संकोच करो तो मानसिक नमस्कार कर सकते हो। इससे अहंभावका विनाश होकर समदृष्टिकी प्राप्ति होगी तथा हृदयमें भक्ति, आनन्द और ब्रह्मात्मैक्यका भावोदय होगा।

विषय-लालसा, क्रोध, लोभ, भ्रम, अहंकार, घृणा, द्वेष, यशोलिप्सा, छल, कपट, प्रमाद, कुसंगति, अधिक निद्रा, वाचालता आदि महान् दुर्गुण हैं। भक्तिपथपर चलनेमें आपको बाधा इनसे ही मिलेगी।

आनन्द विभोर होकर भक्त कभी तो हंसता है, कभी रोता है, कभी नाचता है। उस समय उसे अपने शरीरका ज्ञान नहीं रहता है। वह भगवानमें लीन हो जाता है; भाव-समाधिकी दशा उसको प्राप्त हो जाती है।

केवलमात्र चारित्रिक शुद्धिसे मुक्ति नहीं मिल सकती। इससे इतना ही होता है कि मन शुद्ध होता है तथा दिव्यगुण धारण करनेमें सरलता होती है। आवश्यकता वास्तवमें भक्तिके बीजके बोनेकी है। ऐसे शुद्ध मानस और विमल हृदयमें भक्तिका बीज बोया जा सकता है।

यदि किसी भक्तके हृदयमें कभी भी स्वार्थका भाव उत्पन्न हो जाता है तो उसको समझना चाहिये कि उसके भीतर पूर्ण आत्मसमर्पणका भाव अभी नहीं आया है और भक्तके लिये यह परमावश्यक है। भगवानको प्रत्येक प्राणीमें, प्रत्येक जीवमें सर्वत्र देखो। इस बातको कभी भी न भूलो कि भगवानका कोई विशिष्ट रूप या कोई विशिष्ट स्थान है। जबतक आप इस मिथ्या संसारके प्रति आसक्ति रखोगे तबतक आपके भीतर सत्य-ब्रह्मके प्रति प्रेम नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपवास करनेवालोंसे निवेदन

श्री रामचन्द्र वर्मा

उपवासके लिये पहलेसे कभी किसी प्रकारकी तैयारीकी आवश्यकता नहीं होती। न तो बहुत पहलेसे उपवासके उद्देश्यसे ही लम्बी चौड़ी कसरतें करनेकी आवश्यकता है और न खाने पीनेमें कोई बड़ा परहेज करनेकी ही। उपवास एक बहुत ही सीधी-सादी और प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार प्यास लगने पर जल पीनेके लिये किसी प्रकारके सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार रोगग्रस्त होनेपर उपवास करनेके लिये भी किसी प्रकारका सोच-विचार न होना चाहिये। उपवासके आरम्भमें केवल मनको शान्त और अविचल रखनेकी आवश्यकता होती है; जहां मनकी उपवास सम्बन्धी उद्विग्नताका नाश हुआ वहां उपवासमें फिर और किसी प्रकारकी अड़चन या कठिनाई नहीं रह जाती।

दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उपवास कालमें किसी प्रकारकी औषधि आदिका सेवन कदापि न करना चाहिये। उपवास एक प्राकृतिक क्रिया है और उसके साथ किसी अप्राकृतिक क्रियाका व्यवहार नहीं होना चाहिये। सन् १९०३ में लकवेके एक रोगीने ४० दिनोंका उपवास किया था। उपवासके अन्तमें उसे शरीरके एक ऐसे अंगमें कुछ पीड़ा जान पड़ी जिसमें उसे पहले कभी कोई पीड़ा नहीं हुई थी। मंगलके दिन उसने अपना उपवास समाप्त किया था और शुक्रवारके दिन उसकी मृत्यु हो गयी। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उपवास छोड़नेके दूसरे ही दिन वह एक डाक्टरके पास चला गया था, जिसने उसे औषधिके अतिरिक्त कुछ दूध और फलोंका रस भी दिया था और उसकी मृत्यु इसी कारणसे हुई थी। उपवास करनेवालेको इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि उपवास कालमें और उसके उपरान्त शरीरकी हालत बहुत ही नाजुक हो जाती है और उस दशामें औषधियों आदिका शरीर पर बहुत ही भयंकर परिणाम होता है।

जो लोग अपने रोगोंकी चिकित्सा औषधि आदिसे करते हैं, बहुधा औषधि छोड़ देने पर उनके रोग उन्हें फिरसे कष्ट देने लगते हैं। पर उपवासकी सहायतासे नीरोग हो जाने पर रोगके फिरसे उभड़ आनेकी कभी कोई सम्भावना नहीं रहती। हाँ, उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद यदि वह औषधोंका सेवन आरम्भ कर दे तो अवश्य ही वह फिरसे रोगी हो सकता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि हम उपवास न करके केवल अपना भोजन घटा दें तो क्या उससे हमें लाभ न होगा? इसका उत्तर यही है कि बहुतसे छोटे और साधारण रोगोंमें तो थोड़े भोजनसे अवश्य लाभ होता है, पर तीव्र और भयंकर रोगोंके समय उससे कोई लाभ नहीं होता। बात यह है कि रोगी होने पर हम जो कुछ खाते हैं उससे हमारे शरीरकी अपेक्षा रोगोंका ही अधिक पोषण होता है। भोजन करके रोगको पालनेकी अपेक्षा भोजन छोड़कर उसे दूर कर देना ही अधिक बुद्धिमता है। बहुतसे लोगोंने बहुत दिनों तक थोड़ा सा भोजन करके यही सिद्धान्त निकाला है कि उसका कोई परिणाम नहीं होता। दूसरी बात यह है कि उपवास करनेकी अपेक्षा थोड़ा भोजन करके रहना बहुत कठिन और कष्टप्रद है। उपवासमें तो पहले दो तीन दिनों तक ही कष्ट होता है और इसके बाद जब भूख मारी जाती है तब मनुष्य बड़े सुखपूर्वक रहता है, पर थोड़ा भोजन करनेवालोंका कष्ट बराबर बना रहता है। थोड़ा भोजन करनेसे भूख बढ़ती है और तब मनुष्यको विवश होकर अधिक भोजन करना ही पड़ता है। अप्टन सिंक्लेयरने एक बार थोड़ेसे फल खाकर ही कुछ दिनों तक रहना निश्चय किया था। पर उस कालमें उन्हें उतनी अधिक दुर्बलता जान पड़ने लगी, जितनी उपवासकालमें कभी नहीं जान पड़ती थी। इसलिये थोड़ा भोजन करके रहना कष्टदायक भी है और व्यर्थ भी। जो लोग एकदम उपवास न कर सकते हों वे पहले महीनेमें एक या दो दिन का ही उपवास करें और इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार उपवासका अभ्यास बढ़ाते जाये तो अवश्य ही फायदा उठा सकते हैं।

यह भी प्रश्न हो सकता है कि मनुष्यको उपवासकालमें अपना नियमित काम-धन्धा करना चाहिये या नहीं। जिस प्रकार और बातोंमें कुछ शर्तें होती हैं उसी प्रकार इसमें कुछ खास शर्तें हैं। जिस मनुष्यकी जीवनशक्ति बहुत ही घट गयी हो वह यदि अधिक समय तक या कठिन और भारी काम करेगा तो अवश्य उसके शरीर पर उनका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। तथापि ऐसे मनुष्यको कुछ टहलना, फिरना या थोड़ा व्यायाम अवश्य करना चाहिये। जो मनुष्य बिछौनेसे भी न उठ सकता हो वह भी बिछौने पर पड़ा हुआ ही अपने शरीरको इधर उधर डुला सकता और इस प्रकार व्यायामसे होनेवाला थोड़ा बहुत लाभ उठा सकता है; पर जिस मनुष्यके शरीरमें थोड़ी बहुत शक्ति हो उसके लिये यथासाध्य अपने काममें लगा रहना ही अधिक उत्तम है। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि प्रत्येक दशामें मनकी स्थितिका शरीर पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस मनुष्यका मन काममें लगा रहेगा उसका शरीर बहुत ठीक दशामें ही रहेगा। मनको इधर-उधर भटकानेसे बचाने और कृत्रिम भूखके फेरमें न पड़नेके वास्ते काम-धन्धेसे अच्छी सहायता मिलती है। खाली बैठे रहनेवाले लोग कृत्रिम भूखके फन्देमें फँसकर अपना उपवास छोड़ भी सकते हैं। बहुत ही प्रबल इच्छाशक्ति वाले लोगोंके लिये भी काम-धन्धेमें लगे रहना बहुत ही आवश्यक और लाभदायक है।

उपवास कालमें जहां तक हो सके हाथों, पैरों और मनको किसी न किसी काममें लगाये रखना चाहिये। इस अवसर पर यह बतला देना भी आवश्यक है कि गरमीके दिनोंमें उपवास करना बहुत कठिन होता है। उस समय मनुष्य बहुत निर्बल हो जाता है। जाड़ेमें उपवास तो अवश्य ही अच्छी तरह हो सकता है, पर उन दिनों कठिनाई यह होती है कि मनुष्यको भूख अधिक लगने लगती है। पर यदि आरोग्य पर पड़नेवाले प्रभावके विचारसे देखा जाये तो जाड़ेके दिन ही अधिक उत्तम ठहरते हैं; क्योंकि अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गरमीमें तीन दिनों तक उपवास करनेसे शरीरको जितना लाभ पहुंचता है, जाड़ेमें उतना ही लाभ केवल दो दिनोंमें होता है।

माता पिताओंका कर्तव्य

श्री वामन चिन्तामणि तवकर बी० ए०

शीघ्रगामी यानोंकी सहायतासे भी कठिनतया पूरी होनेवाली यात्राके लिये यदि कोई व्यक्ति दुर्बल, अशक्त बैलोंकी गाड़ी पर चढ़कर प्रस्थान करे तो आप ही सोचिये कि उसकी क्या दशा होगी। यह तो निश्चित ही है कि वह अपने गन्तव्य स्थानपर कभी नहीं पहुंच सकता। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति बहुत दिन तक रहने योग्य सुदृढ़ मकान केवलमात्र चूने या मिट्टीकी सहायतासे निर्माण करना चाहे तो क्या अपने उद्देश्यमें वह कभी सफल हो सकेगा? अथवा आजकलकी सुशिक्षित आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित सेनाका सामना यदि कोई राष्ट्र लाठी और तलवार भालेसे करना चाहे तो क्या यह सम्भव है कि वह अपने देशको शत्रुओंसे पादाक्रान्त होनेसे बचा सकेगा? कदापि नहीं। यदि इस प्रकारके साधनोंका आश्रय कोई व्यक्ति या राष्ट्र इन परिस्थितियोंमें लेता है तो हम उनको मूर्ख या पागलके अतिरिक्त और किसी दूसरी उपाधिसे विभूषित न करेंगे। किन्तु यह कितने आश्चर्यकी बात है कि हम अपने कार्योंमें सफलता ऐसे ही साधनोंका आश्रय लेकर प्राप्त करना चाहते हैं। हमारे इस कथनमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। यदि भारतके प्रान्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रान्तमें भ्रमण करें तो आपको विदित हो जायेगा कि हमारे कथनमें कितनी वास्तविकता है। उदाहरण स्वरूप आप किसी ग्राम अथवा नगरकी पाठशालाओंमें एक बार चले जाइये। वहां आपको जो विद्यार्थी देखनेको मिलेंगे उनकी दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता। आंखें धंसी हुई, कपोल बैठे हुए, चेहरे पर क्लान्ति और मुर्दनी, हड्डियोंका ढांचा चमड़ेको भी भेदकर बाहर आता हुआ और इसी प्रकारकी अन्य बातें आपको स्कूल या कालेजके विद्यार्थियोंमें आपको मिलेंगी। भला कल्पना तो कीजिये कि बढ़ने पर इन बालकोंकी क्या दशा होगी। इस अवस्थामें तो ये ब्रह्मचारी हैं, बढ़ने पर जब इनके सन्तान होगी तब भला इनकी दशा कितनी शोचनीय होगी!

आजकल जहां भी आप जाइये लोग अपने लड़कोंको अधिकतर पढ़नेकी ओर ले जाते हुए मिलेंगे। बौद्धिक विकास खूब होना चाहिये चाहे शारीरिक ह्रास ही हो। अधिकतर लोगोंको यही चिन्ता लगी रहती है कि हमारा लड़का जल्दी पढ़ लिखकर योग्य हो जाये और कुछ उपार्जन करने लगे। लड़केने खेलना आरम्भ किया नहीं कि माता-पिताने उसकी भर्त्सना शुरू कर दी। इससे छोटे छोटे बालकोंका उत्साह मन्द पड़ जाता है। खेलनेकी, व्यायामकी, दौड़धूप की, उनकी प्रवृत्तिका इस प्रकार निरन्तर हनन होनेसे उनकी इच्छा शक्तिका भी ह्रास होता है, वह कमजोर पड़ती है। आगे चलकर ऐसे युवक सुस्त, अपाहिज और निष्क्रिय हो जाते हैं। किसी काममें उनका मन नहीं लगता। वे सदा आलसी और निरुद्यमी बने रहते हैं। एक तो लड़के ६-६ घंटे विद्यालयोंमें पुस्तकोंके साथ व्यायाम करते हैं दूसरे घर पर भी माता पिता उनको विश्राम नहीं लेने देते।

हमारे देशके उद्धारका भार जिनपर है उनकी ऐसी दशा देखकर रुलायी आती है। ऐसे युवक सीधे तनकर नहीं चल सकते। यदि दस सेर भी माल ले जाना पड़े तो जैसे उनका प्राण निकल जाता है। बैठते समय भी सीधे नहीं बैठते, टेढ़े मेढ़े आराम तलबीसे बैठना चाहते हैं। यदि स्वल्प भी मानसिक श्रम पड़े तो घबरा जाते हैं, अधिक विश्रामकी आवश्यकता पड़ जाती है और यदि अधिक श्रमसाध्य कार्य कुछ दिनतक करना पड़े तो मस्तिष्क बिगड़ जाता है, बुद्धि विकृत हो जाती है। यदि आप खोजने चलें तो शायद ही हजारमें पांच व्यक्ति ऐसे मिलें जिनके सम्बन्धमें यह कहा जा सके कि वे हृष्टपुष्ट और बलशाली हैं। यह बात अवश्य है कि देश निर्धन है, खाने पीनेको उचित रूपमें पौष्टिक आहार सबको नहीं मिलता किन्तु जिनको मिलता है, जो नित्य एकसे एक बढ़कर अच्छे और पौष्टिक पदार्थ उदरमें डालते रहते हैं उनकी दशा तो और भी शोचनीय है। बल्कि यह कहा जा सकता है कि जिनको कुछ भी खानेको नहीं मिलता वे काफी अच्छी शक्ति और स्वास्थ्य रखते हैं। दिन प्रतिदिन भारतीयोंकी आयुका औसत कम होता जा रहा है। जहां पहले १००-१२५ वर्ष जीना साधारण बात थी वहां अब लाखोंमें कहीं एक १०० तक पहुंचता दिखायी देता है। अधिकतर लोग ४०-५० तक आज दिन मृत्यु-मुखमें प्रवेश कर जाते हैं। यदि पूर्ण विचारके उपरान्त इस बातकी व्यवस्था न की गयी कि लोगोंका स्वास्थ्य सुधरे और लोग बलिष्ठ हों तो निश्चय है कि वीर-प्रसविनी भारत भूमिका नाम निशान संसारसे मिट जायेगा।

अब यहां हम इस बातपर विचार करेंगे कि आखिरकार इस दुर्दशाका कारण क्या है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है एक तो जीवनके प्रथमांशमें, जोकि हमारी वृद्धि और विकासका काल है, मन और मस्तिष्कपर पड़नेवाला अपरिमित और असह्य भार है। दूसरा कारण ब्रह्मचर्यका अभाव है। ब्रह्मचर्यके अभावमें जो घोर मानसिक श्रम पड़ता है वह हमारे युवकोंको अशक्त और दुर्बल कर देता है। अधिक मानसिक श्रमसे जबकि व्यायामके अभावमें शरीर भी दुर्बल हो जाता है यह निश्चित है कि विचारों पर अंकुश रखनेमें मनुष्य असमर्थ हो जाये। इसीलिये शृंगारिक बातोंके श्रवण, दर्शनादिसे उनके मानसिक भाव उत्तेजित हो उठते हैं। इसके अनन्तर जब कि सदा ही चाय, काफी, कोकोका व्यवहार किया जाता है; मद्यपान मांसादिका सेवन किया जाता है, सिगरेट तम्बाकूको भोजनसे भी अग्रिम स्थान प्रदान किया जाता है तो ढीले ढाले और उद्विग्न तन्तुओंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियन्त्रणमें रखना, कामवासनाको दबाना कहां सम्भव है ? इस प्रकारके हमारे युवक वासनाओंके गुलाम होकर वीर्यरूपी अमृतको निरन्तर अबाध गतिसे बहाते रहते रहते हैं और परिणाम यह होता है कि कुछही कालमें वे बिलकुल बेकार हो जाते हैं। इसके साथही साथ हमारे माता पिताओंकी पौत्रादि देखनेकी अभिलाषा और भी बुरा परिणाम उपस्थित करती है। आरोग्यताकी दृष्टिसे पुरुषको २९ वर्ष और स्त्री को २० वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। किन्तु यदि सम्भव न हो तो कमसे कम २५ और १६ वर्षकी आयु तक तो दोनोंको अवश्य ही ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

इधर आज कल हो क्या रहा है कि प्रत्येक भारतीय अपने लड़कों और लड़कियोंकी शादी अधिकसे अधिक १५-१६ वर्षकी आयु तक कर देना चाहता है। भला जब हम थोड़े भी विकसित नहीं हुए रहते तो विवाह करनेसे हमारी शक्तिका विकास कैसे हो सकता है ?

बल और पुरुषार्थके बिना संसारमें कोई राष्ट्र या कोई व्यक्ति उन्नति नहीं कर सकता। और ब्रह्मचर्य विहीन व्यक्तिके अन्दर बल और पुरुषार्थका होना आकाश कुसुम-सा है। देशमें जागृति उत्पन्न करनेके लिये अनेक कार्य किये गये हैं किन्तु देशके युवकोंके गिरते स्वास्थ्यको ऊपर उठानेका एवं बल और शक्तिको बढ़ानेका कोई भी कार्य संगठित रूपसे सरकारी या गैर सरकारी रूपसे नहीं हो रहा है। यह कितनी लज्जाकी बात है !

अब समय आ गया है कि उचित रूपसे ब्रह्मचर्यकी शिक्षा देकर उनको बलशाली और शक्तिशाली बनाया जाये। इसके बिना किसी प्रकारकी भी उन्नति सम्भव नहीं है।

योगिराज अरविन्दके विचार

सङ्कलित

ज्यों ही आपका मन निश्चल और शान्त हो जाये, सारे साधन छोड़ दो। ज्ञान आपही सब काम संभाल लेगा। जैसे श्वासका चलना स्वाभाविक है, वैसे ही शक्ति (ज्ञानशक्ति) भी आपको सिद्धावस्थाकी ओर पहुंचानेमें अविरल रूपसे लगी रहेगी। उस दशामें अभ्यास और वैराग्य दोनों ही आवश्यक हो जायेंगे। वैराग्य-रुचि भी उतनी ही हानिकर है, जितनी लोभ-प्रवृति।

दुख और दुर्बलता अज्ञान-जनित विकार हैं। ये व्यापक और नित्य तत्व नहीं हैं। इनका हमें आत्मबलके द्वारा सदाके लिये नाश करना होगा।

अपने लिये और समस्त मानव-जातिके कल्याणके लिये इस जगत्को स्वर्ग बना देना हमारा कर्तव्य है।

हमारे शिव परमेश्वर हैं, पर साथ ही वह भिक्षुक हैं, पागल और भोलानाथ हैं। भिक्षुक हैं तो क्या हुआ ? साधकको सहज ही त्रिलोककी समस्त सम्पत्ति और ऐश्वर्य तो दे डालते हैं। भोलानाथ पागल अवश्य हैं, पर जो ज्ञान बड़े-बड़े ज्ञानी भी नहीं पा सकते, उनकी वह स्वभाव-सिद्ध संपत्ति है।

हमारे कृष्ण बालक हैं। वह हास्य प्रिय, रसिक और प्रेममय हैं। लीला करना उनका धर्म है। रंग-प्रिय प्रेम-मूर्ति श्याम सुन्दर कुरुक्षेत्रके नायक हैं, संसारके रक्षक हैं और समग्र ब्रह्माण्डके सखा और मित्र हैं।

सामाजिक सुश्रृंखलाओंके लिये हम बाहरी पाप-पुण्यको कर्म-प्रमाण कहकर उसका मान करते हैं, परन्तु भीतरी मान ही हमारी आदरणीय वस्तु है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो संन्यासी आचार-विचार, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, और पाप-पुण्यकी अवहेलना कर मदोन्मत और पिशाच सदृश आचरण करता है, उसी सर्व-धर्म-त्यागी पुरुषको हम श्रेष्ठ कहते हैं, परमहंस कहते हैं।

नारायण सर्वत्र विद्यमान हैं। किसके साथ विद्वेष करें और किसके ऊपर घृणा।

भगवान स्वयं प्रसन्न होकर जो शक्ति, सिद्धि तथा आनन्द दें, उसीको प्रसाद रूपसे ग्रहण कर उनके ही कार्यमें लगाना हमारी योग्य-लालसाका एकमात्र उद्देश्य होना चाहिये।

जो निर्जनताको सह सकता है, वह या तो देवता है नहीं तो पशु है। आनन्द और शक्ति यही तो दोनों अस्तित्वके पक्के प्रमाण हैं।

महापुरुषकी तपस्या, स्वार्थत्यागीका कष्ट-सहन, साहसीका आत्मविसर्जन, योगीका योगवल, ज्ञानीका ज्ञान-संचार और सन्तोंकी शुद्ध साधुता—आध्यात्मिक बलका निर्भर है। मूल प्रकृति शुद्ध आत्माके अधीन है। वही आद्यप्रकृति असम्भव-को भी सम्भव कर दिखाती है, मूकको वाचालता तथा पंगुको पर्वत उल्लंघन करनेकी शक्ति देती है। समस्त जगत् इसी शक्तिसे निर्मित हुआ है।

हमारे पास बाहुबल नहीं है, समग्र-सामग्री नहीं है। शिक्षा नहीं है और न राज-शक्ति ही है। तब किस बूतेपर हम उस कार्य-साधनके लिये उद्यत हुए हैं, जो प्रबल और शिक्षित यूरोपीय जातिके लिये भी असाध्य जान पड़ता है? लेकिन यह तो सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि केवल बाहुबलसे किसी महान् कार्यका सिद्ध हो जाना असम्भव है। अतः बाहुबलसे आत्म-बल ही कार्य-सिद्धिमें अधिक क्षमता रखता है।

सम्पूर्ण योगप्राप्तिके बिना द्वन्द्वका अत्यन्त नाश नहीं होता। यह अवस्था बहुत ही कम लोगोंको प्राप्त होती है, परन्तु आर्यशिक्षा साधारण आर्योंकी सम्पत्ति है। गुणातीत योगी यदि नरकमें भी डाल दिया जाये, तो वह उस नर्कको स्वर्ग बना लेता है। पूर्णज्ञानी इस दुःखरूप जगत्को अपना प्रियतम समझता है। वह कहता है "यह सब आनन्दमय ब्रह्म है, कान्त है, शिव है, सुन्दर है।"

भाव दो प्रकारके हैं, प्राकृतिक या नित्य तथा कृत्रिम या विकारी। प्रेम, साहस, दया, सत्य और शील नित्य हैं, अतः ये धर्म हैं। घृणा, कायरता निर्दयता, असत्य और नीचता विकार हैं। यही अधर्म हैं। योगीको विकारात्मक अधर्म छोड़-कर सनातन धर्म ग्रहण करने होंगे।

आत्म-बल ही बाहु-बलको तुच्छ प्रमाणित कर मनुष्य जातिको सिखाता चला आ रहा है कि यह जगत् भगवानका राज्य है, अन्ध अस्थूल प्रकृतिका खाली क्षेत्र नहीं।

जिसका आत्म-बल विकसित हो चुका है, उसके जयकी सामग्री आप ही सामने उपस्थित हो जाती है। सारी विघ्न बाधायें और विपत्तियाँ स्वयं टूट-टूटकर अनुकूल अवस्थाको लाती हैं। कार्य करनेका सामर्थ्य स्वयं प्रकट होकर तेजस्वी और वेग गतिवान् हो जाता है।

कृष्ण भगवानने महाभारतमें कहा था कि कुछ लोग इस संसारमें प्रवृत्ति मार्गका उपदेश देते हैं, और कुछ निवृति मार्गका, किन्तु मैं निवृति मार्गवाले अकर्मण्योंसे सहमत नहीं हूं, क्योंकि वे शक्तिहीन हैं। मैं भी श्रीकृष्णके उपर्युक्त कथनका अनुकरण करता हूं।

आपको अपने शरीरकी परवाह नहीं करनी चाहिये। आपसे ज्यादा परवाह परमात्मा करता है। केवल आत्म-बल प्राप्त करो, शरीर-रक्षा ईश्वरके भरोसे छोड़ दो

प्रकृतिको अपना काम करने दो। जहांतक हो सके, अपने को शरीरसे अलग ही समझो। शरीरको आत्माका केवल आवरण मात्र मानो। उसे परमात्मा तथा उसकी शक्तिके भरोसे छोड़ दो।

बहुतसे साधक बीमार हो जानेके भयसे योग मार्ग छोड़ बैठते हैं। आपको बीमारीके झूठे हौवेसे न डरना चाहिये, क्योंकि योग मार्गका अवलम्बन करनेके पहले ही योगी अपनेको परमेश्वरके हाथमें सौंप देता है। वही आपकी देखभाल करता रहेगा।

मैं जगत्को आनन्दसे उत्पन्न हुआ मानता हूं। इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति भी आनन्दमें मानता हूँ। यह सब आनन्दका चक्र घूम रहा है। जो मनुष्य योग-साधन करना चाहता है, उसके लिये जनता और निर्जनता एक समान होनी चाहिये।

जगत्की कोई घटना ऐसी नहीं होती—चाहे वह घटना बड़ी हो चाहे क्षुद्र—जिसके द्वारा कोइ न कोई मंगल कार्य सम्पादित न होता हो।

आत्म-शक्ति आपके भीतर है। उसे अपना काम करने दो। आप तो साक्षी, अनुमन्ता, भोक्ता और भर्ता हो। अनुमन्ताके रूपमें काम करनेकी आज्ञा दो। साक्षी बनकर कार्य और उसका फल देखते रहो। भोक्ता होकर कार्यका फल भोगो और भर्ताके रूपमें उस शक्तिके आधारको सम्हाले रहो। तामसिक उदासीनता अथवा राजसिक क्रान्ति द्वारा उस शक्तिको नष्ट न कर दो।

विश्वास रखो कि सत्संकल्प कभी निष्फल नहीं जाता। आप ज्ञाता हो। शक्ति आपको जो ज्ञान प्रदान करे खुशीसे उसे लेते जाओ। इसी नियमको अपने जीवनके प्रत्येक कार्य और साधन में लगाओ।

मुक्तिका अर्थ मैं "लय" हो जानेमें नहीं लेता। लय होनेकी इच्छा न करनी चाहिये। इसे परमेश्वरकी इच्छापर छोड़ दो। मुक्तिका अर्थ है—अज्ञान, अहंकार और द्वन्द्वसे छुटकारा पा जाना।

मैं अज्ञानी और बद्ध नहीं हूं। मैं दुखी नहीं हूं। मैं अज्ञानी बनकर सिर्फ खेल रहा हूं। कैद हो जानेका बहाना कर रहा हूं और एक नटकी नाईं दुखका केवल रस ले रहा हूं। जब मैं चाहूँ तब यह सब हटा सकता हूँ। कौन मुझे तुच्छ और पतित कह सकता है? मैं ब्रह्म हूं। पाप मुझे छू तक नहीं सकता। कौन मुझे कमजोर कह सकता है? मैं सदा शुद्ध हूं। एक ही तो अनेक हुआ है। वही अनन्त सान्तमें परिणित हो गया है। यही परमेश्वरकी सत्ताका उत्तम रहस्य है। इस रहस्य का पता न्याय और तर्क शास्त्र नहीं लगा सकते। खण्डन-मण्डनका नहीं, किन्तु अनुभवका शुद्ध मुक्त और पूर्ण आत्माका ज्ञान ही इस आनन्दमय रहस्यका भेद खोल सकता है। यह विश्व आनन्दका धाम है और सर्वव्यापी नारायण प्रेम, शक्ति और विकासके लिये जड़ और चैतन्यमें, मनुष्य कीट और पतंगमें, साधु और दुष्टमें, शत्रु और मित्रमें, देवता और असुर में प्रकाशित होकर लीला करते हैं। लीलाके लिये ही सुख है और लीलाके लिये ही दुःख। लीलाके लिये पाप है और लीलाके लिये पुण्य। लीलाके लिये ही मित्रता है और लीलाके लिये ही शत्रुता। लीलाके लिये देवत्व और असुरत्व है। मित्र और शत्रु सभी लीलाके सहचर हैं। दो पक्षमें विभक्त होकर स्वपक्ष और विपक्षकी सृष्टि की है।

जातीय भाव राजसिक भाव हैं और स्वदेश प्रेम सात्विक। जो मनुष्य अपने 'अहं' को देशके 'अहं' में लय कर सकता है, वह एक आदर्श स्वदेशप्रेमी है, और जो अपने 'अहं' को कायम रखकर उसके द्वारा देशके 'अहं' को बढ़ाता है, वह जातीय भावापन्न है।

जहां धर्म है वहां जय है। किन्तु धर्मके साथ ही साथ शक्ति होना जरूरी है, नहीं तो अधर्मका अभ्युत्थान हो जाता है।

जो सब प्राणियोंके कल्याणकी इच्छा रखता है और किसीका अनिष्ट नहीं करता, उस दयाशील, अहिंसा परायण, सर्वभूत-हित-रत पुरुषको मित्र कहते हैं।

पाप और पुण्य, सुख और दुःख मनके धर्म हैं। कर्म आवरणमात्र है।

धीरताके साथ सब दुःख और सुखोंको भगवानके चरणोंमें अर्पण करना मनुष्यमात्रका कर्तव्य और उपाय है।

परमात्माने जो बल, बुद्धि और धन दिया है वह सब परमात्माका है। जो परिवारके भरण-पोषणमें लगे या जो अति आवश्यक समझा जाये उसीके खर्च करनेका अधिकार है। जो बाकी बचे वह भगवानको लौटा देना चाहिये।

विरोध और युद्ध धर्मके अंग हो सकते हैं, किन्तु विद्वेष और घृणा धर्मके बाहर हैं।

नारायणकी लीला अति विचित्र है। उनकी सृष्टिमें जगत्की उन्नति शुभ और अशुभ द्वारा परिचालित होती है। अशुभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः शुभका सहायक बन जाता है और भगवानको जो अभीष्ट है उसी मंगलमय फलका उत्पादन करता है।

सत्वमुखी होनेसे ही राजशक्ति स्थायी होती है। सात्विक भाव यदि न भी हो, तब भी सात्विक आदर्शका होना आवश्यक है।

साम्य, स्वाधीनताकी प्रतिष्ठा है। साम्यके न होनेसे स्वाधीनताकी प्रतिष्ठा नहीं होती।

क्या आपमें परमात्माका अंश है? क्या आपको यह मालूम है कि आपका शरीर निजका नहीं, आप परमात्माके साधनमात्र हैं। यदि आपको यह अनुभव होगया है तो आप सच्चे राष्ट्रवादी हैं और तब ही आप इस महान् राष्ट्रका उद्धार कर सकेंगे। आपको चारों ओर अंधेरा सूझेगा, आपके रास्तेमें निराशा आ खड़ी होगी, कलंक आपका पीछा करेगा, परन्तु आपको अपने पैरों खड़ा रहना होगा।

दो दिनमें ही इस नश्वर माया जगत्के वास्तविक स्थायित्वका पता चल सकता है।

हा! मनुष्य अन्धा होता है। भगवानने दुःखी मनुष्योंके ऊपर दो बड़े उपकार किये हैं— एक यह कि मनुष्यको घोर अन्धकारसे ढँक रखा है और दूसरा उसको एकमात्र सहारा देनेवाली और ढाढ़स बंधानेवाली अन्धी आशा दे रखी है।

भगवान प्रायः एक कार्यसे अनेक उद्देश्योंको सिद्ध करते हैं। हम लोग बहुत बार संसारमें एक अन्धी शक्तिका खेल देखते हैं और इस शक्तिको नष्ट होते देख भगवानकी सार्थकता स्वीकार न करते हुए और ईश्वरीय बुद्धिको दोष देते हुए शक्तिका निष्फल जाना ही प्रकृतिका नियम बतलाने लगते हैं। किन्तु यह अभियोग निर्मूल है। ईश्वरीय शक्ति कभी भी अन्ध रूपसे काम नहीं करती। उनकी शक्तिका एक विन्दु भी नष्ट नहीं हो सकता। भगवान् संयमित भावसे अल्प व्ययपर ऐसे-ऐसे अनेक फल पैदा करते हैं, जो मनुष्यकी कल्पनामें भी नहीं आ सकते।

मंगलमय श्रीहरि अमंगलसे भी परम मंगलका उत्पादन करते हैं।

जीवन

पं० नारायणदत्त त्रिपाठी व्याकरणाचार्य

वास्तविक रक्षित वीर्यका ही भौतिक रूप जीवन है। और जीवन यदि किसीका सफल है तो केवल ब्रह्मचारीका। उसके अंग प्रत्यंगसे वह ज्योति निकलती रहती है, वह आभा चमकती है, जिससे आधि-व्याधि फटकने ही नहीं पाते। वह तो सदैव अपनी ही मस्तीकी झूम झूमता और आनन्दसागरमें डुबकियां लगाता रहता है। इसका सत्य रहस्य संयममें निहित है। ब्रह्मचारी संयमी होता है। उसका वही बल है। वह संयम द्वारा निज इन्द्रिय गुर्णोंको स्ववश कर लेता है। वे निरंकुश तुरंग जो कि विपरीत पथानुगामी थे संयम नियमकी रास कड़ी होते ही चाबुक पड़ते ही त्रस्त उस एक मुख्य, सुपथपर आ जाते हैं और संयमीके आदेशानुसार उसके रिपुओंपर विजय पानेके लिए दौड़ पड़ते हैं। अब इन्हीं अपने दुलारे तुरंगोंकी सहायतासे ब्रह्मचारी जीवनके सबसे बड़े रिपु काम क्रोधादि किंवा मृत्युको भी सरलतासे पराजित कर लेता है। जिनका जीतना कि त्रैलोक्यको जीतना है। ब्रह्मचारीपर परब्रह्म परमात्मा भी सदा प्रसन्न रहते हैं, फिर कहना ही क्या है। वह शान्ति सुख एवं अमरता, अजरताका ताज पहनकर अपने मानवजीवनको जीवन बनाता है। वह धन्य है। हरएक आश्रममें रहते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनको संयमित करनेका साधन

योगिराज पं० गोरखनाथ शास्त्री सांख्य-योगाचार्य

इस असार भवाटवीमें अपरिमित दिनोंसे असंख्य-विध उत्कृष्टापकृष्ट योनियोंमें परिभ्रमण करते हुए प्राणियोंको किसी भी योनिमें नितान्त, अविच्छिन्न, निरतिशय सुख उपलब्ध नहीं होता, तथापि सर्वोत्कृष्ट सुख-प्राप्तिके लिये ही तत्सुख साधनोंका संग्रह करता है। इसका मुख्य कारण अनेक प्रकारके दुःखोंका उपादान कारण-भूत तत्तत् प्राणियोंके मनकी चञ्चलात्मिका वृत्तियां ही हैं।

जबतक ये वृत्तियां प्रशान्त नहीं होंगी तबतक निरवच्छिन्न तथा अविनाशी सुख प्राप्त नहीं हो सकता, यह गीता वाक्यसे भी सिद्ध होता है—

नास्ति बुद्धिर्युक्तस्य नचायुक्तस्य भावना।
न चा भावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

यदि प्रत्यक्षवादी लोग यह कहें कि इनकी चञ्चलता दूर करनेके लिये अभिलषित अनुकूल विषयोंका सम्पर्क ही पर्याप्त है तो यह प्रतिकूल-सा प्रतीत होता है क्योंकि जनकादि प्रभृति राजर्षिगणने उत्तमात्युत्तम विषयका दीर्घ कालतक सतत् सेवन किया तदपि तद्विषयिणी इच्छाकी पूर्ति नहीं हुई, प्रत्युत इच्छा बलवती ही होती गयी। इसकी पुष्टि श्रीगोस्वामीजीकी वाणी इस प्रकार करती है :—

होय न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुखलाग, जन्म गयो हरिभगति बिन॥

इसका प्रतिपादन मनुजी भी इस प्रकार करते हैं—

न जातु कामः कामानामुपभोगे न शाम्यति।
हविशा कृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्धते॥

अतः यह कथन सर्वथा ही असंगत है कि मनोनुकूल विषयोंके सम्पर्कसे मन स्थिर होता है। अस्तु, मनकी स्थिरता-मूलक ही सुखकी प्राप्ति है। स्थिरताके साधन मुख्य रूपसे योगशास्त्रमें अनेक प्रकारसे वर्णित है। उनमें इसके लिये प्रधानतया ईश्वराराधन ही बतलाया गया है।

इससे मन शीघ्र ही वृत्तिरहित होकर भगवदीय अखण्डानन्द अनुभव करते हुए स्वयं भी निरन्धना अग्निवत् विलीन हो जाता है। तत्पश्चात् मनुष्य सर्वथाके लिये जन्म मरणादि क्लेश-कण्टकसे विमुक्त हो जाता है। अतः मानव जीवनके सार्थक इच्छुक सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य है कि विषयादि संभोगमें सदा परायण न होकर सद्विचारों द्वारा चेष्टाओंसे वञ्चित रहें। निवृत्त मनसे जो सुख उपलब्ध होता है वह अविनाशी तथा अतीन्द्रिय स्वानुभव वेद्य होता है, जैसे वागेन्द्रिय शून्य किसी मूकको रसास्वादके अनुभवमें।

वह सुखकी धारा ऐसी अविच्छिन्न बहती है कि उस कालमें वह मनुष्य गुरुतर दुःखसे भी अपने स्वरूपसे नहीं वञ्चित होता यह उत्कृष्ट योगफल श्रीपरमानन्द सच्चिदानन्द श्रीकृष्णचन्द्रने अपने परम भावुक भक्त अर्जुनको गीतोपदेश द्वारा दिये हैं जैसे—

यं लब्ध्वा चापरे लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिनस्थितोऽपि दुःखेन गुरुणाऽपिविचाल्यते।

यह उपदेश केवल अर्जुनके लिये ही नहीं प्रत्युत समष्टि जीवोंके प्रतिनिधि द्वारा ब्रह्माण्डान्तर्गत सभी अधिकारी मानवोंके लिए ही उपदेश दिया है। अतः मनोनिरोधके लिये विषयासक्तिको त्यागकर अत्युत्तम अलौकिक परमानन्द रस पानका आनन्द उठाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौनावलम्बनसे शक्ति की वृद्धि

(लेखक—श्री अमरनाथ कौशिक बी० ए०)

मौनावलम्बन पर कुछ कहना या लिखना बड़ा कठिन है। और सो भी यह बतलाना कि इससे शक्तिकी वृद्धि होती है और भी कठिन कार्य है।

वाल्टेयरने एक बार ठीक ही कहा था कि मनुष्यको वाणी और भाषा नामकी दो ऐसी चीजें मिली हैं जिनसे वह अपने विचारोंको छिपा दे। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो विदित होगा कि वाल्टेयरका कथन सर्वथा ठीक है। यह तो सभी लोग स्वीकार करेंगे कि शब्दोंका सागर यदि उँडेल दिया जाय तो भी उसके अन्दर भाव, विचारकी शून्यता रह सकती है और विचार-राशिका प्रकटीकरण बिना शब्दोंके उच्चारणसे किया जा सकता है।

मौन धारण कर बहुत कुछ व्यक्त किया जा सकता है। यदि वास्तवमें विचार किया जाये तो विदित होगा कि हम बोल कर, कहकर भी अपने सारे भावोंको और विचारोंको नहीं प्रकट कर सकते। हमारे विचारोंका सहस्रांश भी हमारी वाणी द्वारा नहीं व्यक्त हो पाता। इसका अनुभव सभी लोगोंको है कि जब हमारे हृदयमें आनन्द, दुःख, शोक, उद्वेग आदिके भावोंकी अधिकता रहती है तो हम उस समय अपनी मनोदशाका वर्णन नहीं कर सकते। अपनी बात कह सकना हमारे लिये कठिन हो जाता है। हम उस समय मूक हो जाते हैं। मन भी उस समय निष्क्रिय हो जाता है। एक कहावत है—खाली बादल गरजता है, भरा बादल बरसता है। यही दशा हमारे बोलनेकी है।

पाश्चात्य देशोंमें सभी चीजें आर्थिक और भौतिक दृष्टिसे देखी जाती हैं। उनके मूल्यको सांसारिक दृष्टिसे उपयोगिताके अनुसार आंका जाता है। इसीलिये बोलनेको वे बहुत महत्व देते हैं किन्तु वे भी कहते हैं कि बोलनेका मूल्य मौन रहनेसे उतना ही कम है जितना चांदीका सोनेसे। यह उनका एक मापदण्ड है। एक बारका किस्सा है कि एडिसन अपने एक मित्रके साथ बैठकर सायंकालका आनन्द ले रहा था। दोनों अन्ततक चुप रहे, यद्यपि बिलकुल पास ही बैठे थे। चलनेके समय एडिसनने कहा—"आज हम लोगोंने शामका समय कितने आनन्दसे बिताया।"

मौनमें बड़ा बल है। मौन रहनेसे जितने आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होती है उतना बोलनेसे नहीं। मौनका नाम ही शान्ति है। उसीसे सब वस्तुएँ उद्भूत हुई हैं, उसीमें स्थित रहती हैं और उसीमें विलीन हो जाती हैं।

वेदोंमें मौनकी व्याख्या जहां की गयी है वहां उसको 'शान्तम्' कहा गया है और शान्तम् का अभिप्राय सुख, आनन्द है। यदि इस आनन्द और शान्तिकी व्याख्या की जाये तो तुरन्त प्रकट होगा कि इसका दूसरा नाम प्रणव, ॐ या सोऽहम् है जो सदा हमारे श्वास-प्रश्वासमें रमा रहता है। यदि ध्यानसे देखा जाये तो यह मालूम हो जायेगा कि विश्वकी प्रत्येक चीज अपने वास्तविक रूपमें शान्ति अथवा दूसरे शब्दोंमें मौन-स्थितिमें ही विद्यमान है। गर्भमें बच्चेकी वृद्धि होती है और वह पुष्ट होता है। यह सारी क्रिया मौनकी ही दशामें होती है और जब उसका इतना विकास हो जाता है कि वह जीवित रह सके तो वह व्यक्त होता है अर्थात् सर्वजन दृग्गत होता है। और सबकी दृष्टिमें आने पर भी पहला शब्द जो उसके कण्ठसे फूटकर निकलता है वह ॐ ही है। हमारे श्रोत्र इसके लिये अभ्यस्त नहीं हैं। अतएव हम इसके मूलरूपमें न सुनकर भिन्न रूपमें सुनते हैं। वरना प्रत्येक दशामें ॐ की ही ध्वनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उच्चारण करता है। इसको हम शान्ति कह सकते हैं। बच्चे की आवश्यकता पूरी करके मां उसको पुनः शान्तिकी दशामें—मौनकी दशामें—ले आती है। इसी प्रकार जब बच्चा बढ़ता है तो कुछ बढ़कर पढ़ना लिखना सीखता है और तब भी वह मौन ही रहता है। चित्तको एकाग्र करनेके लिये मौन रहनेकी अधिक आवश्यकताका अनुभव वह करता है। नहीं तो उसकी पढ़ायी नहीं हो सकती। जब भी देखिये मौन पालन करनेकी, शान्त रहनेकी आवश्यकता रहती ही है। दरजेमें अध्यापक शान्ति चाहता है, मनुष्य अपनी जीवनयात्रामें शान्ति चाहता है; पूजा ध्यान, जप, तप, योगादिमें सर्वत्र शान्तिकी आवश्यकताका अनुभव साधक करता है। इसके बिना उसका काम ही नहीं चल सकता। इससे ही मौनावलम्बनकी शक्तिका अनुमान किया जा सकता है और फिर जब जीव ब्रह्मसाक्षात्कार कर लेता है तो वह सर्वथा मौन हो जाता है। ब्रह्म अवर्णनीय है और यही मौनकी शक्तिका सबसे बड़ा प्रमाण है।

थोड़ी देरके लिये भी यदि कल्पना की जाये कि मौनका शान्तिका अस्तित्व न होता तो विचार तो कीजिये कि जगत्‌की क्या दशा होती। क्या यह इस प्रकार स्थित रहता? क्या इसका अस्तित्व किसी भी दशामें सम्भव था। और फिर क्या कारण, कार्य और परिणाम एक ही नहीं हैं? कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है और उसीमें वह विलीन हो जाता है। अर्थात् जो वस्तु मौनसे उत्पन्न हुई, उसीमें स्थित रहेगी और उसीमें विलीन हो जायेगी। इससे भी शान्तिकी महत्ता प्रकट होती है।

ऊपर लिखा गया है कि मौन रहनेसे मनुष्य अपारशक्ति प्राप्त कर लेता है और यह भी लिखा गया है कि मौनकी दशासे ही सब चीजें उत्पन्न हुई है। यह सब लोग जानते हैं कि इस सृष्टिका आदि स्रोत ब्रह्म ही है। जगत ब्रह्मकी शक्ति मायासे उत्पन्न हुआ है। सृष्टिका विनाश होनेपर या ब्रह्मकी इस लीला—माया—की समाप्ति होनेपर यह सब ब्रह्ममें विलीन हो जायेगा। अर्थात् शान्तिसे उत्पन्न वस्तु शान्तिमें मिल जायेगी। इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि मौनमें कितना बल है और यदि हम प्रति दिन कुछ देरतक मौन रहने का व्रत लेलें तो अपनी शक्तिकी कितनी अधिक वृद्धि कर सकते हैं तथा ब्रह्मात्मैक्यताका किस मात्रातक अनुभव कर सकते हैं, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

साम्यबुद्धिकी श्रेष्ठता

श्री रामगोपाल मोहता

आपने कर्तव्य-कर्म करनेमें सर्दी, गर्मी आदि अनेक कारणोंसे कभी सुख और कभी दुःखकी प्राप्ति हो, अथवा प्रतिकूल प्रकृतिके लोग शत्रुताका और अनुकूल प्रकृतिके लोग मित्रताका भाव रखें, और प्रेम करनेवाले लोग मान करे, तथा द्वेष रखनेवाले अपमान करे, एवं कोई निन्दा करें, और कोई स्तुति करें, तो इन द्वन्द्वों अथवा जोड़ोंको परिवर्तनशील एवं अस्थायी समझ कर इनसे अविचलित रहना; इन जोड़ोंको एक वस्तुके दो परस्पर विरोधी, अन्योन्याश्रित एवं परिवर्तनशील भाव समझना; सुखके साथ दुख, शत्रुताके साथ मित्रता, मानके साथ अपमान और निन्दाके साथ स्तुतिका अस्तित्व बना रहता है, अर्थात् जहाँ सुख है वहाँ दुःख भी होता है, जहां शत्रु हैं वहां मित्र भी होते हैं, जहां मान है वहां अपमान भी होता है और जहां निन्दा है वहां स्तुति भी होती है—प्रत्येक भावके अस्तित्वके लिये उसके जोड़के विरोधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावका होना अनिवार्य है। ये परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं, इसलिये वास्तवमें एक' वस्तुके अनेक कल्पित रूप हैं—इस तथ्यको अच्छी तरह समझ कर इनमेंसे किसीकी भी प्राप्ति होनेपर अपने चित्तकी समता अथवा शान्ति भंग न करना, जो एक परिस्थितिमें सुखका कारण होता है, वही दूसरी परिस्थितिमें दुःखका कारण हो जाता है, और जो एक परिस्थितिमें दुःखका कारण होता है वही दूसरी परिस्थितिमें सुखका कारण हो जाता है, जो एक परिस्थितिमें शत्रु होता है वही दूसरी परिस्थितिमें मित्र हो जाता है, और जो एक परिस्थितिमें मित्र होता है वही दूसरी परिस्थितिमें शत्रु हो जाता है, जो लोग एक परिस्थितिमें अपमान अथवा निन्दा करते हैं वही लोग दूसरी परिस्थितिमें मान और स्तुति करने लग जाते हैं, और जो लोग एक परिस्थितिमें मान और स्तुति करते हैं,वही दूसरी परिस्थितिमें अपमान और निन्दा करने लग जाते हैं; इसलिये इन विरोधी भावोंको तथ्यहीन समझकर अपनी योग्यताके सांसारिक व्यवहार सबके साथ यथायोग्य प्रेमपूर्वक साम्य भावसे करनेमें इन द्वन्द्वोंसे विचलित न होकर अन्तःकरणकी समता बनाये रखना—यह वास्तविक समता है, और परमात्माका सच्चा भक्त—समत्वयोगी इस प्रकार इन द्वन्द्वोंमें सम बना रहता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि परमात्माके भक्त अर्थात् समत्वयोगीको सुख-दुःख, मान-अपमान आदिकी वेदनायें प्रतीत ही नहीं होतीं, अथवा उसे सुखकी अनुकूलता और दुःखकी प्रतिकूलताका कुछ अनुभव ही नहीं होता, अथवा वह सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके लिये कोई यत्न ही नहीं करता शरीरको सदा कष्ट ही में रखता है, तथा वह शत्रु और मित्रके साथ एक-सा वर्ताव करता है, और मान एवं स्तुति तथा अपमान और निन्दाको एक-सा समझ कर ऐसे आचरण करता है कि जिनसे अपमान और निन्दा भले ही हो —वह उनकी परवाह नहीं करता, ऐसा करना समताका भाव नहीं है, किन्तु बड़ी भारी विषमताका भाव है। सुख-दुःख, शत्रु-मित्र मान अपमान, निन्दा-स्तुति आदि द्वन्द्व शरीरके साथ सम्बन्ध रखते हैं; अतः इनकी वेदना जितनी साधरण लोगोंके शरीरोंको होती है, उतनी ही परमात्माके भक्त अथवा आत्मज्ञानी समत्वयोगीके भी शरीरको होती है क्योंकि शरीर सबका उन्हीं पंचतत्वोंका बना हुआ होता है, परन्तु परमात्माका भक्त अथवा आत्मज्ञानी समत्वयोगी तात्विक विचारसे इन द्वन्द्वों अथवा विरोधी भावोंके जोड़ोंकी असलियतका ज्ञान रखता है, इसलिये वह इनसे प्रभावित होकर अपने कर्तव्योंसे विचलित नहीं होता, और न उसके अन्तःकरणमें अशान्ति ही उत्पन्न होती है; उसे सदा यह ध्यान रहता है कि यह सब संसार द्वन्द्वों अर्थात् परस्पर विरोधी भावोंके जोड़ोंका बनाव है, इसलिये जिस समय जो भाव उपस्थित हों, उसीके अनुरूप शारीरिक व्यवहार यथायोग्य करते हुए भी उसके अन्तःकरणमें सबकी एकताका साम्यभाव बना रहता है। सुखकी प्राप्ति होनेपर उसका यथायोग्य उपभोग करते हुए भी वह उसमें तल्लीन नहीं होता, दुखकी प्राप्ति होनेपर उसे सहन करते हुए भी उसके अन्तःकरणमें व्याकुलता नहीं होती, शत्रुके साथ उसके आचरणोंके अनुसार शासन अथवा उपेक्षाका वर्ताव करते हुये भी वह अन्तःकरणसे उसके साथ कोई द्वेष नहीं रखता; मित्रके साथ मित्रताका वर्ताव करते हुए भी वह उसके साथ व्यक्तिगत प्रेमके मोहमें आसक्त नहीं होता; मान और स्तुतिका आदर करते हुए भी उनसे फूलकर कुप्पा नहीं हो जाता, अपमान और निन्दाको हेय समझते हुए भी उनसे उसके अन्तःकरणमें उद्वेग नहीं होता—यही सच्ची समता है। और इसीके लिये सबको प्रयत्न करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थ जीवनकी सफलता

श्री रामेश्वर सिंह काव्यतीर्थ

यह बात निर्विवाद है कि उन्नतिका मूल कारण शिक्षा है और शिक्षाकी सफलता तथा व्यापकताके लिये प्राणीमात्रको शिक्षित बनाना अनिवार्य है।

प्राचीन भारतमें गृहस्थ जीवन तथा स्त्री शिक्षाका ढंग सराहनीय था। तबके और अबके गृहस्थ जीवनमें आकाश पाताल का अन्तर है। गृहस्थ जीवन बड़ा पवित्र तथा मनोरम है। वास्तवमें गृहस्थ जीवनसे बढ़कर सुखदायक जीवन कोई नहीं, यदि उसका ढङ्ग वास्तविक हो। आजकलका गृहस्थ जीवन शान्ति से सर्वथा शून्य ही है। फूट, कलह एवं अनैक्यका साम्राज्य स्थापित है। इसका प्रधान कारण स्त्री समाजका अशिक्षित होना है। बच्चोंपर माताका प्रभाव पड़ता है। यदि मातायें अपना कार्य पूरा करें, तो साधारण स्थितिमें पले हुए बच्चे भी समाज तथा राष्ट्रके सच्चे सेवक हो सकते हैं। बच्चोंकी अवनति तथा उन्नति के उत्तरदाता माता-पिता ही हैं। उसमें भी माता ही की विशेषतया प्रधानता है। बच्चा अपनी माता ही का अनुकरण आरम्भ में करता है। माता ही का अधिक प्रभाव बालकोंपर पड़ता है। यदि माता विदुषी है तो लड़का भी अवश्य सभ्य, शिष्ट और विद्वान होगा। सौ वर्ष पहले घर ही सामाजिक जीवनका तथा शिल्प व्यवसायोंका केन्द्र था। किसी विद्वान्‌ने ठीक कहा है कि मनुष्यकी शिक्षा उसके पैदा होनेके बीस वर्ष पहलेसे प्रारम्भ होनी चाहिये। अर्थात् स्त्रीको माता होनेके बीस वर्ष पहले शिक्षित बनना श्रेयस्कर है। गर्भवती स्त्रीका प्रभाव गर्भके बालकपर ठीक वैसा ही पड़ता है जैसा कि उस दशामें उसकी रहन-सहन होती है। संसारमें जितने बड़े २ विद्वान हो चुके हैं, सबपर उनकी माताओंका प्रभाव पड़ा है। गृहस्थ जीवनमें विशेषकर बच्चोंकी आरम्भिक शिक्षापर ध्यान रखना आवश्यक है। जबतक गृहस्थ जीवन ऐक्य-सूत्रमें आबद्ध नहीं होता, तबतक हिन्दू समाजमें बच्चोंका लालन-पालन उचित रूपसे नहीं हो सकता। पर इस समाजकी तो बात ही आजकल निराली है। यहांके परिवारोंमें कलहका मानो अखण्ड राज्य स्थापित है। प्रत्येक परिवारमें किसी न किसी तरह प्रतिदिन कलह और मनोमालिन्य हो ही जाता है। फिर स्त्री समाजके शिक्षित न होनेके कारण यह गृह-कलह होना आश्चर्य जनक भी नहीं कहा जा सकता। यह बात हरेक घरके लिये, खास कर शिक्षित घरके लिये ही न लागू हो, पर अधिकांश घरोंमें ऐसा प्रतिदिन देखने में आता है। सच्चा सुख उसी परिवारमें है, जहां माता-पिताके आज्ञाकारी तथा भक्त पुत्र पैदा हों, पतिका पत्नीपर अटल अनुराग और पतिके पाद-पद्मोंमें पत्नीकी अविरल भक्ति हो, भाइयों में असीम सौहार्द हो, परिजनोंमें परस्पर भक्ति एवं प्रेमभाव हो। उसी परिवारमें स्वर्गका सुख है, वहीं प्रेमकी मन्दाकिनी प्रवाहित होती है। अशिक्षित मातायें बच्चेके रहन-सहन तथा सफाईकी ओर ध्यान नहीं देतीं। बच्चोंके कपड़े इतने मैले होते हैं कि देखते ही घृणा होती है। पहरों तक बच्चे रो रहे हैं, परन्तु माताको लड़नेसे कहां अवकाश मिलता है। देहातोंमें यह दृश्य प्रायः देखनेमें आता है।

इस दुर्वस्थाका प्रधान कारण स्त्री समाजमें शिक्षाका अभाव है। जबतक स्त्री समाजमें शिक्षाका पर्याप्त प्रचार होगा नहीं, तबतक उनकी दशा नहीं बदलेगी। जहां अन्य देशोंमें स्त्रियां राष्ट्रके निर्माण और उत्थानमें अधिकसे अधिक भाग ले रही हैं, वहां अपने यहां उनकी दशापर दया आती है। यद्यपि धीरे-धीरे स्त्री समाजमें शिक्षाका प्रचार हो चला है, तथापि इसकी अभी विशेष आवश्यकता हरेक प्रान्त, गांव तथा नगरमें है। हमारे अधिकांश कार्य गृहकार्यके अन्तर्गत हैं। स्त्रियोंको अपना दायित्व समझनेके योग्य शिक्षा देना अनिवार्य है। तब वे गृहस्थ जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सच्चा स्वरूप समझ सकेंगी तथा उसके संचालनमें भी निपुण हो सकेंगी। इस प्रकार वे मानसिक, आर्थिक तथा शारीरिक सभी दृष्टियोंसे गृह-कार्य तथा संतान-पालनके कार्य सफलतापूर्वक कर सकेंगी। साथ ही उनके बच्चोंके हृदयमें भी उच्च भाव तथा उच्च विचार उत्पन्न होंगे। अशिक्षित मातायें बहुधा बुरे शब्दोंका व्यवहार करती हैं। बालकोंके सामने गाली या बुरी बातें निकालना तो साधारण बात हो गयी है। इसका परिणाम बहुत बुरा पड़ता है। इसलिये माता पिता-दोनोंको इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। संतानको प्राचीन वीर पुरुषों तथा नारियों का जीवन-चरित्र सुनाना चाहिये। जातीय अभिमान तथा आत्म-श्लाघाका भाव उनके हृदयमें भरना चाहिये, क्योंकि बचपनमें जिस प्रकारका बीज बपन हृदयमें हो जाता है, उसी प्रकारका फल उसमेंसे उत्पन्न होता है। देश, समाज तथा अपनी जाति की सच्ची सेवाका यही सरल मार्ग है।

जिस घरमें स्त्रियां शिक्षित, संस्कृति और सुशील नहीं होतीं वहां कभी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसी स्त्रियोंके प्रति संतानकी अथवा अन्य जनोंकी श्रद्धा भी नहीं हो सकती और सदा ही अस्त व्यस्तता-सी रहती है। स्त्रियोंकी शिक्षासे बढ़कर गृहस्थ जीवनकी सफलताका और कोई साधन नहीं है। जिस देशमें इसका अभाव है वही देश आधुनिक युगमें पिछड़ा हुआ भी है। किन्तु यहां हम यह संकेत कर देना चाहते हैं कि आज कल जहां हम लोग अन्य दिशाओंमें पश्चिमका अन्धानुकरण करते हैं वहां इस दिशामें भी हम लोग उसी ओर बढ़ रहे हैं। अनुकरण तो यों भी बुरा है किन्तु यह अनुकरण तो और भी भी बुरा है। जहां तक हम लोग इस क्षेत्रमें बढ़े हैं वह इतना घातक है कि उसका परिणाम नित्य ही हमारी आंखोंके सामने आ रहा है। यूरोप और भारतमें महान अन्तर है। देश, काला-दिका विचार यदि छोड़ दिया जाये तब भी तो सांस्कृतिक अन्तर असाधारण है। किसी बातका मेल ही नहीं अतः आवश्यकता उधरसे विमुख होकर अपने देश, तथा अपनी संस्कृतिके अनुरूप शिक्षाका प्रचार स्त्रियोंमें करनेकी है। भारतकी प्राचीन पद्धति इस दृष्टिसे अत्यन्त ही उपयुक्त थी। उसीको आधुनिक रंग देकर यदि उसका प्रचार किया जाये तो हमारे गृहस्थ जीवनकी सफ-लतामें स्वल्प भी संशय नहीं रह जाता।

त्याग किसका और कैसे ?

श्री विष्णुगोपाल शास्त्री, साहित्यरत्न

आँख फोड़ देनेसे देखनेकी हविस नहीं मिट जाती। किसीको मोटी रस्सीसे बांधकर यदि आप जलसे दूर फेक दें तो क्या उसकी प्यासकी तृष्णा मिट जायेगी? क्या वह प्यासा न रहेगा? वासनाकी वस्तुओंको त्याग कर वनवास करनेसे क्या कोई वासनासे अपना पिण्ड छुड़ा सकता है? कदापि नहीं। इनमें-से एक भी सम्भव नहीं है। खपुष्पकी सम्भावनाको सोचना कितनी मूर्खतापूर्ण और हास्या-स्पद बात है। यह बातें आज तक न कभी हुई हैं और न होंगी। फिर जब ऐसी बात है तो विरक्ति किससे और क्यों? यह प्रश्न स्वभावतः ही उठता है। क्या संसारसे विरक्ति संभव है? और फिर संसार छोड़कर कोई जाये भी कहां? भले ही घर छोड़कर बनमें जाना सम्भव हो, पर क्या घर ही संसार होगया? घर संसारका एक अंग है, पर घर संसार नहीं। फिर विरक्त होने वाले, संसारको छोड़नेवाले कितनी बेसमझीकी बातें करते हैं। किसको छोड़कर कौन कहां जाये? छोड़ना परित्याग है और परित्याग भी ऐसा कि फिर उससे कोई सम्बन्ध किसी प्रकारका न रहे। मनसा, वाचा, कर्मणा परित्याग करनेवाला परित्याग की जाने वाली वस्तुसे अलग हो जाये तो त्याग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरक्ति, संन्यास, ठीक है अन्यथा यह ढोंग है, छल है, कपट है और है लोगोंको मूर्ख बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी दुरभिलाषा।

'दिल रंगा नहीं उस रंगमें,
फिर क्या है कपड़े रंगनेमें।'

बात कितनी सच है। कपड़े रंगनेसे क्या लाभ? और फिर कपड़ा रंगा ही क्यों जाये। व्यर्थके लिये रंगका उपयोग करके पैसे क्यों खराब किये जायें? विलायतमें रंगके लिये पैसे भेजनेमें क्या कोई बुद्धिमानी है? एक तो रंग विलायती, दूसरे निरर्थक। लाभके सिवा हानि है। जो कुछ हो सकता है वह यही कि मनुष्य दूसरोंको ठगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि मनमें हों, इन्द्रियोंको उनका चस्का लगा हो और उसको छोड़नेकी प्रवल प्रवृत्ति भी अपने अन्दर न हो तो फिर घरबार छोड़कर वनमें भागनेसे क्या लाभ? जो कुछ हो सकता है वह यही कि यहां उसका अपने साथियोंसे, सजातीयोंसे झगड़ा है तो वनमें जानेसे वन्य पशुओंसे वह द्वेष करेगा, लड़ेगा, झगड़ेगा। यहां आत्मीयोंसे उसका स्नेह सम्बन्ध है, हमजोलियोंसे दोस्ती है, एक दूसरेसे प्रेम है तो वहां वह जङ्गली जानवरोंसे या पशु-पक्षियोंसे प्रेम करेगा। किन्तु यह भी तो भ्रम है। मनुष्य सिंहको देखकर अवश्य डर जायेगा और डरकर चिल्ला उठना कोई कठिन बात नहीं। सांपको साधारण मनुष्य गले नहीं लगा सकता। क्या घर छोड़कर भाग जानेवाला इतर मानव चीतेको बगलमें प्रेम और आदरसे बिठा सकता है? उसको अपने साथ भोजन करा सकता है? ये सब बातें कभी भी हमारे आपके लिये सम्भव नहीं! इन्हें अपने व्यवहारमें हम नहीं ला सकते। तो फिर ऐसी दशामें कपड़े रंगकर वनवासी होनेसे क्या लाभ? सिवाय इसके कि आप स्वयं तकलीफ सहें और दूसरोंको अपने आचरणसे तकलीफ दें और कोई बात होनी जानी नहीं। जो मानव अपनी स्त्री से, अपने पुत्रसे, अपने बन्धु-बान्धवोंसे, अपने परिजनोंसे प्रेम नहीं कर सकता, उनके लिये सहानुभूतिपूर्ण भाव नहीं रख सकता, वह क्या कभी—अखिल विश्वसे—या अखिल विश्वमें घट-घट व्याप्त उसके स्वामीसे—प्रेम कर सकता है? प्रेमको, स्नेहको, हृदयकी कोमल मधुर भावनाओंको तो वह ठुकराकर भाग चला, वनवासी होनेका उसका मन हुआ तो फिर वह किस प्रकार प्रेमी हो सकता है? यह सब विडम्बना है, छल है, आत्म-प्रतारणा है। सबसे उत्तम कर्मक्षेत्र तो अपना घर है। कायर घरसे डरकर भाग जाता है वीरोंके सम्मुख पलायनको निकृष्ट और निन्दनीय कर्म गिना जाता है। घर एक तीव्र शस्त्र है जिसका आश्रय लेकर आप इस मायामय विश्वकी विविध प्रतिकूल शक्तियोंसे युद्ध कर सकते हैं। वीर, बुद्धिमान मनुष्य घबराकर, डर कर भागते नहीं; वरन् वीरता और धीरतासे वे इसका सामना करते हैं और निर्भीकतापूर्वक चलकर इस समरमें विजय लाभ करते हैं तथा मूर्ख और कायर इस शस्त्रकी तीक्ष्ण धारसे जखमी होकर गिर पड़ते हैं। जैसे एक कुशल चिकित्सक विषको भी रसायनमें परिणत कर देता है तथा रोगीको सेवन कराकर जीवनदान कर देता है वैसे ही चतुर व्यक्ति काम, क्रोध, लोभादि जैसे भयंकर विषयोंको उपयोगी बनाकर अपना प्रयोजन सिद्ध करता है तथा अपने जीवनको सफल करता है। रूप विष नहीं है, प्रेम डंक मारनेवाला जन्तु नहीं और न धन विषधर सर्प ही है। बन्धु-बान्धव, स्त्री, पुत्र हिंस्र जीव नहीं हैं। फिर भी न जाने क्यों लोग बिना विचारे इनका परित्याग कर देते हैं। कितनी बड़ी भूल है। इन लोगोंको मालूम होना चाहिये कि माता ही सर्वप्रथम ज्ञानगुरु है, पिता कर्मगुरु है, स्त्री प्रेमगुरु है और सन्तान कर्तव्यगुरु है। व्यवहारकी शिक्षा पारिवारिक जहांसे मिलती है, धर्मकी पड़ोसियोंसे और आचारकी मित्रोंसे। भला इस गुरुमण्डलीका, इस शिष्ट समुदायका परित्याग कर मूढ़ मानव बन-बन खाक छानना चाहता है। क्या विचित्र बुद्धि है! संसारमें वह जब उत्पन्न हुआ है तो उसे संसारमें रहकर कर्म करना चाहिये, कर्मयोगकी दीक्षा लेनी चाहिये, मायासे बचना चाहिये। मायाके परदेको भेदकर इसके उस पार जाने और ब्रह्मको पहचाननेकी क्षमता रखनी चाहिये। संसारमें रह कर प्राणिमात्रकी सेवाको ही अपना परम धर्म और परम कर्तव्य समझना चाहिये। इस संसारमें उत्पन्न होनेवाला जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्दी है। बन्दी बन्धनमें रहता है और जीव मायाके पाशमें आबद्ध होकर ही जन्म लेता है।. फिर वह बन्दी, कैदी ही तो हुआ। कैदीको तो केवल कर्म करनेका ही अधिकार प्राप्त है। वह भाग कैसे सकता है? अपनी जीवन-प्रणालीको त्याग सकनेकी क्षमता भी. तो उसको नहीं प्राप्त है। फिर उसके भागनेका रहस्य क्या है? वह क्यों भागता है? यह तो उसकी भूल है जो अपनी स्थितिको वह नहीं समझता है। वह मालिक तो नहीं! फिर उसका यह भागत्यागका कर्म क्या गैर कानूनी नहीं हुआ? क्या वह कानूनन दण्डनीय नहीं हुआ? जब ऐसी बात है तो वह क्यों भागना चाहता है? यह तो घोर कृतघ्नता उस शक्तिके प्रति है जिसने जन्म देकर इस संसारमें कर्म करके मोक्ष प्राप्त करनेके लिये भेजा है। वास्तवमें कर्म करनेके लिये ही इस संसारमें मनुष्य योनि मिलती है। यदि इस अवसरको मनुष्य अपनी मूर्खतासे निकल जाने देता है तो उसकी यह बड़ी भूल तो है ही बल्कि यह कहा जा सकता है कि उसने घोर पाप किया जो कर्मोंसे घबराकर संसार छोड़कर भाग गया। और फिर कर्म छूटते भी नहीं। खाना, पीना, उठना, बैठना, सोना, सांस लेना आदि सभी कर्म हैं। जबतक मनुष्य जीवित रहता है, किसी न किसी रूपमें उसको कर्म करना पड़ता है, चाहे कर भी वह मुक्त नहीं हो सकता। नैष्कर्म संभव नहीं है। फिर यह सब कर्मत्यागकी बातें क्यों? संसारसे भागनेकी अभिलाषा और तदनुरूप आचरणका कारण क्या? केवल मनुष्यकी भ्रान्ति! यदि मनुष्य सुख और शांतिकी आवश्यकताका अनुभव करता है तो उसके लिये उद्योग करना चाहिये। निरुद्यमी होनेसे तो कुछ प्राप्त नहीं होता। अतः शांति—जो जीवनका परम लक्ष्य है—प्राप्त करनेके लिये संसारमें, घरमें, कर्मक्षेत्रमें रह कर ही उद्योग करना चाहिये। त्याग और संन्याससे न तो कुछ लाभ ही है और न वह संभव ही है। त्याग तो केवल दुष्प्रवृत्तियोंका करना चाहिये और वही अपेक्षित भी है।

वेदान्त-रहस्य

श्रीस्वामी रामाश्रमजी परमहंस

एक नास्तिक चार्वाकके अनुयायिओंको छोड़कर, प्रायः हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी मजहब वाले किसी न किसी रूपमें ईश्वरको मानते ही हैं और सभीका यह कथन है कि ईश्वरसे प्रेम करो, उसीको पहचानो, उसीको प्राप्त करो, वही तुम्हें सुख देगा, उसके ही जानने पर तुम्हारे सम्पूर्ण दुःख दूर हो जायेंगे और तुम परमानन्दपदको प्राप्त हो जाओगे·········इत्यादि।

इनमें एक वेदान्त सम्प्रदाय भी है, जो अनादिकालसे चला आ रहा है। उसका कथन है कि परमतत्त्व एक ब्रह्म ही है। उसके सिवा कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है, अपितु सबकुछ ब्रह्मरूप ही है। जबतक जीवकी भावनामें परमात्माके अतिरिक्त किसी और ही पदार्थका अस्तित्व बना रहेगा, वह जगत् अथवा अपनेको ईश्वरसे भिन्न समझता रहेगा, तबतक जन्म-मरणके चक्करसे छूट ही न सकेगा। उसके दुःखोंका नाश भी न हो सकेगा। इसलिये जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि दुःखोंसे छूटने और पूर्ण सत्य सुखको पानेके लिये अपने सहित जगतको ब्रह्म ही जानना होगा। जगतके हर एक पदार्थमें अपने ही अखण्ड रूपका अनुभव होगा; भूत, वर्तमान भविष्य तथा इनसे भी परे अपने अविनाशी स्वरूपकी ही सत्य सत्ताको समझना होगा।

सृष्टि तीन प्रकारकी मानी गयी है—एक आरम्भक, दूसरी परिणामी और तीसरी विवर्त्तीय। इनमेंसे पहला सिद्धान्त आरम्भवाद कहलाता है, जिसे नैयायिक मानते हैं। दूसरेको परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णामवाद कहते हैं, इस पर सांख्यवाले अपना दावा रखते हैं। और तीसरा विवर्तवाद के नामसे प्रसिद्ध है, इसे वेदान्तने अपनाया है।

विवर्तवादी वेदान्त कहता है कि जगत्‌की सृष्टि शून्यसे तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि कहीं भी शून्य, असत् या अभावसे सृष्टि नहीं देखी जाती। क्या आकाशमें स्वतः सृष्टि होती है? आज तक तो किसीने भी वन्ध्या पुत्र नहीं देखा। जहाँ मूल कारण ही न रहेगा, वहाँ कार्य कैसे होगा? इसलिये जगत्‌का कुछ मूल कारण होना चाहिये; तो क्या इसका मूल कारण जड़ पदार्थ हो सकता है? कदापि नहीं, क्योंकि यह बात तो एक बालक भी जानता है कि जड़ पदार्थ किसी चैतन्यके ही बनानेसे बनता है। क्या घड़ेको कुम्हार नहीं बनाता? जड़ रथको एक चेतन बढ़ई ही तो बनाता है। इतना ही नहीं वरन् जड़का प्रवर्त्तक (प्रेरक) भी चैतन्य ही होता है, जैसे रथको चलानेवाले सारथी और घोड़े होते हैं।

सृष्टिपर ध्यान देनेसे तो यही पता चलता है कि यह किसी अलौकिक विचित्र कारीगरकी बनायी हुई है। कहिये, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पांच तत्वोंको क्या आपने बनाया है? क्या चांद, सूर्य, तारे आदि आपके रचे हुए हैं? कभी नहीं, यह सब काम किसी सर्वज्ञ सामर्थ्यशाली-के बिना हो ही नहीं सकते। नियत समय पर चन्द्रमा और सूर्यका उदय होना; पल, घड़ी, पहर, बार, मास, अयन, वर्ष आदिके सिलसिलेका न बिगड़ना; समय-समय पर ऋतुओं एवं मौसिमोंका बदलना; यथाकाल वृक्ष, लता, अन्न, पुष्प आदिमें पत्ते, फूल, फलादिकोंका लगना; यहां तक कि सृष्टि प्रलयका भी नियुक्त समय पर ही होना; भला किसी महान् शासकके बिना कैसे हो सकता है। सचमुच ही इसके लिये एकमात्र जड़ प्रकृति या केवल जड़ परमाणुओंको कारण बतलाना नितान्त बालकपन है, अज्ञता है, मूर्खता है। इसके लिये तो अवश्यमेव कोई सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी एवं चैतन्य नियन्ताको ही होना चाहिये। आप कह सकते हैं कि ऐसा कौन हो सकता है? ऐसा एकमात्र वेदान्तियोंका ईश्वर ही हो सकता है। इस पर आप कहेंगे कि वेदान्ती तो ईश्वर (ब्रह्म) को निर्गुण मानते हैं, उनके निर्गुण ईश्वरमें ये सब गुण कैसे घट सकते हैं किन्तु उसका उत्तर यह है कि वेदान्ती विवर्त्तवादको मानते हैं। इस विवर्त्तवादके अनुसार चैतन्य ईश्वर-में सब कुछ कल्पित माना गया है। विवर्त्तका अर्थ ही यह होता है कि किसी पदार्थकी प्रतीति दूसरे रूपमें हो जाने पर भी उसका अभाव न हो, उसके स्वरूपमें रंच मात्र भी अन्तर न पड़े। जैसे, जब आकाशमें नीलिमा, तम्बू या कराह दिखलायी देता है, तब क्या आकाश सचमुच रूपवान या विकारी हो जाता है या उसकी असंगतामें अन्तर पड़ जाता है? इस प्रकार वेदान्तियोंके ईश्वरमें कितने ही गुणोंका आरोप कीजिये, उसमें अनेक ब्रह्माण्डोंकी कल्पना कर डालिये, उसका कुछ भी नहीं बिगड़नेका; वह तो निरवयव, असङ्ग एवं अनन्त ही रहेगा।

कई एक पदार्थोंके परस्पर मिलनेसे सृष्टि होती है, इसे 'आरम्भवाद' कहते हैं, और किसी पदार्थका अपने पहिले रूप को छोड़कर दूसरे रूपमें हो जाना ही 'परिणामवाद' का मर्म कहलाता है। अब विचार कीजिये कि वस्तुओंका पारस्परिक मेल अथवा एक रूपसे दूसरे रूपमें हो जाना बिना सावयव पदार्थोंके कैसे हो सकता है? यह तो रूप तथा अङ्गवाले पदर्थोंमें ही हो सकता है। क्या निरवयव आकाशका किसीके साथ कभी संयोग हुआ है? अथवा उसमें रूपान्तर हुआ है? फिर ऐसे संयोगवान तथा परिणामी पदार्थ तो जड़ तथा विनाशी होते हैं और जड़ तथा विनाशी वस्तुओंको चेतनता एवं शक्ति देनेके लिये किसी चैतन्य और सत्य पदार्थकी ही आवश्यकता पड़ती है, तब परिणामवाद और आरम्भवाद स्वतन्त्र रूपमें कैसे चल सकते हैं? इसीसे तो ये मूल-रहित और अधूरे ही रह जाते हैं।

अब जिज्ञासुओंमें यह शंका स्वाभाविक रूपमें ही उठती है कि जब एक ही निरवयव, असंग तथा अपरिच्छिन्न परमात्मा है, तो उसमेंसे जगत् आ कहां गया? या वह जगत् रूप से क्यों दिखलायी देने लगा? अच्छा इसे आप लोग ध्यान देकर सुनें। यह विषय आध्यात्मिक है, बहुत गूढ़ है, अति गहन है, बिना शुद्ध हृदयके, बिना चित्तकी एकाग्रताके यह समझमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं आता। यही कारण है कि बहिर्मुख वृत्तिवाले विषयी द्वैत-वादी, विशेषकर पाश्चात्य लोग इससे लाखों कोस दूर रहते हैं, आध्यात्मिक चर्चाके सुनते ही उनका माथा ठनकने लगता है। इसके रहस्यके समझमें न आनेसे ही वे इसका रसास्वादन नहीं कर सकते, और इसको शुष्कवाद, कोरा ज्ञान, नीरस या कल्पित कह डालते हैं। वे बेचारे करें तो क्या करें। उनके सिद्धान्त और इस सिद्धान्तमें बहुत अन्तर है। कहां तो यहां विषय-त्याग और कहां वहां विलासिता, कहां तो यहां अन्तर्मुखी वृत्ति कहां वहां बाह्यवृत्ति, यहां तो देहाभिमानको छोड़ना है, और वहां देहाभिमानको ही बढ़ाना है, यहां तो सुखको आत्मामें ढूंढ़ना है और वहां संसारमें, यहां जीते जी मुक्त होना है, किन्तु वहां मरकर मुक्ति पाना है। जहां यहां किसीसे उधार नहीं लिया जाता, किसी भी लोकमें किसीका मुख नहीं ताकना पड़ता, वरन् यहां स्वतः सर्व स्वतन्त्र सम्राट होना है, वहां उनका सिद्धान्त बिलकुल विपरीत है।

अनन्त अविनाशी निराकार चैतन्यदेवके आश्रयमें अनादि कालसे एक शक्ति रहती है उस शक्तिको माया, अज्ञान अथवा अविद्या कहते हैं। उस शक्तिके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह क्या है? कैसी है? क्यों है? कबसे है? इत्यादि। इसलिये वह अचिन्त्य नामसे पुकारी जाती है। चूंकि ब्रह्म सर्वत्र है, अतएव उसकी शक्ति भी हरेक जगह भरी पड़ी है। वह जगतकी सभी वस्तुओंमें पायी जाती है। हम देखते हैं कि मिट्टीमें घड़ेके बननेकी शक्ति, वृक्षों वनस्पतियों तथा लताओं इत्यादिमें अंकुरने, फूलने और फलनेकी शक्ति एवं आगमें जलनेकी शक्ति सन्निहित रहती है। तब क्या ये शक्तियां इन पदार्थोंसे भिन्न हैं? कदापि नहीं, किसीने पदार्थके आश्रयको छोड़कर किसी भी शक्तिको आजतक स्वतन्त्र और पृथक् नहीं देखा। तो क्या शक्ति पदार्थसे अभिन्न है? अर्थात् क्या पदार्थको ही हम शक्ति कह सकते हैं? नहीं, यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि प्रत्येक मनुष्यमें कार्य करनेकी काफी शक्ति रहती है तो उसको पुरुष कहा जाये या शक्ति? इसपर सभी यह कह उठेंगे कि मैं भी पुरुष हूं। अब कहिये शक्ति पुरुषसे कहां भिन्न रह गयी?

अब मैं एक और दृष्टान्त अग्निका देता हूं इससे अचिन्त्य शक्तिका विषय ठीक ठीक समझमें आ जायेगा। जब तक अग्नि किसी पदार्थको जलाती नहीं है, तबतक उसकी जलानेवाली शक्तिका पता ही नहीं रहता कि वह कहां है? जब तक तो वह अग्निमें मिल-जुलकर अग्निरूपमें ही रहती है, परन्तु जब उस अग्निसे किसी पदार्थका संयोग हो जाता है और वह वस्तु जलने लगती है तब यह मालूम हो जाता है कि इस अग्निमें जलानेकी शक्ति है, परन्तु जब कोई उस अग्नि की शक्तिको मणि-मंत्रादिसे मार देता है, तब वह जला नहीं सकती। तो क्या शक्तिके अभावसे उस अग्निका भी अभाव हो जाता है? नहीं-नहीं, वह तो ज्योंकी त्यों लह-लहाती हुई दिखायी देती है, तब हम शक्तिको अग्निसे भिन्न क्यों न समझें? यदि वह शक्ति अग्निरूप ही होती तो उसके अभावसे अग्निका भी अभाव हो जाता। इससे क्या वह शक्ति अभाव रूपा है? नहीं, वह अभावरूपा कभी हो ही नहीं सकती, क्योंकि यदि उसका अभाव हो गया होता तो मणि-मन्त्रादिके प्रतिबन्धोंके दूर होते ही वह फिर जलाने लगती अतएव वह अभावरूपा नहीं हो सकती।

अब यहांपर यह शंका सहज ही उठ सकती है कि जब वह शक्ति शक्तिमानसे भिन्न नहीं और अभिन्न भी नहीं, तथा जब वह न तो भावरूपा है और न अभावरूपा, तब वह है कैसी? इसके उत्तरमें हम पहले ही कह चुके हैं कि यह शक्ति अनिर्वाच्य है। जब हम उसे याद करते हैं, या उसे ढूंढ़ने लगते हैं, तभी वह प्रतीत होने लगती है। उसमें खूबी यह है कि उसे हम जिस रूपमें ढूढ़ते हैं, वह उसी रूपमें हमें मिल जाती है। मान लीजिये कि इस समय हम अपनी चित्तवृत्तिको सब ओरसे हटाकर एक पुस्तककी ओर लगाये हुए हैं; अर्थात् उस पुस्तकको ही बड़े ध्यानसे देख रहे हैं; तो बताइये, इस समय हमारे लिये उस पुस्तकके सिवा और संसार रह ही कहां गया है? जब हम अपनेको मनुष्यके रूपमें देखना चाहते हैं, तब मनुष्यरूपमें पाते हैं। जब हम स्वर्गकी खोजमें चलते हैं तब वह शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लिये किसी न किसी दिन स्वर्गरूपमें ही आ मिलती है। आप थोड़ी देरके लिये अपने चित्तमें शक्ति (माया), जीव, जगत् या किसी चीजकी कल्पना मत उठने दीजिये, तो आप देखेंगे कि अब आपके लिये कुछ भी नहीं रह गया, बल्कि एकदम प्रलय हो गया। क्या अब सचमुच कुछ नहीं है ? आप कहेंगे कि हां, अब तो कल्पनाके अभावसे वस्तुतः कुछ भी नहीं रह गया। हम कहते हैं कि उस प्रकारकी सम्भावना ही बड़ी भारी भूल है। अब भी एक तत्त्व ऐसा शेष रह गया है जो कल्पनातीत है। सारे कल्पित पदार्थ मनकी कल्पनासे ही बने थे, कल्पनाके शान्त होते ही वे भी वैसे ही शान्त हो गये, जैसे वायुके बन्द होते ही जल-तरंग शांत हो जाते हैं, जैसे वाणीके विश्राम लेते ही वक्तृताका पता नहीं चलता, अथवा पुरुषके जागते ही स्वप्नके पदार्थ विलीन हो जाते हैं। परन्तु जो वस्तु कल्पनासे परे है, उसका अभाव कब होनेका है ? वह तो त्रिकालाबाध्य है, अचल है, अविनाशी है, पूर्ण है, शान्त है, वह आपकी आत्मा है, सच्चा स्वरूप है। यदि आप पूछिये कि यह कैसे ? तो सुनिये। आपने ज्योंही सम्पूर्ण कल्पनाओंको रोक दिया था, ज्योंही यह मालूम हुआ था कि 'अब कुछ भी नहीं है' तब इस 'कुछ नहीं है' का ज्ञान किसने किया ? यह किसने जाना कि 'अब कुछ नहीं है ?' वह आत्मतत्व जिसका वर्णन हुआ है, उसीने जाना और वही आप हैं। यदि वहां पर आप न रहे होते तो सबके अभावका ज्ञान कौन करता। देखिये सर्वाभावके हो जानेपर भी आपका अभाव नहीं हुआ, इसी लिये आपका स्वरूप सत्य ठहरा था तथा उस समय समस्त कल्पनाओंके अभावके हो जानेपर सूर्य-चन्द्रादिके प्रकाश भी न रह गये थे। वहां तो ये चर्म-नेत्र भी न थे, बल्कि आपने स्वयं अपने स्वरूपके प्रकाशमें ही पदार्थोंके अभावको देखा और जाना था। अतः आप स्वयं प्रकाश—चैतन्य स्वरूप हैं और उस समय किसी भी पदार्थके न रहनेके कारण आपको सुख-दुःख देनेवाला कोई दूसरा न था। अपितु उस समय वहां आप ही समस्त दुखोंसे रहित हो आनन्द रूपसे विराजमान थे, अतएव आपका ही वह स्वरूप सच्चिदानन्द है। कल्पनातीतकी अवस्था बड़ी ही निराली है। वह तो अलौकिक है, वही आत्मन्तिक सुख अथवा मुक्तावस्था है। उसकी प्राप्ति अनेक जन्मोंके दृढ़ वैराग्य तथा अभ्याससे ही होती है। अब आप पूछेंगे कि कल्पनाके शान्त होते ही जब सारे पदार्थोंका अभाव हो गया था तब उस अवस्थामें मेरी वह कल्पनाशक्ति वहां चली गयी थी ? जिसने यह प्रपञ्च रचा था। उस शक्तिने उस समय आपमें ही लय होकर आपसे अभिन्नता प्राप्त कर ली थी।

अचिन्त्य शक्तिका जो कार्य होता है वह व्यक्त कहलाता है, क्योंकि वह इन्द्रियोंका विषय हो जाता है और वह शक्ति इन्द्रियातीत होनेसे स्वयं अव्यक्त है तथा इन दोनों—अव्यक्त और व्यक्तका अधिष्ठान रूप जो ब्रह्म है, वही आधार कहलाता है। यह नियम संसारके हरेक पदार्थमें पाया जाता है। एक घड़ेको ही ले लीजिये। मिट्टीका कार्य जो घड़ा है, वह तो व्यक्त है, और मिट्टीमें घड़ेके बननेकी जो शक्ति है, वह अव्यक्त है—छिपी हुई है, एवं मिट्टीके सहित मिट्टी उपहित-मिट्टीमें का व्याप्त-चेतन आधार हैं। इसी प्रकार निर्गुण निराकार ब्रह्म भी है और यही वेदान्तका रहस्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषःपानका हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव

पं० लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय

लगभग चार बजे सवेरे उठ बैठे और शौचादिसे निवृत्त होनेसे पहले ही उषःपान कर ले। लेकिन पहले-पहल चार बजे उठनेमें कुछ असुविधा हो तो सवेरे सूर्योदयसे पहले तो उषःपान अवश्य ही कर ले। किन्तु इस बातका ध्यान रखे कि मल-मूत्रकी हाजत रफा करनेसे पहले ही इसे कर ले।

इसको आरम्भ करनेके लिये अच्छा समय मेरी समझमें फागुन--चैत्रका है। क्योंकि उक्त महीनोंमें भारतमें कड़ाकेकी ठंढ नहीं पड़ती। फलतः तड़के खाली पेट पानी पीनेकी हिम्मत हो जाती है। बिस्तरेसे उठते ही दांतोंको उँगलीसे रगड़कर दो-तीन बार खूब कुल्ला करे। फिर अंगूठेसे जीभको मलकर इस तरह साफ कर दे कि गलेमें, नीचे, ऊपर या अगल-बगलमें कफ वगैरह न रह जाये। नाकके नथुनोंको भी पानीसे अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये। अगर इस तरह सफाई न की जायेगी तो पानीके साथ यह मल भी पेटमें उतर जायेगा और जिस मलको गलेकी राह बाहर निकाल देनेके लिये पेटने बाहर भेजा है वह फिर वहीं पहुंचकर उसकी कठिनाईको बढ़ायेगा।

इस क्रियाका आरम्भ दो-एक दिन तक मुंहसे पानी पी कर ही करे। जब यह बर्दाश्त हो जाये तब फिर नाकसे पीनेका अभ्यास करे। ऐसे गिलासमें जिसके किनारे पतले हों पानी भर ले; फिर उकरूं बैठकर या जिस तरह बैठनेमें सुभीता हो उस तरह बैठकर मुंहको जरा ऊंचा करे और गिलासके किनारेको बायें नथनेसे लगाये। अब पानीको धीरे-धीरे नाककी राह भीतर जाने दे। इस पानीको मुंहके रास्ते बाहर निकाल दे। इससे भी मुंह और नाककी सफाई हो जायेगी। फिर सिरको कुछ पीछेकी ओर झुकाकर और गिलासका किनारा बायें नथनेसे लगाकर उसमें पानी धीरे-धीरे आने दे और गलेसे घूंट खींचता जाये। इस प्रकार पानी अपने आप भीतर जाने लगेगा। लेकिन नाकसे पानीको श्वासकी सहायतासे खींचना मना है। उसे अपनी मर्जीसे धीरे-धीरे भीतर जाने दे। अगर न जाये तो जबर्दस्ती न करे, नहीं तो पानीका ठसका लग सकता है।

हलका जुकाम होने पर गलेमें और कौवेके आसपास जैसा लगता है, यानी एक प्रकारकी बेचैनी-सी मालूम होती है, वही हालत पहले दिन नाकसे पानी पीने पर कुछ घण्टों तक बनी रहती है। आंखोंमें भी आंसू भर आते हैं। कुछ झनझनाहट-सी भी हो सकती है। लेकिन इससे घबराना नहीं चाहिये। आरम्भमें इस क्रियाके करने पर मस्तकमें एक प्रकारकी स्फूर्ति मालूम पड़ती है। किन्तु एक दिनके अभ्यासके बाद न तो आखोंमें आंसू आयेंगे और न हलके जुकामकी-सी बेचैनी ही गलेके नीचे मालूम होगी।

पहले दिन दो तोलेसे अधिक पानी न पिये। इसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाये और उतनी अधिक तक बढ़ा ले जाये जितनीसे उसे लाभ हो, यानी जो उसकी प्रकृतिके अनुकूल हो। पुस्तकमें तो इसकी मात्रा ८० तोले यानी एक सेर तक लिखी है। वैद्यकके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाशमें इसका परिमाण २४ तोले लिखा है; परन्तु यह प्रत्येक व्यक्तिकी प्रकृति पर निर्भर है कि उसे कितना पानी लाभ पहुंचायेगा। पानीकी मात्रा हर हफ्ते एक तोलेके हिसाबसे बढ़ाना ठीक होगा। पानीको तौलनेकी जरूरत नहीं। बर्तन ही से पानीका लगभग वजन मालूम हो जाता है। हां, पानीके साथ पेटमें हवा भी जाती है, इस कारण डकारें बहुत आती हैं; इससे घबराना न चाहिये।

पानी पी लेने पर पेशाब कर डाले। इस दशामें जोरसे और साफ पेशाब होगा। टट्टीकी हाजत होने पर उसमें भी यही बात पायी जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रातको सोते समय बिस्तरके पास ही मंजे हुए लोटेमें छना हुआ पानी रख लेना चाहिये। लोटेका मुंह ढका रहे ताकि उसमें कुछ गिरने न पाये। अगर लोटा तांबेका हो तो और भी अच्छा है। बिस्तरके पास रख लेनेमें यह सुभीता है कि तड़के पानी पीनेके समय इधर-उधर व्यर्थ समय गंवाना नहीं पड़ता। पर बिस्तरके इतने नजदीक भी न रखे कि रातको असावधानीसे हाथ-पैर लगनेसे पानी गिर कर फैल जाये।

पानी मीठा और साफ होना चाहिये। ऐसे कुएं या बावलीका न हो जिसमें पत्तियां गिरकर सड़ती हों, बाहरसे गन्दगी पहुंचती हो अथवा जिसमें हवा और धूपकी पहुंच न होती हो। पीनेका पानी न तो बहुत ठंडा हो और न गरम। बरसातमें नदीका पानी पीनेको न ले। यदि साफ पानी न मिले तो बरसाती पानीको बर्तनमें रखकर या तो थोड़ी सी फिटकरी डाल दे जिससे कुछ देरमें मैल नीचे बैठ जाने पर छान लेनेसे पानी साफ हो जायेगा। अथवा निर्मलीको घिसकर मिला देनेसे यही काम हो जायेगा।

कुछ लोगोंकी राय है कि उषःपान करके एक नींद सो लेने से पिया हुआ पानी मलको ढीला कर देता है, जिससे दस्त खुलासा होता है और चित्त प्रसन्न बना रहता है। किन्तु ऐसा करनेकी सबके लिये आवश्यकता नहीं है। हां, जिनके सिरमें दर्द हो, अजीर्ण हो या पेटकी कुछ शिकायत हो; उनको ऐसा करनेसे लाभ हो सकता है। किन्तु जिन्हें ऐसी कोई शिकायत न हो वे उषःपान करके अगर टहलनेको निकल जायें तो उनको बहुत फायदा हो सकता है।

कोई-कोई कहते हैं कि बड़े तड़के खाली पेट पानी पी लेनेसे रक्त परिणामसे अधिक पतला हो जायेगा। फलतः पाचक रस भी पतला हो जायेगा।

असलमें इस ढङ्गकी बातें ऐसे लोग किया करते हैं जिन्हें पानीके गुणोंका ठीक-ठीक पता नहीं है। पेटमें ऐसी आग कहां पर जल रही है जो पानी गिरनेसे ठण्डी हो जायेगी और जिससे अग्निमान्द्य अथवा बहुमूत्र आदि रोग हो जायेंगे। ऐसे बहुतसे लोगोंके दर्शन मुझे हुए हैं जो न जाने कबसे ठण्डा पानी पिया करते थे और इसी की बदौलत जिन्होंने बीमारियोंसे बहुत कुछ बचे रहकर खासी उम्र पायी। अतएव ऐसे लोगोंकी बातों-पर विश्वास करना ठीक नहीं, जो उषःपानको हानिकारक बतलाते हैं।

उषःपान करना आरम्भ कर देने पर दस्त खुलासा होने लगता है, भूख खुलकर लगती है, पेशाब साफ होता है और खासी नींद आती है। यदि उषःपानका आरम्भ करनेके बाद दस-पन्द्रह दिनमें ये लक्षण न मालूम पड़ें तो समझना चाहिये कि उस व्यक्तिके लिये यह अनुकूल नहीं है। अतएव उसे इस-को छोड़ देना चाहिये।

इसलिये ऐसे मरीजोंको उषःपानसे नहीं होता, जिन लोगों-की सर्द तासीर हो अथवा जिनके फेफड़े कमजोर हों उन्हें उषः-पान समझ-बूझकर करना चाहिये। जुलाब लेनेकी हालतमें, आँवकी बीमारीमें, जब घाव पकनेवाला हो उस दशामें, तथा हिचकी, कफ और बातकी बीमारी, न्यूमोनिया, क्षय आदिमें उषःपानका निषेध किया गया है।

यदि उषःपान करनेवाला बीचमें एकाध दिन नागा कर दे, यानी पानी न पिये तो विशेष हानिकी आशंका नहीं। लेकिन कोई इसे छोड़ना चाहे तो एकाएक न छोड़ बैठे। छोड़नेके लिये उसे धीरे-धीरे पानीकी मात्रा क्रमशः घटानी चाहिये। जब घटाते घटाते बहुत थोड़े पर आ जाये तब एक-एक दो-दो दिनका नागा करनेलग जाये और अन्तमें इसी प्रकार छोड़ दे।

बड़े तड़के पिया गया ठंडा पानी बड़ी अंतड़ियोंको धो डालता है। साथ ही इनके निचले हिस्सेमें उत्तेजना उत्पन्न कर देता है। इससे रुधिराभिसरण शीघ्रतासे होने लगता है। परि-णाम यह होता है कि मलको बाहर निकालनेवाली इन्द्रियां— चमड़ी, मूत्राशय, पसीना उत्पन्न करनेवाले अवयव उत्तेजित होकर अपना काम फुर्तीसे करने लग जाती हैं। यह बात प्रकट है कि पानीमें स्वाभाविक विद्युत है; और रोगोंका नाश करने-की शक्ति उसमें रहती है। इससे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करनेवाले जन्तु, विष आदि नष्ट हो जाते हैं। उल्लिखित विद्युत के प्रभावसे शरीरके सूक्ष्म ज्ञानतन्तुओंके चक्रों पर भी अलौ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किक परिणाम होता है। फलतः बुद्धि प्रखर होकर धारणाशक्ति बढ़ जाती है।

पेटमें जो खुराक बिना पची हुई रह जाती है उसमें 'यूरिया' फास्फेटस और क्षार वगैरह बनते हैं जो स्वास्थ्यके लिये हानिकर हैं। उषःपान करनेसे हानिकारक चीजें पेशाबकी राह बाहर निकल जाती हैं और शरीरका भीतरी भाग धुलकर साफ हो जाता है।

उषःपानसे सबसे अधिक लाभ यही होता है कि मलाशय और मूत्राशय पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है, और पेटके जितने विकार होते हैं; वे प्रायः सब उषःपानसे नाश होने लगते हैं। कहावत भी है कि—

"निन्ने पानी जो पिये, हर्र भूंजि जो खाय।
दूध बियारी जो करे, तिहि घर वैद्य न जाय।"

'निन्ने पानी' से मतलब उषःपानसे ही है। फिर वह नाक द्वारा पिया जाये या मामूली तौरपर मुखके द्वारा पिया जाये। परन्तु यह जलपान उषःकालमें लगभग चार बजे और पांच बजे-के बीच सूर्योदयके पहले, बिना कुछ खाये पिये और पाखाना पेशाब जानेके पहले होना चाहिये।

तत्काल इसका यह लाभ होता है कि पाखाना और पेशाब साफ होने लगता है। पेटके विकारोंमें मन्दाग्नि और मलाव-रोध ये दो मुख्य हैं। मन्दाग्नि हो जानेसे खाया हुआ अन्न हजम नहीं होता; और यदि कुछ हजम भी होता है तो खुश्की और मलावरोधके कारण मल बाहर नहीं निकलता। इससे सिर-में भारीपन, सारे शरीरमें आलस्य और मुंहका जायका बहुत खराब रहता है। उषःपानसे यह शिकायत दूर होने लगती है। क्योंकि प्रातःकाल यदि पेटके अन्दर कुछ बिना पचा हुआ भोजन का अंश रहता है तो वह जलके संयोगसे पच जाता है; क्योंकि चाणक्य नीतिमें भी कहा है:—

"अजीर्णेभेषजंवारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।"

अर्थात् प्रातःकाल यदि कुछ अजीर्ण रह गया है, तो उषः-पानसे वह पच जायेगा; और यदि अजीर्ण नहीं रहा है—अन्न खूब हजम होगया है तो भी उषःपानके जलसे खुश्की दूर हो कर तरावट आयेगी और बलकी वृद्धि होगी। अतएव जीर्ण और अजीर्ण दोनों हालतोंमें उषःपानसे लाभ होता है।

मलावरोधके लिये तो उषःपानसे तुरन्त ही लाभ होता है। उषःपानके बाद ज्योंही दिशा, मैदान जाते हैं, त्योंही दस्त खुलासा हो जाता है। बहुत दिन अजीर्ण और मालावरोध होते रहनेसे बवासीरका दुःखदायक रोग पैदा हो जाता है। उषःपान करनेसे यह रोग भी आराम हो जाता है, क्योंकि प्रातकालके जल-सेवनका प्रभाव पहले आंतोंपर पड़ता है। आंतोंमें जो मल चिपका रहता है, वह उषःपानकी तरावटसे सहज ही में खारिज होने लगता है। हम पहले कह चुके हैं कि बवासीर अजीर्ण और मलबद्धताका रोग है। इसलिये लगातार उषःपान करते रहनेसे यह रोग दूर हो जाता है। परन्तु नित्यप्रति कुछ न कुछ व्यायाम करना जरूर चाहिये, और आहार-विहार संयम रखना चाहिये तभी उषःपानका पूरा पूरा लाभ मालूम होगा।

संग्रहणी, उदर शूल, अम्लपित्त इत्यादि रोगोंमें भी उषः-पानसे लाभ हो सकता है। पर लगातार वर्ष दो वर्ष तक करते रहना चाहिये, किंबहुना इसको जीवनमें एक नित्य-नियम बना लेनेसे कोई भी जठरका रोग नहीं होगा।

मूत्र-विकारोंके लिये भी उषःपान रामबाण है। शरीरमें ताप बढ़ जानेसे कभी कभी पेशाब बहुत थोड़ा थोड़ा होता है, और कई बार जाना पड़ता है। पेशाबमें जलन भी होती है। कभी कभी भोजनका ठीक परिपाक न होनेके कारण सफेद, खड़ियाकी तरह धातु पेशाबके साथ जाती है, और कभी कभी मूत्रके साथ पहले या पीछे, पतला वीर्य भी गिरता है—ये सब विकार उषःपानसे नष्ट होते हैं, क्योंकि प्रातःकालके जलपानका असर मलाशयकी तरह मूत्राशय पर भी होता है और पेशाब साफ होने लगता है। लगातार उषःपान करते रहनेसे पथरी गुर्देका दर्द इत्यादि रोग कभी नहीं होते। मूत्राशयमें मल नहीं बैठने पाता।

नासिकासे विधिवत् उषःपान करते रहनेसे पीनस, नाकसे खून निकलना, शिरकी पीड़ा, जुकाम और खांसी आधाशीशीका दर्द बहुत जल्द दूर हो सकता है परन्तु यदि नासिकासे जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पान न कर सके तो प्रातःकाल मुखके द्वारा जलपान करनेसे भी भी इन रोगोंका नाश होता है।

उषःपानसे मस्तिष्कमें तरावट पहुंचते रहनेके कारण नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है और शरीरमें गरमी रहनेसे नेत्रोंमें जो विकार उत्पन्न हो जाते हैं, वे भी उषःपानसे दूर होते हैं। दृष्टि वृद्धावस्था तक ठीक बनी रहती है।

उषःपानके द्वारा शरीरके सब मलोंकी सफाई ठीक-ठीक होते रहनेके कारण दाद, खाज, कण्ठमाला, अपरस, साधारण कुष्ट, फोड़ा-फुन्सी इत्यादि कुछ नहीं होते। शरीरमें रक्तका संचार ठीक-ठीक होते रहनेसे रक्त नवीन पैदा होता रहता है, और रक्तका विकार मल, मूत्र और पसीनेके द्वारा नियमित रूपसे निकलता रहता है।

कब और क्या खाना चाहिये

पाण्डेय पराशर भट्टाचार्य, साहित्य-आयुर्वेदाचार्य

इस प्रश्नका उत्तर झट दिया जा सकता है—जब भूख लगे तब और जो रुचे सो। पर भूख कब लगती है और रुचता क्या है, इन दोनोंका निर्णय मामूली नहीं। मानवकी शारीरिक अवस्थाएं भिन्न हैं और किसी भी अवस्थापर ऋतु, देश और समाजका प्रभाव पड़ता है। एक ही मनुष्य बाल, तरुण, युवा और वृद्ध होता है। वही धनी, मध्यवित्त तथा निम्नवित्तका भी हो जाता है। इन सभी अवस्थाओंका प्रभाव मनुष्यपर पड़ता है और इनके तर-तमसे मनुष्यकी भूख और रुचिमें भी भेद हो जाया करता है। साथ ही बहुतोंकी भूख स्वादसे और रुचि जीभकी लोलुपतासे सम्बन्ध बनाये बैठी है। म० गान्धी "आरोग्य साधनमें" लिखते हैं—×× **लेकिन यह मानी हुई बात है कि ९९ प्रतिशत मनुष्य केवल स्वादके लिये खाते हैं और वे वैसे स्वादयुक्त भोजनके परिणामको नहीं सोचते। कुछ लोग पाचनशक्तिको बढ़ानेके लिये औषधियोंका सेवन करते हैं, ताकि वे अधिक मात्रामें खा सकें। कुछ लोग तो इतना अधिक भोजन करते हैं कि उल्टी तक करने लग जाते हैं और फिर उसी प्रकारका भोजन करते हैं।** आर्य चिकित्साशास्त्रके आचार्य चरकने रोगोंकी उत्पत्तिका आदिम निदान आलस्य, थकावट और शरीरका मुटापा बताया है। धर्मशास्त्रोंमें ब्रह्मजीवनका प्रथम आधार 'उञ्छ' बताया गया है। जमीनपर पड़े हुए अन्नको चुनकर खानेवाले आदमीके पास सम्पन्नता, आलस्य या मुटापा फटक ही नहीं सकते। धर्मशास्त्रोंके 'उञ्छ' को महर्षि चरकके रोगोत्पत्तिके निदानके साथ मिलान करनेपर मालूम पड़ता है कि प्रारम्भमें लोग जमीनपर पड़े अन्नोंको चुनकर खाते हुए 'साम्य' में थे। पर आगे चलकर उनमें कुछ धूर्त पैदा हुए, जिन्होंने दूसरोंके भी चुने हुए अन्न खाने शुरू किये। अपने हिस्से और श्रमसे ज्यादा खानेसे उन्हें प्रारम्भमें आलस्य और बादमें शरीरपर मोटाई शुरू हुई और आगे चलकर उन्होंने समाजको अनेकानेक रोग भेंट किये।

मानवशरीरका निर्माण पांच धातुओं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशसे हुआ है अर्थात् जिस मानव-पुतलेको हम हंसते, खेलते, प्रेम करते या शासन करते देखते हैं उसमें उक्त पांच धातुओंके अंश मौजूद हैं। साथ ही स्वयं जड़ होते हुए भी उक्त धातुओंने जिस पुतलेका निर्माण किया है वह चेतन है; उसमें गति एवं चेष्टा बराबर हुआ करती है—कभी भी वह गति-शून्य अथवा निश्चेष्ट नहीं रह सकता। यही बात भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको कर्म परित्यागके विरुद्ध उपदेश देते हुए गीतामें **न च कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्**" बतायी थी। ऐसी दशामें, यह तो सबपर प्रकट है कि जो चीज बराबर काममें आती है वह घिसती है। और अगर आगे उससे काम लेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो उस घिसावकी पूर्ति भी बाहरसे करनी पड़ेगी। शरीरके निर्माणमें प्रथम और मुख्य पृथ्वी है, जो ठोस है ; दूसरी चीजें कुछ मूर्त और कतिपय अमूर्त हैं। भोजनमें हम जिन चीजोंका उपयोग करते हैं उनमें बहुतोंमें प्रतिशत ९५ और कुछमें प्रतिशत ७५ पार्थिव भाग है। इससे, काम करनेसे हमारे शरीरका जितना पार्थिव भाग कम होता है उतनेकी पूर्ति भोजनसे हो जाया करती है। वस्तुतः यही भोजनविज्ञानका रहस्य है।

तेज, वायु और आकाशीय भागोंकी कमी भी हमारे शरीरमें पार्थिव एवं जलीय भागोंकी तरह बराबर हुआ करती है और बाहरसे उनकी पूर्ति भी हो जाया करती है पर साधारणतः हम उसका अनुभव नहीं करते। इसीलिये कि ये चीजें हमें अनायास या मुफ्त मिल जाती हैं। मगर शरीरमें इनकी कमीका भी समय-समयपर साधारणसे साधारण आदमीको भी इनकी चाहके रूपमें अनुभव तो हो ही जाता है। अवश्य ही अनायास प्राप्त होनेवाली इन चीजोंका उपयोग भी बुद्धिपूर्वक होना चाहिये। इन प्राकृतिक पदार्थोंका बुद्धिसंगत उपयोग कर मनुष्य दीर्घायु हो सकता है। सूर्यकी रश्मियोंमें अनेक गुण हैं। उनसे शरीरका तेजोंश बढ़ता, शरीरका लावण्य अधिक होता और अनेक व्याधियोंका नाश होता पर आश्विनके सूर्यकी रश्मियां जीवनांशको ही चाट जाती हैं। यही बात दुपहरीकी सूर्यरश्मियोंकी भी है। एक अनुभवी चिकित्सकने लिखा है—

पूतिमांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट्॥

बदबूदार मांस, बूढ़ी स्त्रियां, आश्विनका सूर्य, भात हुआ दही, ब्राह्म मुहूर्तका मैथुन और नींद—ये छः तुरत जीवनशक्तिका नाश करती हैं। इसके विपरीत—

सद्यो मांसं नवान्नं च बालास्त्री क्षीर भोजनम्।
घृतमुष्णोदकस्नानं सद्यः प्राणकराणि षट्॥

तुरतका मांस, नया अन्न, सोलह वर्ष तककी स्त्री,—स्त्रियां नहीं, जैसा कि पहले श्लोकमें आया है,—दुग्धपान, घी और गर्म जलका स्नान—ये छहों चीजें तुरन्त जीवनशक्ति पुष्ट करती हैं।

तेज, वायु और आकाशके सम्बन्धमें ज्यादा वितरण इस प्रकरणसे पूरा सम्बन्ध नहीं खाता। हमें यहां विचार करना पार्थिव भोजनका है। शरीरके भीतर चेतना धातुकी भांति पंचतत्वात्मिका एक प्रकृति बनी हुई है जो बराबर अपनी कमीको हमारे सामने चाह रूपमें प्रकट किया करती है। हम जितनी भी चीजें खाते-पीते हैं वे सभी छः रसोंमें बंटी हुई हैं—मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़ुआ, तीता और कसैला। खाद्यके पांच प्रकार हैं—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोस्य और पेय। रसोंसे शरीरके अवयवोंकी पुष्टि होती, शरीरवर्ती वात-पित्त-कफका शमन होता और रोगोंका नाश होता है। खाद्य प्रकार पाचनसे सम्बन्ध रखते हैं। साथ ही यह भी बताते हैं कि भोजनमें किसके साथ किसका योग होना चाहिये। भात दालके साथ यदि किसी पेयका उपयोग नहीं भी किया जाये तो हर्ज नहीं। कारण, भात नरम और दाल तरल है पर 'ठेकुए' के साथ तो किसी पेयका उपयोग होना ही चाहिये। प्राचीन भारतमें सुरा, शुक्त एवं शौवीरककी ऐसे ही पेयोंमें गिनती होती थी। यूरोपमें पावरोटी-बिस्कुटके साथ बोतलें ढलती ही हैं।

भोजनके बारेमें सदा मध्य मार्गका अवलम्बन करना चाहिये—न ज्यादा खाना चाहिये और न कम। ज्यादा खानेसे अजीर्ण रोग और कम खानेसे बल वीर्यकी क्षति होती है। यही बात रसोंके बारेमें भी है। भोजनकी प्रत्येक चीजमें प्रत्येक रस मौजूद है फिर भी पृथक् पृथक् भी उनका उपभोग होना चाहिये। मगर यहां भी वही बात है। महर्षि चरकने मीठे रसका वर्णन करते हुए, जो शरीरके लिये सर्वोत्तम रस है, अधिक सेवनसे हानियां भी बतायी हैं—**तत्र मधुरो रसः शरीरसात्म्यात् रस-रुधिर-मांस-मेदोऽस्थि-मज्जौजः शुक्राभिवर्द्धनः,आयुष्यः, षडिन्द्रियप्रसादनः बलवर्णकरः, पित्तविष-मारुतघ्नः,तृष्णाप्रशमनः,त्वच्यः,केश्यः, कण्ठ्यः, प्रीणनः, जीवनः, तर्पणः, स्थैर्यकरः ×× एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपयुज्यमानः स्थौल्यं मार्दवमालस्यमतिस्वप्नं, गौरवमनन्नाभिलाषमग्नेदौर्बल्यमास्यकण्ठमांसाभिवृद्धिश्वासकाश प्रतिश्यायात्मक-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतज्वरानाहास्यमाधुर्यवमथुसंज्ञास्वरप्रणाशान्× × आदीनुपजनयति। शरीरमें मांस और मज्जाका बढ़ना आवश्यक है परन्तु उनके लिये जहांतक हो सके स्टार्चेज (Starches) और प्रोटीन फूड्स (Protein Foods) की मात्रा कमसे कम भोजनमें आनी चाहिये। भारतीय दालमें काफी स्टार्च और गेहूं के चोकरदार आटेमें—बाजारू मैदेमें नहीं—और रक्त दागवाले चासे चावलमें बड़ी मात्रामें प्रोटीन मौजूद है। हाथकी चक्कीसे जो मोटा आटा पीसा जाता है, उसके भीतर रहनेवाला विटामिन बी नष्ट नहीं होता और खानेवालेको उसका लाभ मिल जाता है। प्रकृतिने स्वयं गेहूं और छिलकेदार चावलका निर्माण कर उनमें जीवनके तत्त्व रख छोड़े हैं। ये भोजन हर हालतमें निर्दोष हैं पावरोटी या बिस्कुट तो खमीर उठाकर बनाये जाते हैं और अच्छी चीजोंके योग होनेपर भी संस्कारकी वजहसे ये चीजें गुणमें निकम्मी हो जाती हैं। अमेरिकाके डाक्टर (Cougill) ने प्रयोगसे प्रमाणित कर दिया है कि चोकरदार मोटे आटे की रोटी और छिलकेदार चावलका भात पावरोटी वगैरहके मुकाबलेमें १० गुना ज्यादा शक्ति रखता है। दूधमें या दूधसे तैयार हुई दूसरी चीजोंमें तो जीवनके पोषक सभी तत्व मौजूद हैं। घीको तो वेदोंतकने "आयुर्वैघृतम्" कहा है। आयुका दूसरा नाम घी है। मठ्ठेके गुणके बारेमें एक चिकित्सक कहता है :—

> न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्,
> न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
> यथा सुराणाममृतं प्रधानं,
> तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥

मठ्ठा पीनेवाला मनुष्य कभी रोगाक्रान्त नहीं होता। मठ्ठेसे नष्ट किये गये रोग फिर सिर नहीं उठाते। देवताओंके लिये जैसे अमृत है वैसे ही मृत्युलोकमें आदमियोंके लिये मट्ठा है। भोजनमें हरी तरकारियों एवं ताजे तथा सूखे फलोंका भी बड़ा महत्व है। तरकारियां एवं फल जीवनके पोषक अंशको बढ़ाते हैं साथ ही प्रोटीन या स्टार्चकी अनपेक्षित मात्रा उत्पन्न होने नहीं देते। भोजनमें तरकारियोंका योग तो उससे रोकताकी अभिवृद्धि करता है परन्तु खेद है कि भारतका अधिकांश समाज उसे तेल, मसाले और मिरचेके प्रचुर योगसे विकृत बनाकर खाता है। ऐसी तरकारियोंसे लाभ तो होता नहीं, हानि अवश्य हो जाती है।

क्या खाना चाहिये, क्या न खाना चाहिये, किन चीजोंको मिलाकर खानेसे लाभ होता है और किन चीजोंका योग हानिकर है, इसका संक्षिप्त वर्णन भी यहां सम्भव नहीं है। यहां तो भोजनके सम्बन्धमें मुझे साधारण दिग्दर्शन भर कर देना है। भोजनमें मात्राकी बड़ी विशेषता है। भोज्य पदार्थोंकी खानेमें विभिन्न मात्राएं होती हैं। कुछ चीजें भोजनके बाद भी थोड़ी बहुत खायी जा सकती हैं और कुछ चीजें भूख लगनेपर भी कमसे कम खायी जा सकती हैं। यहां चरकका यह आदेश ध्यानमें रखना चाहिये :—

> गुरुपिष्टमयं तस्मात्तण्डुलान् पृथुकानपि।
> न जातु भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद् बुभुक्षितः॥

फिर भी मात्राका निर्देश चरकने यों किया है—

यावद्ध्यस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरा गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्यं भवति।—जितना खाया हुआ ठीक समयपर प्रकृतिमें बिना किसी प्रकारका क्षोभ पैदा किये हुए पच जाये वही भोजनकी मात्रा है। महर्षि चरकने पीपल, नमक और क्षारका भोजनमें ज्यादा प्रयोग मना किया है। समयके प्रभावसे जैसे पत्रशाकोंमें श्रेष्ठ 'जीवन्ती' हमारे भोजनसे बाहर हो गयी वैसे ही पीपलका भी कोई विशिष्टस्थान भोजनमें नहीं रह गया है पर नमक भारतके सभी भागोंमें खाया जाता है और किसी किसी प्रान्तमें क्षार भी। बहुत ज्यादा नमक खाते हुए मैंने बहुतोंको पाया है। ऐसे लोगोंको चरकके निषेधपर ध्यान देना चाहिये। पुराने भारतमें बाह्लीक, सौराष्ट्र, सिन्धु और सुवीर अभिजनोंके निवासी ज्यादा नमक खाते थे। उन्हें दूध भी बिना नमकके नहीं भाता था। फल यह था कि इन प्रान्तवालोंके शरीरके मांस और खून ढीले थे। ये हमेशा उदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते थे और कोई भी कड़ा काम ये कर नहीं सकते थे।

कब खाना चाहिये, यह प्रश्न सचमुच बीहड़ है। इतना गाथा गा जानेके बाद भी इस प्रश्नका समाधान नहीं हो सका। इस प्रश्नका उत्तर मैं चरकके निर्देशके अनुसार देकर प्रस्तुत प्रकरण समाप्त करता हूं।

महर्षि चरक कहते हैं—**जीर्णेऽश्नीयात्। अजीर्णे भुंजानस्य पूर्वस्याहारस्य रसमपरिणतमुत्तरेणाहाररसेनोपसृजन् सर्वान् दोषान् प्रकोपयत्याशु। जीर्णे तु भुंजानस्य स्वस्थानेषु दोषेषु, अग्नौ चोदीर्णे, जातायां च बुभुक्षायां, विवृतेषु च स्रोतसां मुखेषु, चोद्गारे विशुद्धे, हृदये विशुद्धे, वातानुलोम्ये, विसृष्टेषु च वात-मूत्र-पुरीषवेगेषु, जीर्णमभ्यवहृतमाहारजातं सर्वशरीरधातूनप्रदूषयदायुरेवाभिवर्द्धयति केवलम्। तस्माज्जीर्णेऽश्नीयात्।**

पच जानेपर खाना चाहिये। जो आदमी अनपचकी दशामें खाता है उसके पहलेका अपरिपक्व आहार-रस अभी किये जाने वाले आहारके रसके साथ मिलकर सभी दोषोंको तुरत विक्षुब्ध कर देता है। परन्तु जो पचनेपर खाता है उसके दोष अपनी जगह पर रहते हैं, जठराग्नि बढ़ी रहती है, भूख लगी रहती है, स्रोतोंके मुंह खुले रहते हैं, डकार साफ रहती है, हृदय हल्का रहता है, वायु ठीक रहता है, वायु, पेशाब और पाखाना निकल गया होता है। ऐसी हालतमें अपेक्षित पकाया हुआ अन्न खाये जानेपर शरीरके सभी धातुओंको विना दूषित करते हुए आयुको बढ़ता है। इसलिये पच जानेपर खाना चाहिये।

अनात्मवन्तः पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्त हि॥

सुख!

श्री दानविहारीलाल शर्मा, सम्पादक 'नाम 'माहात्म्य'

इस संसारमें सभी सुखकी खोजमें प्रयत्नशील हैं। किन्तु बहुत कम बन्धु सच्चे सुखके स्वरूपसे भिज्ञ हैं। सुख और सच्चा सुख वही है जिससे हमारी आत्मा प्रसन्न हो। आत्मा ही परमात्माका स्वरूप है, यह निर्विवाद है। अतः परमात्मा जिससे प्रसन्न हों, वही परम सुख है। बहुत लोग विषय, भोग, ऐश्वर्य, धनधान्य, सौन्दर्य, आदिमें ही सुखी रहना चाहते हैं। उनका सुख इन्हीं तक सीमित है। किन्तु जिस वस्तुसे अन्तमें दुःख मिले, भला कभी सुखकारी हो सकती है?

सुख दो प्रकारका होता है। एक आलौकिक सुख। स्वस्थ शरीर, आज्ञाकारी पुत्र, सद्गुण सम्पन्न पतिव्रता भार्या, जीविका आदि ही लौकिक सुखके साधन हैं। दूसरा पारलौकिक सुख। इसमें लौकिकताकी गन्ध नहीं है। इस सुखका इच्छुक लोककी किसी वस्तुकी कामना न करता हुआ अपना कार्य करता है। सत्संग, भगवन्नाम-कीर्तन, साधु-सेवा, भगवत्कथा श्रवण, भगवत्-पूजन-भजन आदि ही इसके साधन हैं।

लौकिक सुख प्राप्तिके लिये मनुष्यको व्यायाम, नियमित परिश्रम, दत्तचित्त हो अपने कर्त्तव्यका पालन, विद्योपार्जन, दुर्व्यसनोंका त्याग, गृह-परिवारके स्वजनोंको अच्छी शिक्षा, आदि बातोंके मूलतम सिद्धान्तोंपर भली प्रकार मनन कर उनका ही अवलम्बन लेना चाहिये। प्रत्येक साधनकी विस्तृत विवेचना हमारा लक्ष्य नहीं है और स्थानाभावसे हम केवल इन 'धर्नों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर इंगित मात्र करके ही लौकिक सुखके विषयमें अपने विचार प्रकट करते हैं। इस सुखके साधन सरल हैं। सभी कोई इन्हें कर सकते हैं और इस लोकमें कुछ काल तक सुखी रह सकते हैं, किन्तु लौकिक सुखका अस्तित्व क्षणिक है। टिकाऊ वस्तु नहीं है। इन सबका मूल परिणाम दुःख ही है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

"परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।" (२।१५)

अर्थात्—जिसका परिणाम दुःख है, जो ताप देनेवाला है और जहां गुण-वृतियोंका विरोध रहता है वह सब ही विवेकी पुरुषोंकी दृष्टिमें दुःख रूप ही है।

महर्षिके कथनको स्पष्टतया समझनेके लिये एक उदाहरण दिया जाता है। लौकिक सुखोंमें मनुष्य समझते हैं कि शरीर की स्वस्थता ही प्रमुख है। इस मनुष्य शरीरको ही लीजिये। पंचभूतोंसे बना यह शरीर सदैव ही नाना भांतिके रोगोंका घर है। कहा भी है—"शरीरं रोग मन्दिरं।" अनेक पीड़ायें इसे घेरे रहती हैं। अनेक वर्षों तक नाना प्रकारकी औषधियोंका सेवन करनेपर भी अन्तमें जब यह शरीर भी पंचतत्वमें मिल जाता है, तब सोचिये इसमें सुख कहां? तब सच्चा सुख क्या है तथा क्या करनेसे वह प्राप्त होता है? यह परब्रह्म आनन्द-कन्द श्रीकृष्ण भगवान्ने स्वयं अपने मुखारविन्दसे बतलाया है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थिरश्चलति तत्वतः॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
तं विद्याद्दुःख संयोग वियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥
(गीता ६।२१-२२-२३)

अर्थात्—इन्द्रियोंसे अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित हुआ यह योगी भगवत्स्वरूपसे नहीं चलायमान होता है, और परमेश्वरकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर इससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्-प्राप्ति रूप जिस अवस्थामें स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता है, और जो दुःख-रूप संसारके संयोगसे रहित है, तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये, वह योग न उकताये हुए चित्तसे अर्थात् तत्पर हुए चित्तसे निश्चयपूर्वक करना ही कर्त्तव्य है।

पाठको! हमने यदि मनुष्य योनि भगवत्कृपासे प्राप्त की है, तो उन्हीं अशरणशरण मुकुन्द भगवान्की नित्य उपासना, अनन्य श्रद्धापूर्वक उनके नामका कीर्त्तन, उन्हींका भजन ध्यानादि करके इसे परम सुखमय बनाना चाहिये। इन्द्रिय सुख ही तो परम सुख नहीं है। हास, विलास, परिहास, हिंसा, आदि कुप्रवृत्तियों द्वारा हमें ऐहिक क्षणिक सुख मिलता प्रतीत होता है, किन्तु विज्ञ लोग जानते हैं कि वह वास्तविक सुख नहीं है—सच्चा सुख तो दूसरी ही वस्तु है। सोनेके धोखे हम मुलम्मेपर रीझा करते हैं। अतः इन्द्रियोंको वशमें कर—कामनाओंपर विजय पाकर हमें अपनी परिस्थितिके अनुकूल उत्पन्न कुप्रवृत्तियोंको दमन कर सब प्राणियोंका हित-चिन्तन करते हुए, सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए, अचिन्त्य सुखरूपी परात्पर परब्रह्म अखिलकोटि ब्रह्माण्डनायक आनन्दकन्द श्रीकृष्ण भगवान्का चिरस्मरण करना चाहिये। इसीमें परमसुख है—यही हमारे मानव-जीवनका लक्ष्य और मनुष्य-योनि धारण करने का सच्चा सुख है।

मनु महाराज कहते हैं—

अधार्मिको नरो योहि यस्य चाप्यनृतं धनम्।
हिं सारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुख मेधते॥

अर्थात्—जो मनुष्य अधर्मी है, झूठ ही जिसका धन है, जो दूसरेकी हिंसामें लगा रहता है, वह इस लोकमें भी सुख नहीं पाता।

और भी—

यो बन्धनबधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—जो प्राणियोंको बाँधने, मारने या क्लेश देनेकी इच्छा नहीं करता, वह सब जीवोंका हित चाहनेवाला अत्यन्त ही सुख पाता है।

पारलौकिक सुखके साधन सत्संग, इन्द्रिय-निग्रह, धर्म-शास्त्रोंका श्रद्धापूर्वक अध्ययन, साधु-सेवा, भगवद्भजन, नाम-कीर्तन, एवं भगवदीय-चर्चा हैं। इनका हमको ऐसा कार्यक्रम करना चाहिये कि प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा समय सभीमें लग सके। रात्रिको शयनके समय एकाग्रतासे विचारना चाहिये कि हम अपने बनाये हुए क्रम पर कहाँ तक सफलताके साथ चलें। कुछ दिन तक निरन्तर इस प्रकार अभ्यास करते रहनेपर हम पारलौकिक सुख-साधनोंके अभ्यस्त हो जायँगे, फलतः हमें वह परम-सुख निश्चित ही प्राप्त होगा, जिसे पाकर फिर हमें अन्य किसी वस्तुके पानेकी आकांक्षा नहीं रहेगी।

अन्तमें हमारा सभी प्रेमियोंसे निवेदन है कि सुख तो वास्तवमें भगवानकी शरणके अतिरिक्त किसी वस्तुमें नहीं है, इसे ध्यानपूर्वक समझ कर हमें उक्त सुख-प्राप्तिमें प्रयत्नशील होकर अपना मानव-जीवन सार्थक करना चाहिये।

कर्मका रहस्य

हमें अपने अभावों और अपूर्णताओंके कारण अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। उन अभावों और अपूर्णताओं की पूर्तिके द्वारा दुःखको दूर करने और सुखको पानेके लिये हम निरन्तर कर्ममें लगे रहते हैं किन्तु यदि यही बात है तो हम सुखकर कर्म न करके कर्त्तव्य कर्ममें क्या है—यह जाननेकी और उसी कर्मको करनेकी चेष्टा क्यों करते हैं? क्या सुख-लाभ ही कर्मका चरम उद्देश्य नही है? इसके उत्तरमें संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि कर्मका चरम उद्देश्य सुख-लाभ अवश्य है, किन्तु वह सुख क्षणस्थायी या साधारण सुख नहीं है, वह चिरस्थायी परम सुख है और कर्त्तव्य करनेसे ही वह सुख मिलता है। जो अपूर्णता हमारे दुखोंका कारण है, वह अपूर्णता ही यह नहीं देखने देती कि दूरस्थ किन्तु अस्थायी परम सुख क्या है, और वही हमें निकटस्थ क्षणस्थायी साधारण सुखकी प्राप्तिके लिये सचेष्ट रखती है। पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जानेपर हम चिरस्थायी परम सुखको ही सुख समझेंगे, केवल कर्त्तव्य-कर्म ही करेंगे, जो श्रेय है केवल वही प्रिय जान पड़ेगा किन्तु यह ज्ञान पैदा होने पर और पूर्णता मिल जानेपर फिर दुख नहीं रह जायगा और कर्म करनेकी अधिक चेष्टा भी न रह जायेगी। जब ज्ञानकी इतनी क्षमता है तब अर्जुनका यह प्रश्न सभीके मन में उठेगा कि—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥

अर्थात्, हे जनार्दन, हे केशव अगर आपकी रायमें कर्मसे ज्ञान ही श्रेष्ठ है, तो फिर आप मुझे इस घोर कर्म (युद्ध) में क्यों नियुक्त करते हैं? किन्तु इसका उत्तर भी गीतामें वहीं पर भगवानके इस वाक्यमें मिल जाता है कि—

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥

अर्थात् हे अर्जुन, कर्म न करनेसे मनुष्यको नैष्कर्म्यकी स्थिति (मुक्ति) नहीं मिलती (कर्मोंको न करना कर्म त्याग नहीं है) और न केवल संन्यास ले लेनेसे ही सिद्धि मिल जाती है।

मतलब यह है कि नैष्कर्म्य-लाभके लिये कर्म करनेका प्रयोजन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मसे निष्कृति (छुटकारा) मिलना ही कर्मका चरम उद्देश्य है, यह बात पहले सुननेमें यद्यपि असंगत सी जान पड़ती है, लेकिन कुछ सोचने और ध्यान देकर देखनेसे मालूम हो जायगा कि यही यथार्थ तत्वकी बात है। यह सच है कि कर्म करते-करते कर्म करने की इच्छा और शक्ति बढ़ती है, किन्तु वह चिकीर्षा (करनेकी इच्छा) और कर्म कुशलता कर्मानुष्ठानका निकट-लक्ष्य और प्रथम उद्देश्य है, उसका दूर-लक्ष्य या चरम उद्देश्य नहीं है। हमारे अनिवार्य अभावपूरण और ज्ञान पिपासाकी तृप्तिके लिये कुछ काम अत्यन्त प्रयोजनीय हैं। उनके सम्पन्न होनेसे कुछ अभावोंकी पूर्ति ज्ञान लाभ होनेके कारण धीरे-धीरे काम करनेकी व्यग्रता घट जाती है और जीव निवृत्ति-मार्गका पथिक होता है। कर्म करनेमें होनेवाले अभ्यासके द्वारा जो जितनी जल्दी अपने आवश्यक कर्मोंको समाप्त कर सकता है वह उतनी जल्दी नैष्कर्म्य या मुक्ति पानेकी चिन्ता करनेके लिये समय पाता है। किन्तु मनुष्यजीवनके कर्त्तव्य कर्मोंको न करके, मानव हृदयकी कामना को तृप्ति किये बिना, साधारण मनुष्य (बुद्ध, चैतन्य आदि महापुरुषोंकी बात दूसरी है) निवृत्तिमार्गमें कभी नहीं चल सकता। मैंने मानव-जीवनका कोई भी काम नहीं किया, इस मर्म भेदी चिन्ता और अतृप्त वासनासे परिपूर्ण हृदय मुक्ति-मार्ग चिन्तनमें सम्पूर्ण रूपसे बाधा डालनेवाला होता है। इसी कारणसे हिन्दूशास्त्रमें गृहस्थाश्रमका ग्रहण और धर्म कर्मानुष्ठानकी विधि है।

जीवनके प्रारम्भमें जैसे कर्मोंकी ओर प्रवृत्ति अनिवार्य है वैसे ही जीवनके अन्तिम भागमें कर्मोंकी ओरसे निवृत्ति भी अवश्यम्भावी है। लेकिन यथा सम्भव कर्त्तव्य कर्मोंको सम्पन्न और हृदयकी वासनाओंको परितृप्त करके, मुक्ति-चिन्ताके लिये समय रहते-रहते जो निवृत्ति मार्गगामी हो सकता है, वही सुखी है और उसीके कर्म, कर्मके यथार्थ उद्देश्य (कर्मोंसे निवृत्ति मिलने) को पूरा करते हैं।

कर्मके उद्देश्यकी आलोचनामें देखा गया कि वह उद्देश्य पहले तो कर्मफलकी कामना है और अन्तमें परिणाममें उस कामनाकी निवृति। अतएव उसके अनुसार कर्मोंकी सकाम और निष्काम दो श्रेणियां हो सकती हैं। सकाम कर्मी के कर्मका उद्देश्य कर्मफलका लाभ है और उसको कर्मसे निवृति यद्यपि परिणाममें अवश्य ही होगी तथापि साक्षात् सम्बन्धमें, उसके कर्म करनेसे नहीं होती, उसकी कर्म करनेकी प्रवृत्ति घटनेके साथ २ दिखायी पड़ती हैं। केवल निष्काम कर्मीके कर्म करनेका उद्देश्य कर्मसे निवृति है। इससे बहुत लोग यह सोच सकते हैं कि तब तो सकाम कर्मी ही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि उनमें 'कर्मसे निवृति' नहीं है, अर्थात् वे कर्म बराबर करते रहते हैं, और उन्हींके द्वारा पृथ्वीका अधिक उपकार हो सकता है। मगर कुछ ध्यान देकर देखनेसे समझमें आ जायेगा कि यह ख्याल ठीक नहीं हैं।

सच यह है कि सकाम कर्मीके कामोंसे पृथ्वीका हित हो सकता है, किन्तु मूलमें उनका प्रेरक स्वार्थ है, और कर्मीके स्वार्थके लिये उन कर्मोंसे जहां तक औरोंका हित होना आवश्यक है केवल वहीं तक उनसे पृथ्वीका हित होगा। सकाम कर्म करनेवाला अगर देखे कि चुपचाप अलग एकान्तमें पृथ्वीका कोई विशेष हित करनेसे उसमें यश पानेकी सम्भावना थोड़ी है, किन्तु प्रकाशरूपसे अपेक्षाकृत अल्प—हितकर कार्य करनेसे उसमें कुछ यश प्राप्त होगा, तो वह प्रथमोक्त कामको छोड़कर पिछला काम ही करेगा। अनुष्ठित कार्यको पूरा करने में निष्काम कर्मीकी अपेक्षा सकाम कर्मी अधिक दृढ़व्रत हो सकता है, किन्तु कार्यसाधनका उपाय निकालनेमें निष्काम कर्मी जहां तक हिताहित की विवेचना करेगा, सकाम कर्मीका वहां तक विवेचन करना असंभव है। कार्यसाधनके द्वारा जो फल होगा उसे पानेके लिये वह स्वभावसे ही इतना व्यग्र रहता है कि कार्यसाधनके उपायों के दोष-गुणों पर उसकी विशेष दृष्टि नहीं रहती। निष्काम कर्मी केवल कर्त्तव्यके ज्ञानसे कर्ममें प्रवृत्त होता है, अतएव उसकी असत् उपायोंको काममें लाने की प्रवृति कभी नहीं हो सकती। अनेक जगह ऐसा होनेकी सम्भावना है कि सकाम कर्मीके मनमें असत् उपायोंके द्वारा सत-कर्मको सिद्ध करनेकी प्रवृति हो, किन्तु निष्काम कर्मीके पक्षमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी घटना कभी नहीं हो सकती है। इसके सिवा सकाम कर्मीके कर्मों के साथ-साथ अकर्मका होना भी संभव है। निष्काम कर्मी समय २ पर निष्कर्मी हो सकता है, पर अकर्म नहीं कर सकता। है, अतएव सकाम कर्मीके कर्म देखनेमें दृढ़तायुक्त और उद्योग पूर्ण होने पर भी यह बात नहीं स्वीकार की जा सकती कि वे परिणाममें पृथ्वीके लिये निष्काम कर्मीके अनुद्धत और आड-म्बरशून्य कर्मोंसे अधिक हितकर हैं। सकाम कर्मीके आडम्बर पूर्ण कामोंकी उपमा आंधी और मेघगर्जनसे युक्त वर्षाके साथ दी जा सकती है, और निष्काम कर्मीके धूम-धामसे खाली काम मृदुमंद पवन और धीरे-धीरे गिरनेवाले धारापातके साथ तुल-नीय हैं। एकके द्वारा पृथ्वीका हित और अहित दोनों बातें होती हैं, पर दूसरेके द्वारा हितके सिवा अहित होनेकी सम्भा-वना नहीं।

इसके सिवा निष्काम कर्मीका दृष्टान्त संसारमें केवल शुभ-कर ही नहीं है, अति आवश्यक भी है। मनुष्य स्वभावसे ही इतना स्वार्थपर है कि उसके सामने बीच-बीचमें निष्कामकर्मीके निःस्वार्थ काम करनेका उज्ज्वल पथप्रदर्शक दृष्टान्त न रहे, तो सकाम कर्मियोंके स्वार्थसंघर्षणसे संसार विषम संकटस्थल हो उठे।

सकाम कर्म और निष्काम कर्मके बीच एक बहुत बड़ा अंतर और भी है। सकाम कर्मी जो है, वह फलकी कामनासे कर्ममें प्रवृत्त होकर, उन शक्तियोंको जो उस फलकी प्राप्तिमें बाधा डालने वाली हैं, शत्रु समझता है और स्वार्थके द्वारा अच्छी तरह उत्तेजित तीव्रताके साथ उसका विरोध करने लग जाता है। यह सच है कि जड़ जगत्की स्पष्ट प्रतीयमान अप्रतिहत शक्तिके साथ वैसा आचरण नहीं चल सकता, और कौशलके द्वारा वैसी शक्तियोंकी गति फिराकर उन्हें अपना कार्यसिद्ध करनेके उप-योगी बना लेना होता है। किन्तु कर्मफल लाभकी प्रचण्ड उत्ते-जनामें चैतन्य जगत्की सारी छुपी हुई शक्तियोंकी उपेक्षा करके सकाम कर्मी उनके साथ सम्मुख संग्राममें प्रवृत्त होता है, और अनेक जगह इससे वांछित फल मिलकर कुफल ही फलता है। इस तरह सकाम कर्मी लोग संकल्पित कार्यके साधनमें लग्न होकर अन्यके सुख-दुःख या हिताहित पर दृष्टिपात न करके, उसके द्वारा हो सकनेवाली दूसरेसे शत्रुताका ख्याल न करते हुये, कार्य में अग्रसर होते हैं और अपना इष्ट सिद्ध हो या न हो, अन्य लोगोंका बहुत कुछ अनिष्ट कर डालते हैं। सकाम कर्म इस तरह अनेक जगह कर्मीको मोहसे अन्धा बना देता है, और उसे जगत्की छुपी हुई शक्तिके साथ वृथा संग्राममें लगा देता है। निष्काम कर्मी भी कर्त्तव्य साधानमें सचेष्ट अवश्य होते हैं, वे जड़ जगत् या चैतन्य जगत्की किसी शक्तिकी उपेक्षा नहीं करते, बल्कि जगत्की सभी शक्तियोंकी सहायता लेकर कर्त्तव्य साधनमें अग्रसर होते हैं। अतएव यह बात कही जा सकती है कि सकाम कर्मका उद्देश्य अनेक जगह जगत्की अप्रत्यक्ष शक्तिसे संग्राम करके उसके द्वारा कार्यसाधन करना है, और निष्काम कर्मका उद्देश्य उसी शक्तिकी सहायतासे कर्त्तव्य-पालन करना है।

ऊपर कहा गया है कि कर्मका चरम उद्देश्य कर्मसे छुटकारा पाना है। किन्तु इसमें आपत्ति हो सकती है कि वैसा होना कैसे सम्भव है? गति मात्र जितनी हैं, वे कर्म हैं। जगत् दम भरके लिये भी स्थिर नहीं है। वह निरन्तर गतिशील, अर्थात् कर्मशील है। अतएव ब्रह्मकी पूर्ण निखिलता अपरिवर्तनशील और निष्क्रिय होनेपर भी उसका व्यक्त अंश यह दिखाई देता हुआ जगत्-कर्मशील है। अतएव कर्मकी निवृत्ति कैसे होगी? इसके उत्तरमें इतना ही कहा जा सकता है कि ब्रह्मसे बिछड़ा हुआ जीव "मैंने यह कार्य किया" "मैं यह काम करता हूँ" इस अहं ज्ञानसे ब्रह्मके साथ मिलनेके द्वारा छुटकारा (मुक्ति) प्राप्त करेगा और उसके बाद ब्रह्मकी व्यक्त शक्ति कर्ममें लगे रहने पर भी ब्रह्मलीन जीव फिर अपनेको कर्ममें नियुक्त नहीं जानेगा।

कर्मके चरम उद्देश्य मुक्ति लाभकी साधनाके लिये पहले ही से संयत और साधुभावसे कर्म करना आवश्यक है। जगतकी अनन्त शक्तियोंके साथ अपनी क्षुद्र शक्तिका विरोध खड़ा करके उनके ऊपर अपनी प्रधानता स्थापित करनेकी वृथा चेष्टा न करके उनसे सख्य संस्थापनपूर्वक उन्हींकी सहायतासे कर्त्तव्यपालनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेष्टा करना ही कर्मीके लिये एक मात्र अच्छा उपाय है। किन्तु बहुत ही कम लोग उस अच्छे उपायको काममें लाते देखे जाते हैं। तो फिर क्यों यह सृष्टिविडम्बनामूलक है और मनुष्यका कर्म करना परमार्थ-लाभका विरोधी है? यह बात भी नहीं कही जा सकती। क्योंकि ऐसा कहना मानो विश्व-नियन्ताके नियम पर अश्रद्धा दिखाना है। असल बात यह है कि संसारमें कर्म और कर्मकी गति क्रमशः बहुत धीरे-धीरे सुपथ की ओर ही है। किन्तु धीरे-धीरे होनेपर भी वह ध्रुव अर्थात् निश्चलतारूपसे सुपथमुखी है।

—प्राप्त

ब्रह्मचर्य ही शक्ति है

प्रोफेसर रमेश शर्मा

आज कल संसारमें सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ है। जहां देखिये कलह, उत्पात और संग्रामका जोर है। सभी जगह लड़ाई हो रही है। कहा जाता है कि लोगोंकी दैवी और आसुरी दो प्रकारकी प्रवृत्तियां होती हैं। इन दोनों प्रवृत्तियोंमें भी आजकल भीषण संग्राम मचा हुआ है। सच्चरित्रता और दुश्चरित्रताके इस युद्धमें अद्यावधि दुश्चरित्रता की ही विजय हुई है। सभी सच्चरित्र और दैवी प्रकृतिवाले लोग इस पराजयका कारण ढूंढ़ रहे हैं। वे इसकी जड़तक पहुंचना चाहते हैं, किन्तु वे समझ नहीं पाते हैं कि इस विपरीत परिणामका कारण क्या है। फल यह हुआ है कि वे निराश हो गये हैं और निराश होकर वे कहने लग गये हैं कि क्या सदाचारियोंकी पराजयके दिन आगये हैं? क्या नैतिकताका इस विश्वसे उन्मूलन हो गया है? किन्तु हमारा उत्तर यह है कि नैतिकताका उन्मूलन संसारसे कभी नहीं हो सकता, वरन् यह कहा जा सकता है कि उसकी शक्तिकी पूरी आजमाइश अबतक नहीं हुई है।

हमारे भीतर नैतिक शक्ति कितनी है, इसकी जांच करनेका उपाय यह है कि हम देखें कि नैतिक दृष्टिसे हम कितना आगे बढ़े हैं। जिस सीमा तक नैतिक दृष्टिसे हम आगे बढ़े हुए रहेंगे, उसी हद तक हमारे अन्दर नैतिक शक्ति होगी। जिस क्षण हमें इस बातका अनुभव हो जायेगा कि नैतिक शक्ति ही वास्तविक शक्ति है तथा वही हमारी शक्तिका उद्गम स्थान है एवं उसीका आश्रय लेनेसे हम अपनेको विकसित कर सकते हैं, उसी क्षण संसारमें एक ऐसे वातावरणकी सृष्टि हो जायेगी जिसमें सुख, शान्ति, प्रेम और पवित्रताका प्रसार हो जायेगा।

आजकल जिसे देखिये वही स्वतन्त्रताके पीछे दौड़ पड़ा है। लोग स्वतन्त्रता और स्वाधीनताके जैसे पीछे पड़ गये हैं। युवक और वृद्ध जिसको देखिये वही स्वतन्त्र होना चाहता है। किन्तु इस बातका ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि वास्तवमें स्वतन्त्र वही हो सकते हैं जो नैतिक दृष्टिसे शुद्ध और पवित्र हों; क्योंकि जहां शुद्धता, पवित्रता और सदाचार नहीं है वहां विशुद्ध और वास्तविक देशप्रेमका होना भी सम्भव नहीं है। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि इस जीवनमें हमारे सब ओर बाधायें और कठिनाइयां हैं और जबतक हम उनके ऊपर विजयी नहीं होते तबतक यह कहिये कि हम स्वतन्त्र और मुक्त हो जायें तो यह असम्भव है। नैतिक दोषों और कमजोरियोंसे मुक्त होना ही वास्तविक स्वतन्त्रता है। यह एक ऐसी स्वतन्त्रता है जिसका हम लोग शान्तिपूर्वक उपयोग कर सकते हैं और आगे आनेवाली सन्तानको भी यह वस्तु दे सकते हैं। ऐसा करके ही हम उनको उस स्वतन्त्रता रूपी रत्नको दे सकते हैं और वे प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेकी क्षमता रख सकते हैं जिसके लिये हमें इतनी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। परिणाम इसका यह होगा कि हम लोगोंका जीवन जहां समाप्त होता है वहांसे उनका आरम्भ होगा और तब फिर जीवनमें वे ऐसे कार्य कर सकनेमें सफल होंगे जो हमारे लिये कठिन ही नहीं असम्भव है। उनको जल्दी ही शक्ति प्राप्त होगी, सुख मिलेगा, दिव्यप्रेमकी प्राप्ति होगी और सर्वत्र शान्ति विराजेगी। इसके लिये हमें इस बातका ध्यान रखना होगा कि नैतिकताके बीजका बपन हम विशेष सावधानी रखकर करें, किसी प्रकारकी खराबी उसके अन्दर न आने दें तथा अपना थोड़ा भी पतन न होने दें। ऐसा होनेपर ही हम अपने अन्दर तथा अपनी सन्तानके अन्दर वास्तविक स्वतन्त्रताका भाव भर सकते हैं। उनके अन्दर आत्मविश्वासकी, शक्तिकी कितनी अधिक मात्रा होगी, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। उनके लिये संसारमें कुछ भी कठिन न प्रतीत होगा। असम्भव शब्द ही उनके लिये व्यर्थ-सा मालूम पड़ेगा। प्रत्येक कार्यको वे आसानी और प्रसन्नतासे कर लेंगे।

यह कितने आश्चर्यकी बात है कि ऐसे कितने ही शिक्षित लोग भी मिलते हैं जो यह कहा करते हैं कि यदि हम पूर्णरूपसे नैतिक बन जायें या सज्जनताका व्यवहार सबके साथ करें तो फिर रहना ही मुश्किल हो जाये। ऐसे लोग यह कहा करते हैं कि नैतिकताका आजकल चलना असम्भव है एवं आजके विश्वमें तो यह व्यर्थकी चीज हो गयी है। किंतु हम पुनः कहेंगे कि यह धारणा बहुत भ्रान्त है। सच बात तो यह है कि विशुद्ध नैतिकताका हम लोगोंने अपने जीवनमें व्यवहार ही नहीं किया है। यहां यह कह देना बहुत आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि विशुद्ध नैतिकताका मूल अखण्ड ब्रह्मचर्य है। नैतिकताकी दीवालकी नींव ब्रह्मचर्य ही पर खड़ी है। ब्रह्मचर्य व्रतके पालनसे हमारे अन्दर आजकल जो आसुरी प्रवृत्ति बढ़ गयी है उसका विनाश होगा, आजकलके कलह, झगड़े और झंझटके कारणोंका उन्मूलन होगा और सत्यता, सन्तोष, दया, प्रेम और विश्वबन्धुत्व आदि गुणोंकी वृद्धि होगी। ब्रह्मचर्यके बिना किसी सद्गुणकी ओर आपकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसकी शक्तिका अनुभव सभी लोग कर सकते हैं। पाप, भय, दोष, घृणा आदिसे मुक्ति पाना ही वास्तविक स्वतन्त्रता है और जबतक पूर्णरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन नहीं किया जायेगा तबतक इनकी प्राप्ति असम्भव है। ब्रह्मचर्यका पालन जहां लोगोंने प्रारम्भ किया वहां तत्काल वे द्वन्द्वोंके आघातसे मुक्त हो जायेंगे। इससे आसुरी प्रवृत्तिका सर्वथा विनाश हो जाता है। इसका कारण यह है कि जब ब्रह्मचर्यके पालनसे दैवी प्रवृत्तिकी वृद्धि होती है तब आसुरी प्रवृत्तिको मनमें स्थान ही नहीं मिल सकता। इसलिये यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि हम ब्रह्मचर्यका पालन पूर्णरूपसे करें। इसके बिना हम संसारमें न तो सुख और शान्ति ही प्राप्त कर सकते हैं और न हमें अपने जीवनके परम लक्ष्यकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा ही मिल सकती है। शक्तिके भरोसे लोग सुख और शान्ति प्राप्त करनेका उद्योग करते हैं, किन्तु इससे बढ़कर भला और कौन शक्ति होगी जो अक्षय सुख और शान्ति देने योग्य होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहारसे ब्रह्मचर्यका सम्बन्ध

श्री स्वामी शिवानन्द जी

ब्रह्मचर्य और भोजनमें अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। भोजनके महत्वको बहुत लोग नहीं जानते, इस कारण उन्हें अत्यन्त दुख उठाना पड़ता है। जिसे ब्रह्मचारी बनना है उसको सादा और अल्पाहारी अवश्य ही बनना होगा। अधिक भोजन करनेवाला सात जन्ममें भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता है। क्योंकि जोरकी आन्धी जैसे पेड़ोंको उखाड़ डालती है, वैसे ही कामदेव पेटू मनुष्यको पटक-पटककर मार डालता है। अधिक भोजन करनेवाला पुरुष किसी हालतमें वीर्य नहीं रोक सकता है। उसका चित्त सदा विषयकी ओर लगा रहता है। मन और तन दोनों रोगी बन जाते हैं। आयु घट जाती है और स्वार्थ व परमार्थ दोनों मटियामेट हो जाते हैं। यदि आपको वीर्यवान व आरोग्यवान बनना हो स्वप्नदोषसे और अकालमृत्युसे बचना हो तो आपको अवश्य ही सादा व अल्पहारी बनना होगा।

एक समय ईरानके बादशाह बहमनने एक श्रेष्ठ वैद्यसे पूछा—"दिन-रातमें मनुष्यको कितना खाना चाहिये?" उत्तर मिला—"सौ दिरम अर्थात् ३९ तोला।" फिर पूछा "इतनेसे क्या होगा?" हकीम बोला—"शरीर पोषणके लिये इससे अधिक नहीं चाहिये।" इसके उपरान्त जो कुछ खाया जाता है वह सिर्फ बोझ ढोना और उम्रको खोना है।

यह सिद्धान्त है कि आहार, निन्द्रा, भय, मैथुन, क्रोध, कलह आदि बातें जितनी बढ़ाई जाये उतनी ही बढ़ती जाती हैं और जितनी कमकी जायँ उतनी कम होती जाती हैं। भगवान बुद्ध कहते हैं, एक बार हल्का आहार करनेवाला "महात्मा है, दो बार सम्हल करके खानेवाला बुद्धिमान और भाग्यवान है और इससे अधिक बेअटकल खानेवाला महामूर्ख, अभागा और पशुका भी पशु है। सच है, गले तक खूब ठूस-ठूस करके खाना और फिर पछताना कौन बुद्धिमानी है? ये क्या भाग्यवान्के लक्षण हैं? भोजन सुखके लिये खाया जाता है या दुःखके लिये? जिस भोजनसे दुःख ही उपजता है उस भोजनको विष ही समझना चाहिये। भोजन तारता भी है और मारता भी है।

अतः तन्दुरुस्तीके लिये खाओ, रोगी बननेके लिये मत खाओ। जो कुछ खाओ जीनेके लिये खाओ, मरनेके लिये मत खाओ। बहुत भोजन करनेवाला बहुत जल्द मरता है। अमेरिकाके प्रसिद्ध डाक्टर म्याकफ्याडन कहते हैं "आजकल साधारणतः लोग भोजनके बहाने जितने पदार्थोंका सत्यानाश करते हैं उनके चतुर्थांशसे ही उनका काम बड़े आनन्दसे चल सकता है। अकालमें अन्नके अभावसे लोग उतने ही मरते, जितने कि सुकालमें अधिक अन्न खानेसे तरह-तरहके रोगोंसे मर जाते हैं।"

अति भोजन रोगोंको बढ़ानेवाला, आयुको घटानेवाला नरकमें पहुंचानेवाला, पापको करनेवाला और लोगोंमें निन्दित करनेवाला है। अतः बुद्धिमानको चाहिये कि किसी बढ़िया पदार्थके फेरमें पड़कर जरूरतसे अधिक कदापि न खाये। क्योंकि वैसा करना पूर्ण अधर्म है। पेटू मनुष्य आत्महत्यारा कहा जाता है। पेटू मनुष्यकी धर्म-बुद्धि बिलकुल नष्ट हो जाती है और हठात् पापकर्मोंमें प्रवृत्त होता है। सम्पूर्ण पापकी जड़ अधिक भोजन करना ही है। अधिक भोजन ही से काम, क्रोध रोगादि अधिक प्रबल बन जाते हैं और कम भोजनसे वे कमजोर बन जाते हैं। इसी गम्भीर सिद्धान्तको जानकर महर्षियोंने शास्त्रोंमें उपवासका महत्व वर्णन किया है।

भक्तदास वामन प्रश्नोत्तरमें कहते हैं—"निकम्मा कौन है? पेटू। महापुरुषकी क्या पहचान है? जो अपनेको सबसे छोटा समझता है। महापुरुष कैसे बनें? मनको वशमें करनेसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन कैसे वशमें हो ? कम खानेसे। कम खाना कैसे सीखें ? आहारको थोड़ा-थोड़ा घटानेसे। आहार कैसे घटे ? रोज सादा और प्राकृतिक भोजन करनेसे। सादा भोजन कैसे प्रिय लगे ? भूखके समय खानेसे और प्रत्येक ग्रासको खूब अच्छी तरह चबानेसे। भूखका समय कैसे जानें ? नियम बांध लेनेसे और फिर बीचमें कुछ भी न खानेसे।

सचमुच प्रकृतिके अनुसार चलनेसे हम पेटूपनसे और तज्जन्य अन्यान्य विकारोंसे बच सकते हैं। भोजनमें सौ प्रकार रहनेसे मनुष्य अक्सर ज्यादा खा लेता है और फिर सौ प्रकारसे सौ विकार अवश्य ही उत्पन्न होते हैं।

आस्ट्रेलियाके प्रसिद्ध डाक्टर हर्न कहते हैं—"मनुष्य जितना खा लेता है उसका तिहाई हिस्सा भी नहीं पचा सकता। बाकी पेटमें रहकर रक्तको विषैला बनाकर असंख्य विकार पैदा करता है; जिससे कि प्राण शक्तिका दोहरा नाका हो जाता है। एक तो फाल्तू भोजनको पचानेमें और दूसरे उसको बाहर निकालनेमें।

यदि मनुष्य भोजन कम प्रकारके खाये, नमक, मिर्च मसालासे रहित सात्विक भोजन करे, प्रत्येक ग्रासको खूब महीन पीसकर, चबाकर खाये, शान्ति रखे और जितना पचा सके उतना ही खाये तो वह ब्रह्मचर्यको बड़ी आसानीसे धारण कर सकता है और १०० वर्षतक जीवित रह सकता है। इसीके बलपर सुप्रसिद्ध अमेरिकन यंत्रकार एडिसन कहते हैं, मैं सौ वर्ष पर्यन्त अवश्य जीवित रहूंगा।"

"If you can conquer your tongue only you are sure to conquer your whole body and mind at ease."

यदि आप सिर्फ जिहवाको वशमें करो तो आपके मन और शरीर अनायाश वशमें हो जायेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिह्वाको संस्कृतमें रसना कहते हैं। क्योंकि वह श्रृङ्गार, वीर, शान्त आदि सभी नव-रसको उत्पन्न करनेवाली है। सात्विक भोजनसे शान्त-रस उत्पन्न होता है, राजसी भोजनसे श्रृङ्गार-रस तामसी भोजनसे वीभत्स, रौद्रादि रस उत्पन्न होते हैं। जो रस अधिक बलवान् होता है सम्पूर्ण रस उसीके अधीन हो जाते हैं। इसीलिये कहा है—

आहरशुद्धो सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

स्मृतिलब्धे सर्वग्रन्थीतां विप्नमोक्षः॥ **छान्दोग्य उप०**

अर्थात् आहारकी शुद्धिसे सत्वकी शुद्धि होती है, सत्व शुद्धिसे बुद्धि निर्मल और निश्चयी बन जाती है। फिर पवित्र व निश्चयी बुद्धिसे मुक्ति भी सुगमतासे प्राप्त होती है। अतः जिन्हें काम क्रोधादिसे मुक्त होना है—उनपर विजय पाना है-उन्हें चाहिये कि वे नित्य नियमित समय पर सात्विक अल्पाहार किया करें। क्योंकि कहा है—

"As a man eateth so he becometh

जैसा मनुष्य भोजन करता है वैसा ही बन जाता है।" यदि मनुष्य दो साल पर्यन्त लगातार सादा अर्थात् सात्विक अल्पाहार किया करेगा तो उसकी कुबुद्धि आपसे आप नष्ट हो जायेगी और उसमें ईश्वरी तेज प्रकट होने लगेगा। कुछ ही दिनतक अभ्यास करके देख लीजिये।

सात्विक आहार—जो ताजा, रस युक्त, हलका, स्नेह युक्त, स्थिर (Nutritious) मधुर प्रिय हो, जैसे—गेहूं, चावल, जौ, साठी, मूंग, अरहर, चना, दूध, घी, चीनी, सेंधा नमक, रतालू, (शकरकन्द) शुद्ध व पक्के फल, इनको सात्विक आहार कहते हैं।

राजसी आहार—अत्यन्त उष्ण, कड़ुआ, तीता, नमकीन, अत्यन्त मीठा, रूखा, खट्टा, चरपरा, तैलयुक्त, दोषयुक्त, गरिष्ट, जैसे पूड़ी, कचौड़ी, मालपुआ, मिठाई, खट्टा, लाल मिर्च,, तेल, हींग, प्याज, लहसुन, गाजर, उरद, मसूर, सरसों, मसाला, मांस, मछली, कछुआ, अण्डा, शराब, चाय, काफी, कोकेन, चरस, चण्डू इनको राजसी आहार कहते हैं।

राजसी आहारसे मन चञ्चल, कामी, क्रोधी, लालची और पापी बन जाता है; रोग, शोक, दुःख, दैन्य बढ़ते हैं और आयु तेज, सामर्थ्य और सौभाग्य वेगके साथ घट जाते हैं। राजसी पुरुष कदापि ब्रह्मचारी नहीं हो सकता।

तामसी आहार—तामसी आहारमें राजसी आहार तो आता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है; परन्तु उसके अलावा जो बासी, रसहीन, गला हुआ, दुर्गन्धित विषम, घृणित व निन्द्य होता है उसको तामसी आहार कहते हैं।

तामसी भोजनसे मनुष्य प्रत्यक्ष राक्षस बन जाता है। ऐसा पुरुष सदा रोगी,दुखी, बुद्धिहीन, क्रोधी, लालची, आलसी,दरिद्र, अधर्मी, पापी और अल्पायु बन अन्तमें नरकगामी होता है।

अत. जिन्हें ब्रह्मचर्यका पालन कर अपना उद्धार करना है, उन्हें चाहिये कि तामसी और राजसी आहारको छोड़कर दैवी, तेज बढ़ानेवाला सात्विक अल्पाहार आज ही से शुरु कर दें। परन्तु यह ध्यान रहे कि सात्विक भोजन भी बासी हो जाने पर तामसी बन जाता है और अधिक खा लेनेसे राजसी। इतना ही नहीं बल्कि प्राण हरण करनेवाला महान् तामसी भी बन जाता है। अतः अल्पाहार सात्विक आहार कहा जा सकता है।

"भोजन अच्छी तरहसे कुचल कुचलकर खाना" यह प्रकृति का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इससे मामूली भोजन भी अत्यन्त मिष्ट व पुष्ट मालूम होता है। पचता भी है मजेमें पाखाना भी साफ होता है, भोजन भी कम लगता है और इस प्रकार दैहिक, आर्थिक तथा देशकी दृष्टिसे भी अधिक लाभ होता है। परन्तु जल्दी-जल्दी खानेसे मनुष्य सदा दुःखी मलीन, कामी पेटू, अतृप्त, रोगी, उदासीन, क्रोधी, चिड़चिड़ा और अल्पायु बन जाता है। बदहजमी ओर कब्जियत भी इसीसे हुआ करती है। जल्दी दांत टूटनेका भी यही कारण है। पशुओंके दांत अन्त तक नहीं टूटते, इसका मुख्य कारण चर्वित चर्वण ही है। अतः दांतसे योग्य काम लो; क्योंकि पेटके दांत नहीं होते। दांत कुछ दिखानेके लिये नहीं दिये गये हैं। यदि मनुष्य प्रत्येक ग्रास ३०-४० बार अथवा प्रकृतिके हिसाबसे बत्तीस दांतके लिये बत्तीस बार खूब चबा-चबाके खायेगा तो आज वह जितना भोजन करता है उसके तिहाई भोजनमें ही उसकी तृप्ति हो जायेगी और प्राणशक्तिका भी बहुत कम नाश होगा; भोजन भी बहुत जल्द पचेगा, पाखाना भी साफ होगा और इन्द्रिय दमन की भी शक्ति उसे बहुत जल्द प्राप्त होगी। इसे कोई भी आजमा सकता है।

भोजन जो बिना चबाये जल्दीसे खा लेते हैं, वे जल्दी ही मर जाते हैं। चर्वित चर्वणसे भोजनके प्रत्येक परमाणुसे मनुष्य प्राणत्वको ब्रह्मकी भावनासे विशेष खींच सकता है। अतः "**अन्नं ब्रह्मत्युपासीत**" अन्नमें ब्रह्म दृष्टि रखो और "**अन्नं दृष्ट्वा प्रणाम्यादौ**।" अन्नको प्रथम प्रणाम करके फिर भोजनक्रिया करो। योगी लोग ऐसे ही करते हैं और इसी कारण वे थोड़े ही भोजनमें तृप्त हो जाते हैं और उनमें ब्रह्म भावनाके कारण दैवी सामर्थ्य प्रकट होता हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। अमीरी भोजन करना मानो साक्षात् सांप पर पैर रखना है। ऐसे लोगोंमें काम, क्रोधका विष बहुत ज्यादा फैला हुआ रहता है। इस बातका पता धनी लोगोंपर दृष्टि डालनेसे तत्काल लग जाता है। धनी लोगोंका यह एक विचित्र ख्याल है कि जो कुछ वीर्य नष्ट किया जाता है वह हलुआ, पूड़ी, रबड़ी उड़ानेसे फिर वापस मिलता है। परन्तु यह उनकी बड़ी भारी मूर्खता है। जो भोजन बड़े बड़े पहलवानोंसे भी बिना खूब कसरत किये नहीं पच सकता, वह गरिष्ट भोजन दिन-रात निठल्ले बैठे हुये और अधिक भोजनसे और भोग विलासके कारण जिनकी आंतें बेकाम हो गई हैं, उनको कैसे पच सकता है? "**धातु क्षयात् स्रवते रक्ते मन्दः संजयातेऽनलः**।" यानी धातुके नाशसे रक्त कमजोर हो जाता है और रक्त कमजोर हो जानेसे अग्नि यानी भूख भी मन्द पड़ जाती है।

जिन्हें वीर्यकी रक्षा करनी है उन्हें चाहिये कि वे मिठाई, खटाई, नमक, मिर्च, मसालासे सर्वथा बचे रहें। सदा सस्ता, सादा, स्वच्छ और स्वल्प भोजन किया करें। नमक, मिर्च, मसाला बड़े कामोत्तेजक पदार्थ हैं। लाल मिर्च तो ब्रह्मचर्यके लिये प्रत्यक्ष काल ही है। अतः उन्हें धीरे धीरे कम करके सर्वथा शीघ्र त्याग दें। अभ्याससे कोई भी बात असम्भव नहीं है। निश्चय होनेपर सभी बातें सहल हैं।

योगी लोग नमक, मिर्च, मसालादि नहीं खाते, अनभ्यासके कारण उन्हें वे अच्छे ही नहीं लगते। यदि आपको योगी और सुखी बनना हो, वियोगी अर्थात् दुखी नहीं बनना हो तो आपको भी उन्हींकी तरह प्राकृतिक आहार करना होगा। जो चीज जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हालतमें पैदा हुई हो उसे वैसे ही खानेसे भोजन भी कम लगता है और फायदा भी खूब होता है। ज्यों ज्यों उसका रूप बदलता जाता है त्यों त्यों वह चीज आरोग्यके लिये हानिकर होती जाती है। कच्चे गेहूं, चना खाना अधिक फायदेमन्द है; क्योंकि इसमें प्राणशक्ति कूट कूट कर भरी रहती है और भोजन भी कम लगता है। परन्तु बचपन ही से आतें दुर्बल हो जानेके कारण मनुष्य उसे बिना पकाये पचा नहीं सकता। अन्नको पकानेसे प्राणशक्ति नष्ट हो जाती है और इसी कारण अधिक भोजन करने पर मनुष्यकी तृप्ति नहीं होती और अन्यान्य रोगों से पीड़ित हो जाता है। पूड़ी, कचौल इत्यादि तले हुये पदार्थों की प्राणशक्ति तो और भी जल जाती है। इसलिये जहां तक हो प्राकृतिक आहार ही करना सर्व श्रेष्ठ है। मैदेसे भूसी युक्त आटा श्रेष्ठ, भूसी युक्त आटासे दलिया श्रेष्ठ, दलियासे उबले हुये गेहूं श्रेष्ठ, उबले हुये गेहूंसे कच्चे गेहूं, और जव श्रेष्ठ कच्चे गेहूं, चावल, चना इत्यादिसे दुग्धाहार श्रेष्ठ और दुग्धाहार से पके ताजे फल श्रेष्ठ हैं।

नीचे हम भोजनके कुछ शास्त्रीय नियम देते हैं। (१) केवल दो ही शाम भोजन करना चहिये; पहला भोजन १० से लेकर २ बजेके भीतर और दूसरा शामको ८ बजेके भीतर, देरमें करनेसे स्वप्नदोष होता है। (२) दिन भरमें एक मरतबे भोजन करना सर्व श्रेष्ठ है 'एक भुक्त सदा रोग मुक्त।' (३) रातमें ७ बजेके भीतर थोड़ासा ताजा ठण्ढा दूध बिलकुल थोड़ीसी चीनी डालकर धीरे धीरे पी लेना चाहिये। रातमें गरम दूध पीनेसे स्वप्नदोष होता है। (४) बहुत गरम गरम भोजन कदापि न करना चाहिये। उससे वीर्य पतला पड़ जाता है और कामोत्तेजना होती है। गरम भोजनसे और चायसे दांत जल्दी टूट जाते हैं, आंतें दुर्बल पड़ती हैं। कब्जियत बढ़ती है और आंखकी ज्योति मन्द पड़ जाती हैं। (५) भोजन सदा ताजा और सादा रहे। भोजन अनेक प्रकारका और बासी होनेसे अनेक विकार फौरन बढ़ जाते हैं। बासी भोजनसे बुद्धि, आयु और तेज तत्काल नष्ट हो आलस छाती पर सवार होता है और मनुष्यको पाप कर्मोंमें प्रवृत्त करता है। (६) कभी हलक तक ठूंस ठूंस कर न खाओ, उससे बरबाद हो जाओगे। (७) थकनेपर तत्काल भोजन न करना चाहिये। (८) भोजनके बाद शारीरिक और मानसिक परिश्रम एक घण्टा तक कदापि न करना चाहिये। एक घण्टे—कमसे कम आध घण्टा तक आराम करो नहीं तो रोग ग्रस्त बन जल्द ही मरना पड़ेगा। भोजनके समय सदा शान्त, पवित्र व ऊँचे विचार रखो। चिड़चिड़ापनसे अन्न हजम नहीं होता। क्रोधसे अन्न जहर बन जाता है,अतः भोजनके समय हमेशा शान्त रहो शांन्तिके हेतु मौन धारण करो। नमक, मिर्च, मसाला, खटाई, मिठाई, माँस, मदिरा, चाय, काफी वगैरह सर्वथा त्याग दो, क्योंकि इनसे मन व इन्द्रिय अत्यन्त चञ्चल बन जाती हैं। ऐसा पुरुष वीर्यको नहीं रोक सकता (९) भोजनके समय पानी न पीना चाहिये, क्योंकि ऐसा करना सर्वथा प्रकृतिके विरुद्ध है। भोजनके एक घण्टा बाद पानी पीना चाहिये। (१०) भोजन के पहले हाथ, पैर और मुंहको पानीसे पूरे तौरसे स्वच्छ धो डालो और नाखून साफ रखो; क्योंकि उनमें जहर होता है। (११) भोजन नियमित समय पर किया करो और फिर बीच में कुछ भी न खाओ (१२) राह चलते, खड़े रहते, व लेटे हुये भोजन करना सर्वथा अनुचित है। (१३) प्रातःकाल जलपान अर्थात् कलेवा करना अच्छा नहीं है। (१४) भोजनकी जगह पवित्र और प्रकाशमय होनी चाहिये। गन्दगीसे जिन्दगी जल्दी बरबाद होती है इस बातको सदा ध्यानमें रखो। (१५) भोजनके बाद 'शतपद' अर्थात् सौ कदम इधर-उधर टहलना चाहिये। भोजनोत्तर तुरन्त आराम कुर्सी पर पड़े, तो उससे बहुत हानि होती है, और दौड़नेसे प्राणका नाश होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलाहारसे लाभ

श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा बी० ए०

प्राचीन कालमें ऋषि-मुनि अपने आश्रमोंमें रहकर केवल कन्द-मूल फल खाकर निर्वाह करते थे और सैकड़ों वर्ष तक नीरोग रहा करते थे। सैकड़ों वर्षोंके कटु अनुभवके पश्चात् आज जिस नतीजेपर आधुनिक वैज्ञानिक पण्डित पहुंचे हैं उसे हमारे प्राचीन ऋषि-गण खूब अच्छी तरह जानते थे। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करना मनुष्यकी आयुको बढ़ाता है। फलाहार मनुष्यका स्वाभाविक भोजन है। क्योंकि फलोंको मनुष्य जैसेके तैसे रूपमें खा सकता है। अन्य पदार्थोंके खानेके लिये मनुष्य इस भड़कीली सभ्यताके समयमें उन्हें सुखकर पकाकर या सड़ाकर उनका रूप और बदल देता है और फिर अपने काममें लाता है। कृत्रिम रूपसे पकाये या भूने हुए पदार्थोंके खानेसे रोग, अल्पायु, क्रोध, भय आदि अवगुणोंकी उत्पत्ति होती है। फलोंके खानेसे शरीर फुर्तीला, बलिष्ठ और नीरोग होता है।

फलोंके स्वाभाविक भोजन होनेका दूसरा प्रमाण यह है कि वे बालक और बालिकायें, जो अस्वाभाविक भोजन करनेके प्रेमी नहीं बन चुके हैं, फलोंको बहुत ही पसन्द करते हैं और अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा फलोंसे बड़ा अनुराग रखते हैं। केवल इतना ही नहीं, वरन् फलोंमें अनेक रोगोंके नाश करनेके भी उत्कट गुण मौजूद हैं, जैसे—अंगूरमें अजीर्णको दूर करनेकी बड़ी भारी शक्ति है, गठिया और जिगरकी बीमारीके लिये नीबू या सन्तरा एक जबर्दस्त प्रभाव रखता है। फलोंमें पोटासका क्षार इतनी अधिक मात्रामें मिलता है कि रक्तको शुद्ध करने और गठिया, बात तथा दूसरी वात व्याधियोंमें फलोंकी बराबरी करनेवाली कोई औषधि ही नहीं होती है। जो नमक और खटाई फलोंमें कुदरती रीतिसे पायी जाती है वह सिरदर्द, कब्ज और पेट तथा जिगरकी खराबीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके लिये रामबाणका काम करती है। ये रोग झूठे और नकली फ्रूट साल्ट या अन्य दवाइयोंसे हरगिज दूर नहीं हो सकते।

फलोंका भोजन छूट जाने और उनके स्थानपर तरह-तरहके चटपटे, मसालेदार, गर्मागर्म भोजन और अनेक प्रकारके मांसाहारने दांतोंके रोग बहुत फैलाये हैं। बहुत कम लोगोंके दांत सुन्दर और नीरोग दिखलायी देंगे। चमकते हुए दांत जीवन की ज्योति हैं। मैले दांत अल्पायुके चिन्ह हैं। फलोंकी खटाई कीटाणुनाशक और जीभ तथा दांतोंकी मैलको दूर करनेवाली है। मुख और दांतको शुद्ध करनेवाली वस्तु फलोंको छोड़कर दूसरी नहीं है। यदि एक अच्छे सेवको दांतसे काटकर खाया जाये और खूब चूसा जाये, तो दांत अत्यन्त उज्ज्वल हो जायेंगे।

फलोंको शौकिया खाना कोई हानिकी बात नहीं है; परन्तु फलोंको भोजनके तौरपर खाना अधिक लाभदायक है। संसारके जितने प्रकारके भोज्य पदार्थ हैं, उनमें फल ही सर्वाङ्गपूर्ण आहार हैं। प्रत्येक फल जो अपनी स्वाभाविक दशामें बिना तकल्लुफ किये हुए, खाया जायेगा, उसमें शरीरके पोषण करने योग्य तमाम तत्व उपस्थित होंगे। फलोंको हलाल करके और नमक, मिर्च, मसाला खटाई आदि डालकर खानेसे कोई विशेष लाभ नहीं होता। यदि फलोंको स्वाभाविक रीतिसे दांतसे काट कर खाया जाय तो निस्सन्देह लाभ होगा और साथ ही साथ अगले आठ दांत भी सुरक्षित रहेंगे जो वस्तुओंको काटकर न खानेके कारण निकम्मे और रोग ग्रसित रहते हैं।

फलाहारकी मात्राके विषयमें एक अमेरिकनका मत है कि प्रत्येक पुरुषको ६ से ८ छटांक तक खुराक, जिसमें पानी न मिला हो, एक दिनके लिये काफी है। इस हिसाबसे आध पाव सूखे मेवे और तीन छटांक ताजे फल काफी हैं। इनके साथ ही एक सेर या डेढ़ सेर ताजे मौसमी फल दिन भरके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल काफी हो सकते हैं। यह खुराक पूरे तन्दुरुस्त आदमी के योग्य है। गर्मीकी ऋतुमें ताजे फलोंकी मात्रा कुछ ज्यादा बढ़ायी जा सकती है और सूखे फल और मेवेकी मात्र कम की जा सकती है।

अधिक मात्रामें फल खाना स्नायु-रोगियों तथा चर्म-रोगियों के लिये बड़ा हितकर है। निस्सन्देह फलोंका अधिक व्यवहार शरीर-वृद्धि और चर्म-दोष नष्ट करनेकी शक्ति रखता है। फलाहारसे शरीरके विष बलात् बाहर निकल जाते हैं। इङ्गलैण्डके एक प्रसिद्ध डाक्टरका मत है कि कैंसर-नासूरके रोगमें केवल ताजे फल खाना एक लामिसाल एलाज है; ऐसे रोगीको पानी बिल्कुल न पिलाया जाये। मनुष्यको प्यास सिर्फ अप्राकृतिक और मसालेदार भोजन करनेसे लगती है। यदि पके हुए पदार्थ और नमक छोड़कर सिर्फ फलोंपर ही रहा जाये, तो पानी पीने की जरूरत ही न रहेगी।

मिश्रित भोजनमें फलोंको सदा भोजनके प्रारम्भमें खाना चाहिये। भोजनके पदार्थोंमें यदि पकाये और बिना पकाये हुए दोनों प्रकारके पदार्थ हों, तो बिना पकायी वस्तुएं प्रथम खा लेनी चाहिये। यदि भोजनके साथ मिष्टान्न भी हों, तो मिष्टान्न को प्रथम खाना चाहिये। परन्तु जिनकी पाचनशक्ति खराब हो, उन्हें फलोंको भोजनके साथ न खाकर अकेला ही खाना चाहिये। वे चाहें तो फल खानेके कुछ देर बाद थोड़ा हल्का आहार कर सकते हैं।

फल खानेकी आदतसे चर्बीका बढ़ना कम होता है और अम्ल-पित्त रोग सुगमतासे मिट जाता है। अंगूर, अनारका रस ज्वरमें बड़ा उपकारी है। फलोंके रसमें यह अद्भुत शक्ति है कि वह शरीरके उस विषको मूत्र या मलद्वारसे निकाल फेंकता है जो विष कभी-कभी शरीरमें जमा हो जाता है। मूत्राशय सम्बन्धी कितने ही रोगोंमें फलोंका रस उत्तम गुण देता है। टाइफायेड ज्वरमें उस रोगके जन्तु आहार नलिकामें होकर रुधिर और उसके परमाणुओं पर आक्रमण करते हैं और शरीर को कड़े विषसे भर देते हैं। उन जन्तुओंकी गतिको निर्बल करके उन्हें मार डालनेका काम फलोंके रससे होता है। जिनको अन्तरसे सिर दर्दका दौरा रहता हो, उन्हें दर्द होनेके दो-तीन दिन पहले ही से फल खाने चाहिये, इससे बहुत लाभ होगा। फलोंका आहार रोगोत्पादक जन्तुओंका नाश कर देता है। फलाहार शरीरकी सहन-शक्तिको बढ़ाता है। फल सुगमतासे पचते हैं और पेटकी खराबियोंको दूर करते हैं। रुधिरमें फलोंका क्षार मिलनेसे पेशाब खुलकर आता है। पकानेसे भोजनके बहुत से क्षार नष्ट हो जाते हैं, फल उन्हें पूरा कर देते हैं। इसलिये फलोंको खुराकका काम देनेवाला गिननेके सिवा दवाका काम देने वाला भी गिनना चाहिये। अतः पकायी हुई खुराक खानेवाले लोगोंको ताजे और सूखे फल भी खाने चाहिये।

कुदरती रीतिसे पके हुये फल बहुतसे अच्छे-अच्छे गुणोंसे भरपूर होते हैं। परन्तु सूखे फल भी ताजे फलोंके समान ही गुणकारी होते हैं, क्योंकि उनका सारा तत्व उन्हींके भीतर रहता है। उन्हें खानेसे प्रथम कुछ देर पानीमें भिगो रखना चाहिये, जिससे वे फूल जायें, और नरम हो जायें। किन्तु उन्हें उबालना न चाहिये।

जो लोग यह ख्याल करते हैं कि फलोंमें अन्य पदार्थोंकी सी पोषण-शक्ति नहीं है और केवल फलाहार करनेवाले मनुष्य उतने शक्तिशाली नहीं होते, जितने कि अन्नाहारी और मांसाहारी मनुष्य होते हैं वे बड़े भ्रममें हैं। फलाहारकी शक्तिका प्रमाण केवल एक इसी बातसे लगता है कि अफ्रीकाका गोरिल्ला जो केवल फलों ही पर बसर करता है, इतना शक्तिशाली होता है कि वह शेर सरीखे बलवान पशुको बड़ी सरलतासे परास्त कर देता है और शिकारियोंकी बन्दूकको सेठेंकी तरह मोड़ देता है।

ऐसी दशामें हम स्वयं समझ सकते हैं कि फलोंसे हमको क्या लाभ हैं और हमें फल ही को अपना आहार क्यों बनाना चाहिये। यदि अप्राकृतिक और कृत्रिम पदार्थोंको छोड़कर मनुष्य फलाहार करने लग जाये तो कितना लाभ होगा यह सहज ही सोचा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मका स्वरूप

श्री हीरेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए०, बी० एल०

यहां हम वेदान्तदर्शन, उपनिषद् आदिके आधार पर यह देखनेका प्रयत्न करेंगे कि ब्रह्मका स्वरूप कैसा है।

उपनिषदोंमें जहां कहीं भी ब्रह्मका प्रसंग आया है उसको नेति-नेति कहा है। आप ब्रह्मके सम्बन्धमें जो कुछ भी वहां देख सकते हैं उसका तात्पर्य यही है कि वह निर्विशेष, निरुपाधि, निर्विकार और निरञ्जन है। और इसीलिये उपनिषदोंने उसके वर्णनमें सर्वत्र नकारसे ही काम लिया है। वृहदारण्यकोपनिषदमें आता है—

तद्ब्रह्म अक्षरं अस्थूलम् अनणु अह्रस्वद् अदीर्घम् अलोहितम् अश्रोत्रम् अवाक् अमनः अतेजस्कम् अप्राणम् अमुखम् अमात्रम् अनन्तरम् अबाह्यम्।

माण्डूक्यमें आता है—

नान्तः प्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञान घनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं........स आत्मा स विज्ञेयः।

कठोपनिषद्में आता है—

अशब्दमस्पर्शं रूपमव्ययं
तथारसं नित्यमगन्धवच्चयत्।
अनाद्यनन्तं महतः परंध्रुवम्
निचाय्यतंमृत्युमुखात् प्रमुच्यते।

अर्थात् उस अशब्द, अरूप, अस्पर्श, अव्यय, अरस, अगन्ध, अक्षय, अनादि, अनन्त, महत, परात्पर वस्तुको जान लेनेसे जीव मृत्युसे छुटकारा पा लेता है।

ऐसी दशामें स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि फिर उन्हीं उपनिषदोंमें ब्रह्मको सच्चिदानन्द कैसे कहा गया है। यहां पर इस बातको समझ लेना बहुत जरूरी है कि ऋषियोंने ब्रह्मको सत् और असत् दोनों ही कहा है। श्वेताश्वतरमें कहा है—

नसत् नचासत् शिव एक केवलः।

गीतामें भी कहा है—

अनादिमत्परं ब्रह्म नसत्तनासदुच्यते।

इसी प्रकार ब्रह्मको चित् और अचित् भी नहीं कहा जा सकता। योग वाशिष्ठमें कहा है—

व्यश्चेतनोऽपि पाषाणः।

महाभारतमें कहा है—

परंब्रह्म निदुःखमसुखञ्च।

अर्थात् ब्रह्म सुख दुःख विरहित है। 'आनन्तं नन्दनातीतं' कहकर आनन्दमय और नन्दनातीत दोनों ही कहा है। इसीलिये उपनिषदोंमें अन्तमें यही सिद्धान्त स्थिर किया है कि वह न तो चक्षुसे ग्राह्य है, न वाणीसे, न इन्द्रियोंसे और न तपस्या अथवा कर्मसे। श्रीशंकराचार्यने वेदान्त भाष्यमें जहां इसका प्रसंग आया है वहां एक प्राचीन आख्यायिकाका उल्लेख किया है। आख्यायिका इस प्रकार है—वाष्कलिने जब बार बार महर्षि वाध्वसे ब्रह्मके स्वरूपके विषयमें प्रश्न किया तो उन्होंने मौन ग्रहण कर ही ब्रह्मका निर्देष किया। कारण भी स्पष्ट है। जब स्पष्ट रूपसे कहा है, **न चक्षुर्गच्छति न वाक् गच्छति न मनो** आदि, तो भला उसका उपदेश किया किस प्रकार जाये। इसीलिये तो कहा है—

अथदेवतद् विदिताद् अथो अविदिताद् अधि।

अर्थात् उसको विदित अविदित कुछ नहीं कह सकते। यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि ब्रह्म अज्ञेय क्यों है। इसका उत्तर दो तरहसे दिया जा सकता है। एक तो यह कि ब्रह्म जब शाश्वत विषयी (Eternal Subject) है तो फिर वह विषय (Object) किस प्रकार हो सकता है। बृहदारण्यकमें कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये नेदं सर्वं विजानाति तंकेन विजानीयात्।
विज्ञानात्परे केन विजानीयादिति ॥

अर्थात् जो स्वयं ज्ञाता है उसे कोई जानेगा ही किस प्रकार। अतः जो शाश्वत विषयी है वह कभी भी दृश्य, निमित विषय नहीं हो सकता। और इसीलिये वह अज्ञेय प्रतीत हो रहा है।

इस प्रश्नका दूसरा उत्तर यह है कि वह जब निरुपाधि है, तब कभी ज्ञानका विषय नहीं हो सकता। किसी पाश्चात्य दार्शनिकने ठीक ही कहा है कि किसी वस्तुको मननका विषय बनानेके लिये उसे उपाधि द्वारा उपाहित करना पड़ता है। और ब्रह्म जब निरुपाधि है तब वह अवश्य ही देशातीत, कालातीत और निमित्तातीत है और इसीलिये वह ज्ञानका विषय नहीं हो सकता। अनन्त ब्रह्मका अर्थ निष्कलसे है, अर्थात् वह देशातीत है। अनादि और सनातनका मतलब यह है कि वह कालसे भी परे है। देश-कालसे जिस प्रकार ब्रह्म परे है उसी प्रकार निमित्तसे भी परे है, उसमें भला विकार कैसे हो सकता है? ब्रह्म निर्विकार है, इसीसे उसको **अजो नित्यं शाश्वतोयं पुराणः** कहा गया है। इन सबसे यही मतलब निकलता है कि ब्रह्म अज्ञेय है। किन्तु यह समझ लेना चाहिये कि वेदान्तका अन्तिम वाद अज्ञेयवाद ही नहीं है। उपनिषदोंमें जहां इस अज्ञेयवादको प्रमाणित किया गया है, वहां उसको सोपाधि, सगुण या बालक भी कहा है। प्रश्नोपनिषदमें स्पष्ट उल्लेख है—

एतद् वै सत्यकाम परञ्च अपरञ्च ब्रह्म।

अर्थात् ब्रह्म पर भी है, अपर भी। वृहदारण्यकमें भी ब्रह्मको मूर्त्तामूर्त्त, मर्त्यामर्त आदि कहा है।

यह बात यहां जान लेनी चाहिये कि निर्गुण ब्रह्मका निर्देश उपनिषद 'तत्' शब्द द्वारा करते हैं और सगुण ब्रह्मका 'सः' शब्द द्वारा। दूसरी बात यह है कि निर्गुण ब्रह्मके लिये सदा नपुंसक लिंगका व्यवहार उपनिषदोंमें हुआ है और सगुण ब्रह्मके लिये पुल्लिंगका। पर वास्तवमें बात ऐसी है कि निर्गुण या सगुण ब्रह्ममें कोई विभेद नहीं है। अन्तर जो कुछ है वह केवल भावका है। इस सम्बन्धमें उपनिषदका यह मन्त्र ध्यान देने योग्य है—

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरँशुद्धम् पाप विद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथात-
थ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः सभाभ्यः।

भागवतमें कहा है—

सर्व्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूयन्॥

निर्गुण ब्रह्म सगुण किस प्रकार होता है इसका उत्तर उपनिषद यह देता है कि ब्रह्म जब माया उपाधि अङ्गीकार करता है तो निर्गुण सगुण हो जाता है। **मायिनन्तु महेश्वरम्** का स्पष्ट अभिप्राय ही यह है। जिस प्रकार मकड़ी जाला तानकर अपनेको उसीमें घेर लेती है उसी प्रकार ब्रह्म अपनेको मायाजालमें आवृत्त कर सगुण सोपाधि हो जाता है। तैत्तिरीयमें आया है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
ये न जागाति जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

जिससे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके द्वारा जीते हैं और फिर जिसमें विलीन हो जाते हैं वही ब्रह्म है। इस ब्रह्मके सम्बन्धमें उपनिषदोंमें अनेक गम्भीर और भाव भरे मन्त्रोंकी रचना हुई है।

अस्तु, यहां एक शंका हो सकती है कि एक ही ब्रह्मका एकाधारमें सगुण और निर्गुण तथा सविशेष और निर्विशेष होना किस प्रकार सम्भव है। इसका एकमात्र उत्तर यही है कि बुद्धि (intellect) के आगे जो बोधि (intuition) नामकी चीज है उसके लिये यह अगम्य नहीं है।

अतएव ब्रह्मको एक ही आधारमें सगुण और निर्गुण, सविशेष और निर्विशेष, सोपाधि और निरुपाधि तथा सविकल्प और निर्विकल्प बतला कर उपनिषदने विरुद्ध धर्मोंके समत्वका विधान किया है। किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि सगुण और निर्गुण, सविशेष और निर्विशेषमें कुछ तत्वान्तर नहीं है; एक ही ब्रह्मका भावान्तर मात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-स्रोत तथा स्वास्थ्य

प्रोफेसर भवानी प्रसाद गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

शरीर शास्त्रियोंने परीक्षणों द्वारा पूर्ण रूपसे प्रमाणित कर दिया है कि मानव देहमें रुधिर ही अङ्गों और तन्तुओंका स्रष्टा और पोषक है। उनमें होकर उसका संचार वा परिभ्रमण प्रतिक्षण होता रहता है। रुधिरकी उत्पादिका शक्तिही देहमें सतत क्षीण और नष्ट होनेवाले कोषाणुओं (Cells) और सूत्रों (Tissues) की पूर्ति करती रहती है। आज हम अपने जिन नेत्रोंसे संसारके दृश्योंको देखते हैं,वे एक या दो वर्ष पूर्वके वे ही नेत्र नहीं है। इसी प्रकार हमारी देहको गति प्रदान करनेवाली मांसपेशियाँ (Muscles) और चिन्तन तथा अनुभूतिमें हमको समर्थ बनानेवाला हमारा मस्तिष्क और वात-संस्थान (Nervous System) भी वही पुराना कई वर्ष पूर्वका नहीं है, प्रत्युत हमारे देहके ये सब उपकरण बदलकर सर्वथा नये बन गये हैं। हमारे शरीरके सारे मृदुभाग ऐसे वेगसे परिवर्त्तित होते रहते हैं कि इस शरीरका अधिकांश प्रायः कुछ ही मासोंमें वा अधिकसे अधिक कुछ वर्षोंमें बिलकुल नया बन जाता है। यह नवीकरण-कार्य रुधिरके द्वारा ही होता है। इसीके द्वारा नवीन तन्तुओंका निर्माण होकर देहकी नव रचना सदा होती रहती है।

जो शक्ति नवनिर्माण और पोषणका कार्य करती है, वही देहके चिकित्सन वा स्वस्थी-करणकी सम्पादिका भी होनी चाहिए। क्योंकि क्षति-प्राप्त अङ्गोंको पूर्व अवस्थाको प्राप्त करानेवाली चिकित्सनकी प्रक्रिया भी वस्तुतः उस प्रक्रियासे विभिन्न नहीं है, जो प्रतिदिन अङ्गोंके साधारण सुधार वा मरम्मतके रूपमें नित्य होती रहती है। यह कार्य रुधिरके द्वारा ही होता है। जहां कहीं किसी अंगको हानि पहुंचती है वहां रुधिरके श्वेताणु (White Cells) बड़ी संख्यामें एकत्र हो जाते हैं। वे रक्तवाहिनियोंकी भित्तियोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं, विक्षत अंगोंके तलपर फैल जाते हैं और किसी भग्न अस्थिके सिरोंको जोड़ने के लिये कौशल पूर्वक एक नयी सूत्र-रचना कर देते हैं। इससे उक्त अस्थिका निरावरण भाग भी ढका जाता है। हमारी देहपर जब कभी त्वचा विक्षित होकर छिल जाती है, तो हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि रुधिर अपनी उत्पादिका चिकित्सा सामर्थ्यके द्वारा उसपर नयी त्वचा बना देता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि रुधिरमें प्रत्येक प्रकारके रोग और आघातसे युद्ध करनेकी पूर्ण शक्ति है और स्वच्छ रुधिरका महत्व सर्वोपरि है। स्वच्छ रक्त, चिकित्सन-क्रियाके अद्भुत कार्य और चमत्कार सम्पादित करता है। अस्वच्छ वा दूषित रुधिर चिकित्सनके इस कार्यमें बहुधा बिलकुल विफल रहता है। क्योंकि वह विषोंके संघातक प्रभावसे दूषित होता है। यही कारण है और जो शल्य चिकित्सकोंको भले प्रकार ज्ञात है कि मांस काटने और मद्य बेचनेका व्यवसाय करनेवालोंके क्षत (जख्म) कठिनतासे अच्छे होते हैं। स्वच्छ रुधिरवालोंके क्षुद्र-क्षत भी सुगमतासे शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं। किन्तु अस्वच्छ रुधिरवाले उक्तजनोंके क्षत उनके जीवनको संशयमें डाल देते हैं।

रुधिरकी रसायनिक और अणुवीक्षण द्वारा की गयी परीक्षा प्रकट करती है कि रुधिरका मुख्यघटक जल है और इस जलमें आहारके तत्व घुले रहते हैं, जिनको पाचन संस्थानने पचाकर कुछ अति सूक्ष्म कोषाणुओंका रूप दे दिया है। रुधिरमें विषाक्त गैसों और कुछ अन्य विषैले द्रव्योंकी मात्राएं भी पायी जाती हैं, जो देह तन्तुओंमें लगातार बनते रहते हैं। मानव देह विष रचनाका कार्यालय (Factory) है। प्रत्येक क्रियाशील अंगमें विषोंका निर्माण उसी प्रकार होता रहता है, जिस प्रकार अग्निके जलनेपर धुएं और राखकी उत्पत्ति होती रहती है। अतः मस्तिष्क, मांसपेशी तथा ग्रन्थि आदि प्रत्येक अंगकी क्रियाशीलताका परिणाम आहारके ग्रहणके साथ-साथ विष द्रव्योंके रूपमें परिणित भी होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब विचारणीय विषय यह है कि मानव जीवनके इस प्रमुख स्रोत रुधिरको स्वच्छ किस प्रकार रखा जाये। रुधिर अपनी स्वाभाविक स्वच्छावस्थामें क्षारीय (Alkaline) होता है। यह क्षारीय अवस्था रुधिरके कोषाणुओंकी क्रियाशीलताकी रक्षाके लिये अतीव आवश्यक है, क्योंकि हमारी देहके सूत्रोंको उसीसे पोषण प्राप्त होता है। देह-तन्तुओंके दूषित द्रव्यमलों और विषों तथा आमाशय और अन्तरोंमें उफानसे उत्पन्न अम्लों (Acids) के पोषणसे रुधिरकी क्षारीयता घट जाती है। यदि मनुष्यमें सुस्त पड़े रहने और बैठे रहनेका व्यसन हो, यदि वह व्यायाममें प्रमाद करे, अस्वच्छ वायुमें रहे, मद्यपान करे, और शर्कराका अत्यन्त सेवन करे और ज्वर तथा सन्धिवात रोगमें ग्रस्त रहे तो रुधिरकी आवश्यक क्षारीयता घट जाती है। कई अम्ल (Acid) को उत्पन्न करनेवाले आहार श्वेतसारीय द्रव्य और विशेषतया मांस रुधिरकी क्षारीयताको कम कर देते हैं। सब प्रकारके तीक्ष्ण पदार्थ कालीमिर्च, राई, लाल मिर्च, और अदरक, सोंठ आदि प्रचलित मसाले भी रुधिरकी क्षारीयताके नाशक हैं। अति भोजनसे भी रुधिर विषाक्त हो जाता है। अति कार्य्य भार और निद्राकी न्यूनता भी रुधिरकी क्षारीयताको घटा देती हैं। तम्बाकूका प्रत्येक प्रकारका प्रयोग सिगरेट आदिके रूपमें रुधिरकी स्वच्छताका घोर शत्रु है। अतः हमको इस रुधिररूपी जीवनके स्त्रोतको निर्मल, स्वच्छ और विशुद्ध रखना है तो उक्त अप्राकृतिक आहारोंको अपने पास तक न फटकने देना चाहिए और फल, शाक, अन्न आदि प्राकृतिक आहारोंसे ही विशुद्ध रुधिरकी उत्पत्ति और प्राप्ति करनी चाहिए।

आजकलकी औषध-चिकित्सा-पद्धतिमें एक यह मिथ्या धारणा फैली हुई है कि रुधिरको कुछ रक्त शोधक औषधियोंके सेवनसे शुद्ध बनाया जा सकता है। यह बड़ा भारी भ्रम है और इससे बड़ी हानि पहुंची है। वस्तुतः कोई भी औषधि ऐसी नहीं है, जो रक्त शोधक हो। रुधिरमें कोई द्रव्य डालकर उसको शुद्ध नहीं किया जा सकता, प्रत्युत उसमेंसे कुछ दूषित द्रव्य निकाल कर ही उसका संशोधन हो सकता है। जल सर्वोपरि स्वच्छता संपादक द्रव्य है और विशुद्ध जलका यथेष्ट सेवन रक्तशोधनका अमोघ उपाय है। ओषधियोंके द्वारा रक्तशोधनका प्रयत्न तो वैसा ही निरर्थक है, जैसे कोई मनुष्य मैले वस्त्रोंको और मैल लगाकर शुद्ध करनेका विफल प्रयत्न करता है। यदि जनता सात्विक-आहार और सात्विक-जीवन-निर्वाहका जीवनके प्रारम्भसे ही अभ्यासी बने और बालकोंको आदिसे ही इस प्राकृतिक आहारके पथपर आरूढ़ किया जाये तो रुधिरके संशोधनकी समस्या ही उपस्थित न हो और मनुष्य सुखमय जीवनके परम कल्याणके भागी बनें। स्वच्छ शरीरमें ही स्वच्छ आत्माका निवास रह सकता है। शारीरिक और आत्मिक उन्नति अन्योन्याश्रित है। अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि ही मानव धर्म है। परम पिता परमात्मा प्रत्येक पुरुषको इस सत्पथके अवलम्बकी सुमति प्रदान करे।

प्रत्येक व्यक्तिमें किसी-न-किसी आधारपर मनको केन्द्रित करनेकी क्षमता होती है। लेकिन आध्यात्मिक विकासके लिये ध्यान और एकाग्रताको अधिक बढ़ाना चाहिये। जिसमें मनकी एकाग्रता थोड़ी बहुत भी होगी वह अपेक्षाकृत अधिक उद्योगी और उत्साही होगा तथा अधिक सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है। वह अधिक कार्य अल्पसमयमें करनेकी क्षमता रखता है। एकाग्रता या मनोनिग्रहका अर्थ मस्तिष्कपर अनावश्यक जोर डालना या मनसे द्वन्द्व युद्ध करना नहीं।

— श्रीज्ञानवर्द्धन भिक्षु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणायामसे स्वास्थ्य तथा आयुकी वृद्धि

श्री स्वामी सर्वानन्द सरस्वती

भगवानने मनुष्यको कमसे कम सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीवित रहनेके लिये भेजा है। परन्तु मिथ्या आहार-विहार अनियमितपन और स्वास्थ्य-विषयक अज्ञान इत्यादि कारणोंसे उसने स्वयं अपनेको अल्पायु बना लिया है। आयुर्वेद शास्त्रके जाननेवालोंका कथन है कि शरीरमें दो प्रकारकी शक्तियाँ खास कर काम कर रही हैं—एक पाचनशक्ति और दूसरी रेचन या उत्सर्जन शक्ति। हवा, पानी और भोजन तीन प्रकारका भोजन हम लेते हैं। पाचनशक्तिका काम है इस अहारको ठीक तौरसे पचाकर हमारे शरीरको पुष्ट करना। इसी प्रकार उत्सर्जन शक्तिका यह कार्य है कि हमारे शरीरके अन्दर सदैव जो विकार और मल अर्थात् विजातीय द्रव्य उत्पन्न होते रहते हैं उनको बाहर निकालती रहे। ये दोनों शक्तियां जब अपना काम ठीक-ठीक करती रहती हैं, अर्थात् दोनोंमें साम्य स्थापित रहता है, तब वह हमारे शरीरकी स्वस्थ दशा कहलाती है, और जहां इनमें बिगाड़ पैदा हुआ कि हमारा शरीर रोगी हो जाता है।

प्राणायामका पाचन और उत्सर्जन दोनों शक्तियोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। अर्थात् प्राणवायु यदि अच्छी तादादमें और ठीक रीतिसे हमारे शरीरमें पहुंचती रहती है, तो वह हमारे आहारको पचाती है, खूनमें मिलाकर उसे शुद्ध करती है, और अपनी तीव्रतासे मलोंको जलाती है। इतना ही नहीं, बल्कि मल, मूत्र, प्रस्वेद (पसीना) और अपान वायुके द्वारा शरीरके सभी विकारोंको यह प्राणवायु ही अपनी शक्तिसे बाहर निकालती रहती है। प्राणवायु हमारे श्वाससे तो अन्दर जाती ही है, इसके सिवाय करोड़ों रोम छिद्रोंसे भी बाहर निकलती रहती है सबसे अधिक अपानवायु प्रश्वासके द्वारा इस शरीरके अन्दरसे निकलती है। शरीरके दोषोंकी सख्या डाक्टरोंने ५८०० केलोरी मानी है। इसमेंसे प्रश्वास द्वारा २०००, पसीना द्वारा १६००, मल द्वारा १२०० और मूत्र द्वारा १००० केलोरी के दोषोंके निकालनेकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार यदि हमारी उत्सर्जन शक्ति बराबर काम करती रहती है, तो शरीर निर्विकार, मल रहित, शुद्ध अतएव आरोग्य रहता है। भूख अच्छी लगती है, और शारीरिक तथा मानसिक कार्योंमें उत्साह उत्पन्न होता है।

उपर्युक्त पाचन और उत्सर्जन शक्तियोंमें समता रहे, वैषम्य प्राप्त न हो—इसके लिये आवश्यक है कि अधिकसे अधिक प्राणवायु हम अपने फेफड़ोंमें पहुंचायें। यह काम प्राणायामके द्वारा हो सकता है। यों तो जैसा कि हम कह चुके हैं, प्रत्येक मनुष्य जान-अनजानमें प्राणायाम किया ही करता है, परन्तु परमात्माने हमको ऐसी शक्ति दी है जिससे हम विशेष रूपसे प्राणवायुको ग्रहण करके और ज्ञान पूर्वक श्वास-प्रश्वासकी क्रिया करके अधिकसे अधिक प्राणवायु ग्रहण कर सकते हैं। प्राणायाममें जब हम प्राणवायुको जोरसे और लम्बी धारामें अन्दर खींचते हैं, तो सम्पूर्ण शरीरमें उसका संचार हो जाता है और उसको नियमसे रोकने पर वह मलोंको दग्ध करती है, और जब हम जोरसे वायुका लम्बा प्रवाह बाहर निकालते हैं, तो शरीरकी खराबियां निकल जाती हैं। जैसे जोरसे आंधी आने पर वायु इधर-उधरकी सारी गन्दगीको उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार शरीरके प्रत्येक कोठेकी खराबी जोरसे हवा खींचने और छोड़नेसे निकल जाती है।

प्राणायाम एक प्रकारसे फेफड़ोंका व्यायाम है। इससे फेफड़े तो मजबूत बनते ही हैं, इसके सिवाय छातीका विस्तार भी बढ़ता है। वक्षस्थलकी पेशियां लोहेके समान कस जाती हैं और काफी बोझ उठा सकती हैं। प्रोफेसर राममूर्ति इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिशाली सज्जनोंने इसी प्राणायामके बल पर अस्सी मन वज़नी हाथीको अपने वक्षस्थल पर धारण करनेकी क्षमता प्राप्त की है। इसके विरुद्ध जो लोग श्वासविज्ञानको नहीं जानते, वास्तविक रीतिसे श्वास-प्रश्वासकी क्रिया नहीं करते और न प्राणायाम का ही अभ्यास करते हैं, उनके फेफड़े कमजोर पड़ जाते हैं। ऐसे स्त्री-पुरुषोंके फेफड़ोंके सवासात करोड़ वायुकोषोंमें-से बहुत थोड़े वायुकोष अपना काम करते हैं। शेष वायुकोष बेकार और प्राणवायुसे वंचित पड़े रहते हैं। जैसे सूर्यप्रकाशसे रहित कोठरीमें रोगके जन्तु उत्पन्न होते और बढ़ते हैं, उसी प्रकार फेफड़ोंमें प्राणवायुके ठीक-ठीक न पहुंचनेसे, क्षय इत्यादि रोगोंके जन्तु पैदा हो जाते और बढ़ने लगते हैं। प्राणायामके अभ्यासी—पुरुष अथवा स्त्री—को क्षय,निमोनिया, श्वास इत्यादि फेफड़ोंके रोग होनेका बिलकुल भय नहीं रहता। ऐसा निश्चय किया गया है कि संसारमें प्रत्येक पांच मौतोंमें-से एक मौत फेफड़ेके रोगोंसे होती है। इसी प्रकार पन्द्रह वर्षकी आयुके ऊपर कुल मृत्युसंख्यामें-से एक तृतीयांश मनुष्य यक्ष्मा यानी क्षय अथवा फेफड़ोंके अन्य रोगोंसे मरते हैं। मनुष्य दुष्कालसे इतने नहीं मरते जितने प्राणवायुके न मिलने अथवा उसको ठीक तौरसे ग्रहण न कर सकनेके कारण मर रहे हैं। इसलिये जो स्त्री और पुरुष प्राणायामके अभ्याससे प्राणोंकी गति बढ़ाते हैं, जो गहरे लम्बे श्वास-प्रश्वासोंके द्वारा रेचकको सिद्ध करके फेफड़ोंसे अपानवायुको निकाल देते हैं, जो शुद्ध प्राणवायु द्वारा फेफड़ोंके मैले रक्तको भली भांति शुद्ध कर लेते हैं, जो हृदय-मन्दिरकी धमनियोंके द्वारा शुद्ध रक्तका संचार साधारण तौरपर सारे शरीरमें और विशेष तौर पर मस्तिष्कमें कर लेते हैं, उनका शरीर सदैव स्वस्थ और मन हमेशा शान्त रहता है। उनकी आत्मा संयत होती है। मनमें बुरे विचारोंका प्रादुर्भाव कभी नहीं होता। उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति स्वाभाविक ही होती रहती है। शरीरकी शक्ति और सौन्दर्य बढ़ता है और वे पूर्णायुका पवित्रतापूर्वक भोग करते हैं।

जब शरीर और मनका स्वास्थ्य बढ़ेगा, तब आयु बढ़ेगी ही—इसमें सन्देह नहीं। तथापि अब हम यहां पर इस बातका सूक्ष्म विचार करते हैं कि प्राणायामका, दूसरे तरीक़ोंसे, हमारी आयुपर क्या प्रभाव पड़ता है। हिन्दू शास्त्रोंका पुराना सिद्धान्त है कि प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्मानुसार जाति, आयु और भोगसे बंधा हुआ है। अर्थात् जैसे उसके कर्म हैं वैसी ही उसको जाति अर्थात् जन्म मिलता है, उसीके अनुसार उसको न्यूनाधिक आयु मिलती है और कर्मोंके ही अनुसार फल या भोग मिलते हैं। प्रत्येक प्राणी इन तीनोंमें बंधा हुआ है।

कर्मफल-भोगके लिये जन्म और आयुकी आवश्यकता है। प्राणीकी आयु क्या चीज है? शास्त्रमें लिखा हुआ है कि **"प्राणो वै भूतानां आयु:"** अर्थात् प्राण ही प्राणियोंकी आयु है। इसलिये श्वास-प्रश्वासकी गतिको रोककर यदि प्राणको हम अपने अन्दर बढ़ा लें तो हमारी आयु भी बढ़ सकती है।

प्राणके बढ़ानेका यह तरीका ही प्राणायाम है। एक साधारण मनुष्य एक मिनटमें सोलहसे अठारह बार तक सांस लेता है और इसी सांसकी गतिके अनुसार हृदय और नाड़ीकी धड़कन भी होती है। यदि हम आवश्यकतासे अधिक बार सांस लेते हैं तो हृदयकी धड़कन और नाड़ीकी गति भी बढ़ जाती है। जैसे कामातुर अवस्था, भयकी अवस्था, अत्यन्त क्रोधकी अवस्था, लोभ, लालच या स्वार्थकी अवस्था, ईर्षा-द्वेषपूर्ण विचारोंकी अवस्था, इत्यादि दशाओंमें हृदयकी धड़कन बढ़ती है और श्वास-प्रश्वास भी स्वाभाविक ही जल्दी-जल्दी निकलने लगते हैं। ऐसी अवस्थाओंमें चित्त भी अशान्त होता है और हृदयकी दुर्बलता बढ़ती है। इसलिये आयु भी कम होती है। परन्तु यदि प्राणायामके अभ्याससे हम श्वास-प्रश्वासकी गतिको बढ़ा सकें—अर्थात् श्वासके लेने, निकालने और रोकनेमें अवधिको बढ़ा सकें, तो स्वाभाविक ही हृदयमें शान्ति आयेगी और हमारी आयु बढ़ेगी। कहते हैं कि योगी लोग तो प्राणायामके अभ्यास से श्वास-प्रश्वासकी गतिको चाहे जितनी अवधि तक रोक कर हृदयकी धड़कन और नाड़ीकी गतिको भी रोके रहते हैं। अर्थात् जहां साधारण लोगोंका श्वास-प्रश्वास और हृदयकी धड़कन मृत अवस्थामें रुकती है, वहां योगी जीवित अवस्थामें ही रोककर अपनी आयुकी अवधि बढ़ाते रहते हैं। सारांश यह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जितनी ही लम्बी और गहरी सांस लेने, छोड़ने और रोकनेका अभ्यास हमको होगा उतनी ही देर-देरमें हमारा श्वास-प्रश्वास निकलेगा; और उतनी ही हमारी आयुकी मर्यादा बढ़ेगी। यही प्राणोंका निरोध, प्राणोंकी गतिवृद्धिका कारण होता है। एक मिनटमें हम जितनी ही कम संख्यामें श्वास लेंगे, उतनी ही हमारी आयु बढ़ेगी और उस संख्यामें जितनी ज्यादती होगी, उतनी ही आयु क्षीण होगी। वैज्ञानिकोंने भिन्न-भिन्न प्राणियोंकी एक मिनटकी श्वास-संख्या और उसकी आयुकी मर्यादा निश्चित की है। नीचे दिये हुए कोष्टकसे इस विषयका खुलासा हो जायेगा।

प्राणी	श्वास-संख्या प्रति मिनट	आयु
शशक	३८	८ वर्ष
कबूतर	३६	८ „
बन्दर	३२	२१ „
कुत्ता	२९	१४ „
बकरा	२४	१३ „
बिल्ली	२५	१३ „
घोड़ा	१९	४० „
मनुष्य	१३	१०० „
हाथी	१२	१०० „
सर्प	८	१२० „
कछुआ	५	१५० „

यह श्वास-संख्या स्वस्थ प्राणियोंकी है। रोगी, शोकी, क्रोधी, कामी, डरपोंक, स्वार्थी और दुर्व्यसनी प्राणियोंकी श्वास-संख्याका कोई प्रमाण नहीं है। इसीसे उनकी आयुका भी कोई प्रमाण निश्चित नहीं हो सकता। श्वासहीके आश्रयसे प्राणियोंका जीवन है, और उसका निरोध करके आयुको दूना, तिगुना और चौगुना तक बढ़ा सकते हैं। जितनी ही लम्बी, गहरी और कम संख्यामें सांस लेनेका हम अभ्यास करेंगे, उतने ही अधिक दिन-तक हम जीवित रह सकते हैं। ऊपर जो सूची दी गयी है, उसमें सर्प और कछुएको देखिये। सर्प अधिकांशमें आयुके ही आश्रय पर रहता है। वायु-भक्षक तो उसका नाम ही है। वह श्वास बहुत ही कम लेता है, और अपने फुफकारके रूपमें बड़ा लम्बा रेचक करता है। इसी प्रकार कछुएको जिन लोगोंने जलके ऊपर नासिका निकाल कर लम्बा पूरक करते देखा होगा, उनको सहज ही मालूम हो जायेगा कि उसकी आयु क्यों अधिक होती है। इन प्राणियोंके फेफड़े ही भगवानने इस तरहके बना दिये हैं कि ये काफी लम्बा रेचक और पूरक कर सकते हैं, और कुम्भकके लम्बे होनेसे श्वास-प्रश्वासकी संख्या आप ही आप घट जाती है, और वायुका आहार भी बहुत अच्छा होता है, क्योंकि प्राणियोंके लिये मुख्य आहार वायु ही भगवानने बनाया है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनि "वाताम्बुपर्णाहारी" अधि-कांशमें प्राणायामके द्वारा विशुद्ध वायुका ही आहार किया करते थे, और इसीलिये वे दीर्घायु तथा अनुपम शक्तिशाली होते थे। उनका शरीर तपाये हुये सोनेकी तरह होता था, और अपनी आध्यात्मिक शक्तियोंसे वे अलौकिक चमत्कारपूर्ण अनेक पुरुषार्थ कर दिखलाते थे।

अब से पांच हजार वर्ष पूर्व, महाभारतके समयतक, हमारे देशमें प्राणायाम और योगका काफी प्रचार था। महा योगेश्वर श्रीकृष्ण, राजर्षि भीष्म पितामह, महामुनि व्यास, बाल ब्रह्मचारी शुकदेव, धर्मराज युधिष्ठिर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, यहां तक कि भीम और दुर्योधन तकके प्राणायामके उल्लेख महाभारतमें मिलते हैं, जो कई दिनतक जलके अन्दर कुम्भक किये हुए पड़े रहते थे। संध्याके साथ प्रत्येक गृहस्थ दिनमें दो-दो तीन-तीन बार काफी प्राणायाम कर लिया करता था, जिससे भारतवर्षकी आयु मर्यादा बहुत बढ़ी हुई थी। मृत्यु तो उनके सामने कोई चीज ही नहीं थी। जब चाहते थे, खुशीसे मर जाते थे, और यदि उनकी इच्छा होती थी, तो प्राणायामके द्वारा मृत्युको भी रोके रहते थे। दोनों दशाओंमें अपनी कृता-र्थता अनुभव करते थे। जब वे समझ लेते कि इस लोकका हमारा कर्तव्य अब पूर्ण हो गया—हमारा कर्मफल-भोग खतम हो गया—तब वे स्वयं भगवानका ध्यान करते हुए, योगाभ्यासके द्वारा, इस प्रकार चोला बदल डालते थे, जैसे हम लोग एक कपड़ेको उतार कर धर देते हैं, और दूसरा पहन लेते हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरसे दूसरे शरीरमें परिवर्तनके सिवाय मृत्यु उनकी दृष्टिमें और कोई चीज नहीं थी। परन्तु हम आजकल मृत्युको एक बहुत बड़ा हौवा समझते हैं। इसका यही कारण है कि हम प्राणायाम और योग साधनके समान मृत्युविजय करानेवाले साधनोंका अभ्यास नहीं करते। इसीसे हमारा हृदय दुर्बल रहता है, और तमाम लोगोंको अल्पायुमें मरते हुए देखकर हम स्वयं भी मृत्युके भयसे कांपते रहते हैं। इसलिये भाइयो, मृत्युके भयको छोड़ो और यथा शक्ति प्राणायामका अभ्यास करके आरोग्य और दीर्घायु बनो।

सिगरेटका विष

श्री डाक्टर ज्ञानचन्द्रजी

उस दिन इतवारकी छुट्टी थी—मुझे मरीजोंसे फुरसत थी। मैं आराम कुर्सी पर लेटा हुआ आंख मूंदे कुछ सोच रहा था। अकस्मात् एक व्यक्तिने आकर मेरी तन्द्रा भंग कर दी। वे नमस्ते करके सामने कुर्सीपर बैठ गये और मुझसे बिना ही प्रश्न किये उन्होंने मेरे पैर पकड़कर गिड़गिड़ाकर कहा—'डाक्टर साहेब, आप प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा यदि मेरा सिगरेट पीना छुड़ा दें तो मेरे परिवारको बचानेका आप पुण्य करेंगे।' मैंने कौतूहल-वश उन्हें ध्यानसे देखा—वे ४० वर्षके सजीले पुरुष थे, उन्हें सिगरेटसे क्या दुख है यह मैं स्पष्ट नहीं समझ सका। मैंने उनसे पूछा—'क्यों, क्या बात है?' उन्होंने कहा, 'मैंने ८ वर्ष की अवस्थामें सिगरेट पीना सीखा था, आज मेरी स्पीड २ डब्बे (१०० सिगरेट) रोज है। मैं Craven A से कम तो पीता ही नहीं हूं। इस समय भी मेरी जेबमें डिब्बा है, मेरे दफ्तरमें १०-१२ डिब्बे हर समय रहते हैं। सिगरेटका मेरा मासिक व्यय दो सौ रुपया तक है। प्रातः उठते ही मैं पाखानेमें घुस जाता हूं, वहां सिगरेटका डिब्बा, माचिस और ताजा स्टेट्समैन मौजूद मिलता है। मैं पाखानेमें बैठकर सिगरेट पीता रहता हूं और अखबार पढ़ता हूं। पूरे १ घण्टेमें धीरे-धीरे दस्त उतरता है। उसपर भी यह तुर्रा है कि नींद खुलते ही पाखाना खाली न मिले, या वहां सिगरेट अथवा अखबार न मिले तो मेरी हाजत बन्द। उस दिन दस्त नहीं होता। इस सिगरेट की वजहसे मैं कई बार जल गया और महीनों मरहम पट्टी करके जख्म अच्छे हुए। एक बार मैंने सोते २ सिगरेट जलाया और दियासलाई कमरेमें फेंक दी—वह पास ही सोई हुयी बच्ची के पालनेमें जा पड़ी। आग धीरे-धीरे सुलगती रही, रातका समय था, हम खुमारीमें पड़े दम खींच रहे थे, कुछ देर बाद बच्ची की चीख सुनायी दी, उठकर देखा तो पालनेसे लपटें निकल रही थीं, लपककर बच्चीको निकाला, वह जलकर बेहोश हो गयी थी डाक्टरको फोन करके बुलाया, उसके पहुंचते २ उसके प्राण उड़ गये। उस दिन मैंने सिगरेटके सब डिब्बे कूएँमें फेंककर कसम खायी थी कि अब सिगरेट न पीऊँगा परन्तु मैं एक दिन भी इस प्रतिज्ञाको न निभा सका। मेरे पेटमें सदैव गड़बड़ी रहती है, न भूख लगती है, न पेट हलका रहता है, न तबियत ताजा मालूम देती है। नहा-धोकर डाक्टरकी दुकान पर ड्यूटी देना मेरा नित्य कर्म है। कभी मेरी, कभी मेरी स्त्रीकी, कभी बच्चोंकी तबियत खराब रहती है और उनके लिये दवाई लानी पड़ती है। १०० रुपये महीनेका यह बिल है। इसी सिगरेटकी बदौलत एक और अभिशाप मुझे मिला हुआ है कि प्रत्येक बार पेट चीरकर Delivery होती है। वह बिचारी गर्भवती हुई कि उसने अपनी मृत्युको निकट आयी समझ लिया। यह तो उसका भाग्य है कि जो Operation के बाद वह जीवित हो जाती है—अन्यथा उसकी आशा नहीं रहती। सिगरेटका अभ्यास हो जानेके बाद थोड़ा शराब पीनेकी भी तबियत हुई। पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा और फिर डटकर पीने लगा। जब कभी बादल घिरकर ठण्ढी हवा चलती है, उस दिन मैं पूरी बोतल बिना सोडा मिलाये पी जाता हूं। तवियतपर सरूर चढ़ता है और दलाल लोग मेरे पास अपनी-अपनी मूर्तियोंकी फरमायश लेकर आते हैं। मैं नशेमें भरकर उनके साथ चल पड़ता हूं। रातभर उसके पास रहा और सबेरे बटुआ खाली करके घर लौटता हूं। मांस भी बहुत खाता था, पर अब नहीं खाता। उसके छोड़नेका कारण एक होटल है। पारसाल मैं बम्बई एक होटलमें एक महीने तक ठहरा। वहां बढ़ियासे बढ़िया मांस पदार्थ मिलते थे। चलती बार मैंने खुश होकर बेहराको पांच रुपयेका नोट बक्सीस दिया और कहा कि तुम्हारे होटलमें बहुत लज़ीज़ मांस खानेको मिलता है। बेहराने सलाम करके कहा—'हुजूर, गौ मांस ऐसा ही लजीज़ बनता है।' मैंने चौंककर उसे झिड़का—'क्या तू महीने भरसे मुझे गौ मांस खिलाता रहा है?' बहरेने झुककर स्वीकृति दी। मैंने आत्म-ग्लानिमें भरकर उसे कमरेसे बाहर कर दिया और किवाड़ बन्द करके सिर पकड़कर रोता रहा। हाय! हाय!! मैंने हिन्दू होकर गौ मांस खाया! तबसे मनने मांसको सर्वथा त्याग दिया है। अब तो मद्य और सिगरेट शेष हैं—मैं शराब भी छोड़ सकता हूं पर सिगरेट नहीं छूटता आप कृपाकर मेरा सिगरेट छुड़ा दीजिये तो इसकी बचतका दो सौ ढाई सौ रुपया प्रति मास मैं आपको भेंट करता रहूंगा। डाक्टर साहब, मेरा उद्धार कीजिये।'

मैंने उनकी कहानी सुनकर उनसे प्रश्न किया—'आपकी आयके क्या स्रोत हैं?'

'मेरे घरमें पिता इतना रुपया छोड़ मरे हैं कि हमारी तीन पीढ़ी बैठी खाये। मेरा निजी व्यवसाय साड़ियोंका है। अच्छी बढ़ियासे बढ़िया सौ रुपये तककी साड़ी खरीदनेवाली देवीकी आंख पहचान हम मुफ्त दे देते हैं। और फिर उससे मिलकर अपना मतलब निकालते हैं। इस प्रकार वेश्या-वृत्ति कुछ अच्छी नहीं लगती।'

मैंने इस वक्तव्यको सुनकर उनसे कहा, 'तब आपका उद्धार नहीं हो सकता।'

मेरे इस स्पष्ट उत्तरको सुनकर उनकी आंखोंमें आंसू आ गये, उन्होंने मेरे पैर पकड़कर कहा, मैं आपको नहीं छोड़ सकता - मैं अपना प्रायश्चित कराने ही यहां आया हूं। यहांसे खाली लौटकर मैं नहीं जाऊंगा।' यह कहकर उन्होंने डिब्बेमेंसे सिगरेट निकालकर मुंहमें दबाया। मैंने उनसे सिगरेटका डिब्बा और माचिस मांगा। वे कुछ झिझके—पर मैंने स्वयं ही हाथ बढ़ाकर उनसे सब चीजें ले लीं और दूर फेंक दिया। मैंने कहा—'आशा है कि आप मेरी इस चिकित्साका पालन करेंगे।' वे कुछ क्षण तक चुपचाप जमीनपर बिखरे हुए सिगरेटोंको देखते रहे, फिर एकाएक आवेशमें उठ खड़े हुए और बोले—

'डाक्टर साहब! मैं आपसे यही चीज़ लेने आया था—सो मिल गयी। मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि आजसे मैं सिगरेट पीऊँ तो मुझे अपनी बच्चियोंका महापाप लगे।' इस बातको कहकर वे सिगरटोंको पैरोंसे रौंदते हुए चले गये।

उपरोक्त बात प्रत्येक सिगरट पीनेवाले अमीर व्यक्तिके घर होती है। गरीब व्यक्ति बीड़ियोंके धुंएमें झुलसते रहते हैं। सिगरेट पीनेकी आदत एक साधारण सत्य है जिसे छोटे-बड़े सब बड़े चावसे करते हैं। जिन्हें सिगरेटसे घृणा है वे भी सोसाइटीके प्रभावमें कभी-कभी पी लेते हैं। जो नितान्त अलग रहते हैं, वे अपने घरमें आने जाने वालोंके स्वागतके लिये इसे रखते हैं। सिगरेटके विषने घर-घर आग लगा रखी है। परन्तु मजा यह कि पीनेवाले इसे बुरी आदत भी कहते हैं और पीते भी हैं और वे छोड़ना चाहते हुए भी इसे छोड़नेमें अस-मर्थ हैं।

शरीर पर इसका घातक प्रभाव पड़ता है। यह मेदेको सिकोड़कर पाचनक्रियाको शिथिल कर देता है और समस्त नर्वस सिस्टम मुर्दा हो जाता है। होंठ काले पड़ जाते हैं, जीभकी स्वादशक्ति कम हो जाती है। तम्बाकू पीने पर निम्न परिणाम होते हैं:—

१—गीली भाप बनती है।

२—कार्बन बनती है। कार्बन गलेमें तथा गले और फेफड़ेकी नलियोंमें जम जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—अमोनिया होता है, जो अधिक काल तक पीते रहनेसे जिह्वाको फाड़ डालता है, गलेको खुश्क करता है, जिससे प्यास बढ़ती है और तीव्र धूम्रपानकी इच्छा जाग्रत होती है। अमोनिया रक्तको भी दूषित करता है।

४—कारबोनिक एसिड 'कोयलेका तेजाब' होता है, जिससे सिर दर्द, अनिद्रा और स्मरणशक्तिका ह्रास होता है।

५—निकोटीन प्रवाहित होती है। निकोटीन एक तीव्र विष है। इसकी एक बूंद खरगोशके मुंहमें डाल दो तो वह तुरन्त मर जायेगा। कुत्तेकी जीभ पर दो बूंद डालो तो वह भी मर जायेगा। निकोटीनको कबूतरकी टांगमें छुआ दो तो वह चार मिनटके अन्दर मर जायेगा। डाक्टर ब्रोडेने बिल्लीकी जीभ पर एक बूंद डाली तो वह पांच मिनटमें तत्काल मर गयी।

६—और भी सूक्ष्म विष हैं। जैसे कोलिडीन, प्रुसिक एसिड, कार्बन मोनक्साइड, फुरफुरल और एक्रोलीन। कोलिडीन जहरीला क्षार है जिससे स्नायु दुर्बल हो जाते हैं और चक्कर आने लगते हैं। प्रुसिक एसिड ज्ञान-तंतुओंको मलिन कर देता है, सिरमें भारीपन रखता है तथा मनमें अरुचि पैदा करता है। कार्बन मोनक्साइड दम घोटकर मार डालनेवाली गैस है। इसका प्रभाव यह होता है कि सांस जल्दी-जल्दी चलने लगती है, हृदयकी गति तेज हो जाती है, रोमांच और ऐंठन होती है, आंखोंकी पुतलियां फैल जाती हैं और ठंढा पसीना, ठंढा बदन तथा बेहोशी पैदा होती है। फुरफुरल मस्तिष्कके ज्ञान तंतुओंको ढीला कर देता है। राजोलीन एक गैस है जो मनमें चिड़चिड़ाहट पैदा कर देती है।

अब प्रश्न यह है कि क्या सिगरेट पीना त्यागा जा सकता है अथवा नहीं? हमारा विश्वास है कि प्रत्येक ऐबका परित्याग सम्भव है। मनका संकल्प ही तप है। जिस चीजको मनने भुला दिया वह छूट गयी। जबतक मन दृढ़ है तबतक वह तप भी अखण्ड है। मैं प्रत्येक सिगरेट पीनेवालेसे कहता हूं कि वह इस ऐबका दृढ़तासे परित्याग करे। सिगरेट पीना सर्वोपरि ऐब है। इसका नैतिक पाप परिवारको कष्ट पहुंचाता है। जरा उस अवस्थाको सोचिये जब एक अज्ञात नववधू एक सिगरेट पीनेवालेके घर पहुंचकर अपने पतिकी अन्य अपरिचित आदतों के अतिरिक्त प्रणयकालसे भी भयभीत रहे। वह पतिके मुंहसे धुएंकी दुर्गन्धको क्यों बर्दाश्त करे और क्यों उसे धीरे धीरे पी जाये। कोमल मिजाज स्त्रियां आरम्भमें दिमागी बू चढ़ जानेके कारण बेहोश हो गयी हैं और इन्हें धीरे धीरे अपना मिजाज उसे सह लेनेके अनुकूल बनाना पड़ा है। वह जीवनपर्यन्त इस अभ्यासको निभाती है—पाठक इस बेबसीको तो समझिये—कैसा पैशाचिक आचार है!

स्त्रीके बाद सन्तति उस दोषमें रंगती है। अपने पिताको पीते देखकर बेटा भी लुक-छिपकर पीता है और बढ़ते-बढ़ते पिताके रिकार्डको तोड़ डालता है। आज स्कूल कालेजोंके विद्यार्थियोंको चुरुट बिना चैन नहीं? इन करोड़ों युवकोंके मुंह में कालिख पोतनेवाले कौन हैं? उनके सिगरेटी पिता। मैं ऐसे सब पिताओंको जलती आगमें कूदकर इस महा पापका प्रायश्चित करनेकी सलाह देता हूं। उन कोमल बच्चोंकी नयी छातीको सिगरेटके धुएंसे झुलसाकर उनके तेज और रक्तको विषैला बनाकर उन्हें क्षयके गढ़ेमें डाल दिया जाता है। उनकी कमर झुकी, आंखोंपर चश्मा ढका कि गढ़ेमें पैर खिसका। इन्हें मृत्युसे कौन रोकेगा?

सिगरेटका तीसरा श्राप परिवारका फूंकना है। घरोंमें आग लग जाना और मृत्यु हो जाना प्रकट सत्य है। दिल्लीके एक सुप्रसिद्ध करोड़पति परिवारमें एक ऐसी ही करुण मृत्यु हुई थी जिसे हम कभी नहीं भूल सकते। सरदीके दिन थे, सेठ साहब रेशमी बिस्तरपर पड़े सिगरेट पी रहे थे—पीते पीते झपकी लग गयी, और सिगरेट वाला हाथ छातीपर आ पड़ा। सिगरेट जल रहा था, उसने कुरतेको पारकर सीनेको जला दिया। चमड़ीपर गर्मी पहुंची ही थी कि उनकी नींद खुल गयी, उन्होंने उस स्थलको मसल डाला। महलमें दौड़ धूप मच गयी, डाक्टर साहबके पहुंचते पहुंचते उनका हार्ट फेल होने लगा था, इन्जेक्शन देनेपर भी चिराग बुझ गया। सेठ साहबके कोमल शरीरपर हम अबतक अफसोस करते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सक हूं, और मुझे पूरा विश्वास है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ेसे बड़ा पियक्कड़ भी प्रकृतिके आसरे इसे छोड़ सकता है। ध्यान रखिये कि मनका संकल्प सबसे पहला मुख्य उपाय है। चाहे जो कुछ हो पर मैं तो इसे पीऊंगा ही नहीं—संकल्प पर डटे रहकर ८-१० दिनमें स्वतः ही मन शान्त हो जाता है और हुड़क मिट जाती है। फिर भी हम कुछ उपाय देते हैं:—

१ सिगरेट एकदम छोड़ देना चाहिये तथा उसको देखने तकसे अनिच्छा कर लेनी चाहिये।

२ मनको सदैव दृढ़ बनाये रखना चाहिये।

३ जब कभी मन न माने, तबियत मचल ही रही हो तो पारिवारिकजनोंमें बैठकर एकान्तता नष्ट कर देनी चाहिये। याद रखो अकेले रहोगे तो व्रत टूट जायेगा। जी मिचलाये तबियत डूबी रहे, नींद न आये, पेटमें कष्ट हो तो 'अश्वगन्धारिष्ट' का सेवन करो। जब कभी आवश्यकता प्रतीत हो— एक मात्रा अश्वगन्धारिष्टको पीलो। अश्वगन्धारिष्ट सिगरेट, मद्य मांस आदि महादोषोंको छुड़ानेमें दिव्य औषधि है। यह उनके शरीरको पूरा करती तथा ज्ञानतन्तुओंको धीरे-धीरे मलिनतासे रहित करती है। 'अश्वगन्धारिष्ट' जितना पुराना होगा उतना ही पुराने पियक्कड़ोंको लाभ देगा। शराब पीनेका अभ्यास भी इससे छूट जायेगा। शराबकी जगह दिनमें २-३ बार इसे पीना आरम्भ कर दो—तबियत शराबसे स्वयं घृणा करने लगेगी।

४ मुंहमें बार-बार पानी भरे तो भुनी सौंफ और छोटी इलायची चबानी चाहिये।

५ हुचकी और शिर दर्द हो तो बिंदालके डोडेंके पानीसे नस्य लेनी चाहिये। (बिंदालके ३-४ डोडें पानीमें भिगादें—४ घण्टे बाद मलकर पानी छान लेना चाहिये। इस पानीकी २-३ बून्दें नाकमें टपकानेसे छीकें आकर बलगम तथा अन्यदोष निकल पड़ेंगे। यह नस्य सप्ताहमें एक बार ही लेनी चाहिये।)

६ मल अवरुद्ध होनेपर रातको सोते समय ३-४ दिन तक गुड़की शक्कर मिला हुआ गरम-गरम दूध पीना चाहिये।

७ मन सदैव प्रसन्न रखना चाहिये।

८ सदैव स्वच्छ रहो और पौष्टिक भोजन करो।

९ यथा सम्भव अपनेको लोगोंमें घिरा रहने दो जो तुम्हारे शुभचिन्तिक हों।

१० अपनी विजय पर गर्व करो।

ध्यान रखिये कि समस्त उपद्रव व इच्छायें दस दिनतक ही रहेंगीं। ग्यारहवें दिन तबियत बहुत हल्की और खुश मालूम देगी। एक पापका बोझ हटता-सा प्रतीत होगा।

तम्बाकू पीनेसे समय भी कितना व्यर्थ जाता है यह भी सोचिये। दो घंटे नित्य इस काममें खर्च हों तो एक वर्षमें ६० दिन खर्च हुये। दस वर्षमें डेढ़ वर्ष खर्च हुआ, पचास वर्षमें साढ़े सात वर्ष व्यर्थ गंवाये गये, और आर्थिक व्ययका तो हिसाब और भी अधिक है। अमेरिकामें एक व्यक्तिकी अभी मृत्यु हुई जो ७५ सिगरेट नित्य पीता था। उसकी मृत्युका कारण निकोटिन विष था। मिस्टर सिम्स समस्त दुनियाका हिसाब लगाकर बतलाते हैं कि प्रतिवर्ष १, ०००, ०००, ००० रुपयोंका तम्बाकू सेवन किया जाता है।

वैज्ञानिक आधारपर यह बात मानी गयी है कि पीने और खाने दोनों क्रियाओंसे प्यास लगती है। मुंह और गला खुश्क हो जाता है और पानी पीनेसे भी प्यास कम नहीं होती। डाक्टर हम्फ्रे ने तम्बाकूका व्यापक प्रचार देखकर कहा था कि बनमानुष भी इसे खाना पसन्द नहीं करेगा, फिर ये बुद्धिमान आदमी इसे क्यों खाते हैं? यह न तो पोषक तत्व है, न पाचक है, न मानसिक और शारीरिक शक्तिको बढ़ानेवाला है। यह तो हमारा प्रबल शत्रु है जो नसोंको काट डालता है, पेटको नष्टकर डालता है, प्यासको बढ़ाता है। जिस भूमिमें तम्बाकूकी खेती होती है वह शीघ्र ही शक्तिहीन हो जाती है, उसमें उर्वरा शक्ति नहीं रहती। जो व्यक्ति सिगरेट पीता है वह अपने इर्द गिर्द ६० फीट तक तम्बाकूकी गन्ध फैलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग तथा उसका उपयोग

श्री बालकराम शास्त्री, सम्पादक 'सन्देश'

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुनः॥

सभी दर्शनोंमें उद्देश्यकी उच्चताके विचारसे योग तथा वेदान्त, यही दो दर्शन अधिक महत्व रखते हैं। सांख्य और योगमें ईश्वरके विषयमें मतभेद होते हुए भी अन्य सिद्धान्तोंमें दोनों प्रायः एक ही हैं। इसीलिये सांख्यको निरीश्वर सांख्य और योगको सेश्वर सांख्य कहते हैं। सांख्य और योग ये दोनों ही कर्मयोग सेवित ध्यान योगका आदर करते हैं। तथा उससे होनेवाली सिद्धियोंका वर्णन करते हैं। ये दोनों उसका चरमफल अपवर्ग बताते हैं। वेदान्त, ज्ञानयोगका ही आदर करता है तथा उसीका फल जीवन्मुक्ति एवं विदेहमुक्ति बताता है। इसीलिये कर्मयोगी गीतामें कर्मयोगको और ज्ञानी ज्ञानको ही प्राधान्य देते हैं। जैसे—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मताबुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरेमां नियोजयसि केशव॥
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीवमे।
तदेकं वद निश्चित्य येनश्रेयोहमाप्नुयाम्॥
लोकेऽस्मिन द्विविधानिष्ठा पुरोप्रोक्तामयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

अर्जुन और भगवानके इन प्रश्नोत्तरस्वरूप वाक्योंसे गीतामें कर्मयोग तथा ज्ञानयोग दोनोंका वर्णन है। 'ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्' इस वाक्यसे अधिकारी भेदसे कर्मयोग और ज्ञानयोग, दोनोंका प्राधान्य सिद्ध है।

गीतामें ज्ञानयोगके लिये सांख्यशब्द और कर्मयोगके लिये योग तथा 'कर्मयोग' शब्द व्यवहृत होते हैं।

'एषातेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगेत्विमांशृणु।
बुद्ध्यायुक्तो ययापार्थ! कर्मबाधं प्रहास्यति॥

यहांपर सांख्य बुद्धि शब्दका ज्ञानयोग और योग शब्दका कर्मयोग अर्थ है। आगे चलकर इसी आध्यायमें कर्मयोगका स्वरूप इस प्रकार दिखाया गया है।

योगस्थः कुरुकर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

परमेश्वरकी आराधनामें तत्पर होकर और कर्मकर्तृत्वाभिमानको छोड़कर कर्म करना और कर्मफलकी सिद्धिमें समता (हर्ष विषाद शून्यता) ही योग कहा जाता है।

इस श्लोकमें निष्काम कर्म ही कर्मयोग रूपमें वर्णित है। आगे चलकर 'योगः कर्मसु कौशलम् कहा गया है। निष्काम कर्म ही कौशल है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥

यहां पर असक्तः स विशिष्यते। निष्काम कर्म करनेवाले कर्म योगीको ही श्रेष्ठ बताया है।

'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचरः।
असक्तोह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः॥
कर्मणैवहि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
'मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यास्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममोभूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥
न मां कर्माणि लिम्पन्ति नमेकर्मफलेस्पृहा।
इतिमां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥
एवंज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपिमुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥
यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥
त्यक्त्वाकर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैवकिञ्चित् करोति सः।
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्व परिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥

इस प्रकार निष्काम कर्मको ही कर्मयोगका स्वरूप दिखाकर अन्तमें कर्मफलोंमें कामनाकी निवृत्तिके लिये मन तथा बाहर इन्द्रियोंके विषयोंसे निरोधको ही उपाय बताया है।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहिह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम्॥
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः॥
एवं बुद्धेः परंबुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

कर्मयोगका फल मुक्ति है— जैसे,

ये मे मतमिदं नित्य मनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तऽनुसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥

भगवान कृष्ण कर्मयोगकी वंश परम्पराका वर्णन करते हुए कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥
स एवायं मयातेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखाचेति रहस्यं ह्येतदुत्तम॥

अब ज्ञानयोगकी ओर दृष्टि दीजिये। इसका भी गीतामें पूर्णतया उल्लेख है।

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञानेपरिसमाप्यते॥
नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
सर्व कर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्नकारयन्॥
विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

अपिचेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥
यथैधांसि समिद्धोग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥
इहैवतैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषंहि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणितेस्थिताः॥

यद्यपि भगवानने अधिकारी भेदसे कर्मयोग तथा ज्ञानयोगका उपदेश किया है किन्तु कर्मयोग चित्त शुद्धिद्वारा ज्ञान योगका साधन है यही गीताके मनन करनेसे प्रतीत होता है। जैसे—

तत्स्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।
योग संन्यस्त कर्माणं ज्ञानसंछिन्न संशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निर्विघ्नन्ति धनञ्जय।
सांख्य योगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥

गीता द्वितीय अध्यायमें स्थितप्रज्ञके लक्षणसे आरम्भ कर अध्यायके अन्त तक ज्ञान योगका ही वर्णन है। और तीसरे अध्यायमें जिसका चित्त अशुद्ध हो उसके लिये कर्मयोगका उपदेश है, जिसका स्वरूप ऊपर वर्णन किया जा चुका है। और चौथे अध्यायमें कर्मयोग और ज्ञान योगके अधिकारियोंका भेद दिखाकर अर्जुनके संशयको दूर किया है। पंचममें ज्ञानयोगके अंग, कर्म संन्यासका वर्णन है और छठें अध्यायमें ध्यान योगका वर्णन है, जो ज्ञान योगका ही अंग है। योग शास्त्रमें इसी ध्यान योगका सविस्तर वर्णन है। श्वेताश्वतर उपनिषद्में भी—

ते ध्यान योगानुगता अपश्यन्
देवात्म शक्ति स्वगुणैर्निगूढाम्।
त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

इत्यादि रूपसे वर्णन है।

योग सूत्रकारने योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः—चित्तवृत्तिके निरोधको योग बताया है। इसकी व्याख्या करते हुए भाष्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारने संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात रूप योगके दो भेद बताये हैं। संप्रज्ञात समाधिमें यद्यपि सुखानुभव रूप चित्तवृत्ति रहती है इसीलिये इसका नाम संप्रज्ञात है, किन्तु उस दशामें भी दुःख और मोहरूप चित्तवृत्तियोंको निरोध है। और असंप्रज्ञातमें द्रष्टा केवल आत्म-स्वरूपमें ही अवस्थित रहता है। सुखानुभव रूप सात्विक चित्तवृत्ति भी उस कालमें नहीं रह जाती है। केवल पूर्व वृत्तियोंका संस्कार मात्र रहता है। उस कालमें वस्तु विज्ञान के न होनेके कारण उस योगका नाम असंप्रज्ञात है। इसी अवस्थाको सूत्रकारने **तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्** सूत्रके द्वारा वर्णन किया है।

चित्तवृत्तियोंके निरोधका उपाय अभ्यास और वैराग्य बताया है। जैसे—**अभ्यासवैरागाभ्यां तन्निरोधः।** चित्तकी स्थिरता और व्याधि आदि विषयोंकी निवृत्तिके लिये **तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्। ततः प्रत्यक चेतनाधिगमोप्यन्तरायाभावश्च।** इन सूत्रोंसे ओंकारका जप और परमेश्वरके ध्यानका विधान किया है।

द्वितीय पादमें कर्मयोगको ध्यानयोगका साधन बताया है।

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः। सहिक्रियायोगः समाधिभावनार्थः क्लेशनन् कारणार्थश्च॥

ध्यान योगके आठ अंग योगशास्त्रमें कहे गये हैं जिनका योग सिद्धिके अतिरिक्त प्रातिस्विक (निजी) फल भी कहा गया है और आज इन्हीं अंगोंके सिद्ध न होनेसे योग सिद्ध नहीं हो रहा है।

शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। स्थिरसुखमासनम्। तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। स्व विषया-संप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम्। तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्य-मिव समाधिः।

ध्यान योगकी सिद्धिका मार्ग बहुतसे आचार्यों ने हठ्योगको भी बताया है। जिसमें नेति-धौति इत्यादिका उल्लेख है। किन्तु हठयोगके बिना भी यमनियमादिके सम्यक् सम्पादनसे ही ध्यान योगकी सिद्धि हो सकती है। और हठयोगकी तरह इसमें कोई आपत्तिकी सम्भावना भी नहीं है। इसीलिये सूत्र, भाष्य और वार्तिककारोंने हठयोगका उल्लेख नहीं किया है। यदि अष्टांगयोगके अभ्यास करनेवालेको आगेका मार्ग न मालूम हो तो उसका अभ्यस्त योग ही आगेके मार्गका प्रकाश कर देता है? जैसे, भाष्यकारने लिखा है—

भूमेरस्या इयमनन्तराभूमिरित्यत्र योग एवो-पाध्याय, कथं। एवं सूक्तम्। योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात् प्रवर्तते। योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्।

यद्यपि योगमार्ग आजकल लुप्त हो गया है फिर भी जो कुछ उपलब्ध हो रहा है उसका अभ्यास करनेसे आगेका योगमार्ग स्वतः प्रकाशित हो जायेगा यही बात **योग एवोपाध्यायः।** इस वाक्यसे भाष्यकारने बताया है।

इस प्रकार योग विषयक पूर्ण मीमांसा करनेपर यही सिद्धान्त स्थिर होता है कि निष्काम कर्मयोग मन्दाधिकारीके लिये ध्यानयोग मध्यम अधिकारीके लिये तथा ज्ञानयोग उत्तम अधिकारीके लिये शास्त्रोंमें वर्णित है। मुक्तिका साक्षात् मार्ग ज्ञानयोग ही है।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय तरति शोकमात्मवित्।

ब्रह्मविदाप्नोति परम्। ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्व पाशैः। इत्यादि श्रुतियोंसे यही सिद्ध होता है।

यम नियमासन प्रणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधवोऽष्टौयोगाङ्गानि। इस प्रकार ध्यानके ये आठ अंग हैं। **अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।**

अहिंसा—समस्त कालमें सब प्रकारसे सभी प्राणियोंका अनिष्ट न करना ही अहिंसा है। और शेष यम नियमादि अहिंसाके ही साधक हैं। अहिंसाके बिना सत्य आदि यमनियम फलीभूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होते। और अहिंसा भी सत्य आदिके बिना असत्य आदि दोषोंसे दूषित होकर फलवती नहीं होती। केवल किसीको मारना ही हिंसा नहीं है। किन्तु मनसे उसका अनिष्ट चिन्तन करना और कटुवाणीसे उसके हृदयको दुखित करना यह भी हिंसा ही है। अहिंसाका फल तो इतना बड़ा है कि अहिंसाव्रती पुरुषके समीप हिंस्र जन्तु भी अपनी हिंसा वृत्तिको छोड़ देते हैं। जैसा कि प्राचीन कालमें ऋषियोंके आश्रमोंके गोव्याघ्र आदिकी मैत्री सुनी जाती है।

सत्य—जैसा देखा हो अथवा मनसे चिन्तन किया हो वैसा ही वाणीसे बोध कराना यही सत्य है। और इसके विपरीत कथनको असत्य कहते हैं, क्योंकि शब्दकी प्रवृत्ति प्राणियों के उपकारके लिये ही हुई न कि प्राणियोंके अनर्थके लिये। जब कि हमलोग अपने विचारोंको दूसरे पुरुष पर प्रकट करनेके लिये शब्दका उचारण करते हैं, जब उस शब्दसे उसकी वञ्चना या भ्रान्ति न हो तो उसीको सत्य समझना चाहिये। जैसे युधिष्ठिरने 'अश्वत्थामाहतः' इस वञ्चक वाक्यका प्रयोग किया वह सत्य नहीं है। यदि किसी सत्य वाक्यसे किसी निरपराध प्राणीका वध होता हो तो उस वाक्यको सत्य नहीं समझना चाहिये। किन्तु वहां अनृत वाक्य ही सत्य है, जैसे चोर डाकुओंके दुराग्रह या भयसे किसी सेठ साहुकारका सत्य पता बता देना ही असत्य है। इसलिये बहुत विचार कर समस्त प्राणियोंके हित योग्य सत्य भाषण करे। सत्य भाषणका फल वाक्सिद्धि कहा है। जैसा कि प्राचीन ऋषियोंमें यह सिद्धि पायी गयी है। वे लोग जो कहते थे वही सत्य हो जाता था।

इसी प्रकार अन्य बातोंको भी समझना चाहिये। इस तरह योगमें तत्पर होनेसे कितना लाभ होता है यह सहज ही समझा जाता है। वस्तविक योग वही है जो अपने साथ-साथ प्राणीमात्रकी भलाईकी ओर प्रेरित करे।

वैदिक सत्य-सुख

पं० गोपालचन्द्र मिश्र, वेद-धर्मशास्त्र-शास्त्री, वेदरत्न

मन (ब्रह्मचर्य)—जीवनके उदात्त सुखके लिये बलकी आवश्यकता होती है। उस बलके साधन का एकमात्र उपाय है—'वीर्यरक्षा'। इसी वीर्यरक्षाका नाम है—'ब्रह्मचर्य'।

वेदोंमें ब्रह्मचर्य एवं ब्रह्मचारीकी बहुत प्रशंसा मिलती है। अथर्ववेदमें एक ही स्थलपर पचीसों मन्त्र ब्रह्मचर्यके महत्वको बतलाते हैं। उनमें बतलाया गया है कि—

'राजा अपने राष्ट्रकी रक्षा, आचार्य अपने ब्रह्मकी रक्षा, कन्या अपने लिये तरुण पतिकी प्राप्ति, गौ, अश्व आदि पशु घास (तृण) खानेका सामर्थ्य, देवता अपना [illegible], इन्द्र अपना स्वर्गाधिपतित्व, ब्रह्मचर्य द्वारा ही कर सकता है।'

—अथर्व ११।५

वेदमें केवल मनुष्यमात्रको ही ब्रह्मचर्यका उपदेश नहीं दिया गया है—अपितु स्थावर-जंगम, जड़-चेतन रूप सारे संसारको इसका उपदेश दिया गया है। यथा—

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः॥
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः॥

—अथर्व ११।५।२०–२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन मन्त्रोंमें कहे हुए पशु-पक्षी आदि सभी अब तक वेदाज्ञाके नियमानुकूल चलते हैं। परन्तु मनुष्य उनसे बुद्धिमें वैशिष्ट्य प्राप्त करके भी इस वेदोल्लिखित आवश्यक कर्त्तव्यकी अवहेलना करता है। इसी अवहेलनाके फलस्वरूप आज समस्त देशमें दुःख-दारिद्रयकी पताका फहरा रही है। और इस पताकाका ध्वंस करनेके लिये देश-विदेशके विज्ञान एवं संपत्तिशास्त्रके विशेषज्ञ सन्ततिनिग्रहकी आवाज उठा रहे हैं और उसके लिये अवैध उपायोंका भी निर्देश करते हैं। यदि अब भी मनुष्य-समाज अपने नियम (ब्रह्मचर्य) पर अटल हो जाये तो इसका परम कल्याण हो सकता है। शतपथ-गोपथादि ब्राह्मणोंमें तो यह बतलाया गया है कि ब्रह्मचारीके ऊपर मृत्यु भी अपना असर नहीं कर सकती। यथा—

ब्रह्म वै मृत्यवे प्रजाः प्रायच्छत्, तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न प्रायच्छत्।

—श० ११।३।३१॥ गो० २।

'परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्मने सम्पूर्ण संसारको मृत्युके अधिकारमें कर दिया, परन्तु ब्रह्मचारीको उसके अधिकारमें नहीं किया।'

ऋग्वेदमें ब्रह्मचारीको देवताओंका एक अंग बतलाया है और प्रशंसामें वैदिक साहित्यकी प्रसिद्ध गुरु-सोम कलहकी घटनामें ब्रह्मचारीको प्रधान सहायक बतलाया है —

ब्रह्मचारी चरति वेविशद् विशः,
स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः
सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः।

—ऋ० १०।१०९।५

'समाजमें रहनेवाला ब्रह्मचारी देवताओंका एक अंग होता है। इस ब्रह्मचारीके द्वारा ही बृहस्पतिने सोमसे हरण की हुई अपनी स्त्री को प्राप्त किया।'

कठोपनिषद्में वाजश्रवसके पुत्र नचिकेताको यमदेवने विद्याके परिज्ञानमें कठिनता बतलाते हुए अनेक प्रलोभन दिये। यहां तक कि—

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके,
सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या,
नहीदृशा लंभनीया मनुष्यैः।

—कठ उ० १।१२५॥

'हे नचिकेता! जो पदार्थ पृथ्वीमें नहीं मिल सकते हैं, उन सब पदार्थोंको तुम निःसङ्कोच इच्छानुसार मांगो। मेरे द्वारा दी गयी—सुन्दर रथ और गाजे-बाजोंसे युक्त मनुष्योंके लिये दुष्प्राप्य—इन कमनीय दिव्य अप्सराओंसे अपनी सेवा कराओ।'

सर्वलोकाधिपति यमराजके इतने प्रलोभन देने पर भी अपने विचारमें अटल, वीर-धीर नचिकेताका मन जरा भी विचलित नहीं हुआ, और झटसे उत्तर दिया कि—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्स-
र्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्वा॥

क० उ० ११२६

'हे यमदेव! सांसारिक पदार्थ नश्वर हैं। और भोगके साधन संपूर्ण इन्द्रियोंके वास्तविक बलको हर लेते हैं। प्राणी मात्रका जीवन भी परिमित है। भोगके साधनोंसे भोग-तृष्णा शान्त नहीं होती है—

न जातु कामः कामानामुपभोगे न शाम्यति॥

—भगवान् मनु।

इसलिये थोड़ेसे जीवनके लिये इन नश्वर अशान्तिप्रद नृत्य-गीत-रथ-अप्सरादिकोंको रहने दो। आपके दर्शनसे हमें सब कुछ मिल गया।

इस तरह यमराज द्वारा दिये गये प्रलोभनोंको नचिकेताने दूषित बतलाकर ठुकरा दिया।

इस नचिकेताके आदर्श उपदेशसे सच्चे सुख और सच्ची शान्तिके पुजारियोंको 'ब्रह्मचर्य' का आश्रय लेना अत्यावश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहार (कर्म)—ब्रह्मचर्यके लिये खान पानका भी विचार रखना परमावश्यक है। प्राणीमात्रके लिये जिस प्रकार सात्विक जीवन उपयोगी है, उसी प्रकार सात्विक भोजन भी लाभकर है। जिसका स्वरूप सूत्ररूपसे भगवान् श्रीकृष्णने गीता में कहा है—

'आयुः सत्वबलारोग्य-सुखप्रीतिविविर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रिया॥'

—गीता १७।८

प्रधानतया घी दूध ही सात्विक पदार्थ है।

घी—यज्ञोंमें भी भगवती श्रुतिने घृत प्रधान द्रव्यको सात्विक आहार मानकर, उसे खानेका उपदेश दिया है—

'अमृताहुतिराज्याहुतिः। अमृतं वा अज्यम्।'
'आज्यं वै देवानां सुरभि, घृतं मनुष्याणाम्॥'

—ऐ० ब्राह्मण।

'घृत अमृत है। घृतको खाना यानी अमृतको पीना है। आज्य (वैदिक विधिसे संस्कृत घृत) देवताओंको प्रिय है। घृत मनुष्योंको प्रिय है।'

"घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व" —शुक्लयजुः १२।४४

'तुम अपने शरीरको घृतसे बढ़ाओ।'

दूध—"पयसो रेत आमृतं तस्य
दोहमशीमह्युत्तरामुत्तरां समाम्।"

—यजुर्वेद ३८।२८

'दूधमें वीर्य (चरम धातु) संचित है। इसलिये हमलोग सदा सर्वदा दूधको प्राप्त करते रहें।'

"पयसा शुक्रममृतं जनित्रं
सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना०।"

—यजुर्वेद १९-८४

'अश्विनी देवता दूधसे दुर्बुद्धिको नाश करके अमृत स्वरूप शुद्ध जीवन 'वीर्य' को उत्पन्न करते हैं।'

वाक्साधन—सात्विक जीवनके लिये वाक्साधन भी परमावश्यक है। यह दो प्रकारका है—

१ स्ववाक् साधन—अपनी वाणीको सदा शुद्ध (लोक-प्रिय) रखना।

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो,
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रासखायः सख्यानि जानते
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि!"

—ऋग्वेद १०।७१।२

विद्वान् मनुष्य चलनीसे छाने गये सत्तूकी तरह मनसे विचार कर वाणीका प्रयोग करते हैं। जिस वाणीके बलसे अमित्र भी मित्र होते हैं। और इनकी वाणीमें भद्रा लक्ष्मी सदा सन्निहित रहती है।

२ परवाक् साधन—दूसरेकी वाणीको अपने अनुकूल करना।

"चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीया-
दानिधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत्।"

—ऋग्वेद १।४१।९

'चार पासोंको हाथमें रखनेवाले जुआरीसे जैसे डरते हैं, उसी प्रकार अपनी निन्दासे सर्वदा डरता रहे। कभी भी निन्दा की चाहना न करे।' भगवान्ने भी कहा है—

"नन्दतस्तत्र सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।"

—गीता २।३६

ऊपर सात्विक जीवनके लिये मन (= ब्रह्मचर्य) कर्म (= आहार) और वचन द्वारा साधनके उपायोंका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। आशा है पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-संसार में हलचल पैदा कर देनेवाला

'जीवन-सखा' का 'व्यायाम अंक'

१ जनवरी सन् १९४२ को प्रकाशित होगा

'जीवन-सखा' के छठे वर्षमें प्रवेश करनेके अवसर पर आगामी जनवरीमें इसका 'व्यायाम अङ्क' निकलने जा रहा है, जो प्राकृतिक साधनों द्वारा स्वास्थ्य लाभ करनेके इच्छुक हिन्दी प्रेमियोंके लिये स्वास्थ्य विषयक एक अभूतपूर्व ग्रन्थ होगा।

इसमें क्या रहेगा।

१ फेफड़ा और मांसपेशियोंपर व्यायामका प्रभाव	२१ योग व्यायाम।
२ हृदय पर व्यायामका प्रभाव।	२२ अन्दरूनी सफाईके लिये यौगिक क्रियायें।
३ जर्मन व्यायाम प्रणाली।	२३ हिन्दुस्तानके व्यायाम केन्द्रोंका सिंहावलोकन
४ स्वीडिश व्यायाम प्रणाली।	२४ व्यायायके समय शरीरकी आन्तरिक अवस्था
५ फ्रांस व्यायाम प्रणाली।	२५ व्यायामके लिये अवस्था, व्यवसाय तथा स्त्री पुरुषका विचार।
६ जापान व्यायाम प्रणाली।	२६ खेलाड़ियों (Sportsman) का व्यायाम।
७ हिन्दुस्तानी व्यायाम पद्धति।	२७ स्कूलोंकी व्यायाम पद्धति।
८ युवक और युवतियोंके लिये व्यायाम।	२८ कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें व्यायाम।
९ पेटकी कमजोरी और आंत उतरनेका इलाज।	२९ लड़कियोंके स्कूलों और कालेजोंमें व्यायाम
१० व्यायाम बीमारियोंके लिये।	३० कन्धोंकी विषमताका कारण और इलाज।
११ मालिश।	३१ हकलाना और गलेका इलाज।
१२ कब्जका इलाज।	३२ व्यायाम और विश्राम।
१३ श्वास रोगका इलाज।	३३ शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्गका व्यायाम।
१४ रक्त सस्थानके बीमारियोंका इलाज।	३४ हिन्दुस्तानी व्यायाम प्रवर्तकोंकी जीवनी और उनके कार्य।
१५ मोटापा, इसका कारण और इलाज।	३५ हिन्दुस्तानके प्रान्तोंमें व्यायाम।
१६ नाड़ी दौर्बल्य और दर्दमें व्यायाम चिकित्सा।	३६ शरीर पर व्यायामका प्रभाव।
१७ फालिजका इलाज।	३७ देशमें व्यायाम प्रसारकी आवश्यकता।
१८ भोजन और व्यायाम।	
१९ आंखोंके लिये व्यायाम।	
२० सूर्य नमस्कार।	

अनेकानेक चित्रोंसे सुसज्जित इस विशेषांकका मूल्य १) होगा

किन्तु 'जीवन-सखा' के सभी नये न पुराने ग्राहकोंको मुफ्त मिलेगा। इसलिये यदि आप अब तक 'जीवन सखा' के ग्राहक न बने हों, तो शीघ्र बनकर इसे प्राप्त करें, अथवा **१५दिसम्बरके पूर्व ही १) अग्रिम भेजकर विशेषांक की कापी अपने लिये रिजर्व करा सकते हैं।** युद्धके कारण जो अनिवार्य कठिनाइयां उत्पन्न हो गयी हैं उनकी वजहसे सीमित संख्यामें यह विशेषांक प्रकाशित होगा। इसलिये १५ दिसम्बरके पूर्व ही जिन्होंने केवल विशेषांककी प्रतिके लिए आवेदन नहीं किया, उन्हें फिर बादमें अंक प्राप्त नहीं हो सकेगा। अतः शीघ्रता कीजिये, अन्यथा निराश होना पड़ेगा।

मैनेजर— **'जीवन-सखा'** ८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चा सुख कहां है ?

श्री विष्णुप्रसाद राय साहित्यरत्न

संसार विचित्रताओंका घर है। इसमें तरह-तरहके मनुष्य भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें अनेक प्रकार से अपना जीवन-यापन करते हैं। यह बिल्कुल सत्य है कि सबकी भावनायें और इच्छायें एक-सी नहीं हुआ करतीं और न तो सबकी पूर्ति ही एक समान होती है। कभी तो ऐसा होता है कि मनुष्य जो कुछ जितना चाहता है उससे भी अधिक प्राप्त करता है और कभी उसे अपनी आशा तथा इच्छाके बिल्कुल विपरीत ही फल मिलता है। सभी बातें प्रायः एक दूसरेसे भिन्नता रखती हैं किन्तु एक बातमें—मानव मात्र समान हैं प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ, सुन्दर, सुखी तथा अमर होना चाहता है। सृष्टिके प्रारम्भमें आजतक मनुष्यकी यह भावना अपना कार्य करती आ रही है। इसी भावनाने मनुष्य-जातिको और प्राणियोंसे भिन्न बनाया तथा इसीकी प्रेरणासे ही समाज-व्यवस्था-धर्म, और विज्ञानका आविष्कार तथा संस्कार हुआ और होता जा रहा है।

जिस तरह एक प्राणी दूसरे दुर्बल प्राणियोंका शिकार करके अपने प्राणकी रक्षा कर लेता है, उसी तरह सभ्यताके आदि कालमें मनुष्य भी दूसरेका स्वत्वापहरण करके चाहे जी लेता रहा होगा किन्तु इस विचारशील मानव-प्राणीको इससे सन्तोष न हुआ। उसने अनुभव किया कि जबतक हम एक दूसरेके सुख दुःखको समान नहीं समझते तबतक हम सुखी नहीं हो सकते क्योंकि हम जो चाहते हैं, दूसरेको भी उसीकी जरूरत है और उसके लिये वह भी वैसा ही कर सकता है जैसा कि हम अपनी वांछित वस्तुके लिये करते हैं। इससे प्रत्येक व्यक्तिको सब समय अपने विनाशकी आशंका बनी रहती है। बस, यहां ही इसी भावनाकी भित्तिपर मनुष्यकी रक्षाके लिये समाज व्यवस्थाका जन्म होता है। सभ्यता एक जमानेको पीछे छोड़कर आगे बढ़ती है।

विकासकी कुछ मंजिल तय कर लेनेके बाद भी फिर वही हालत। अब एक मनुष्य पर दूसरे किसी मनुष्यका आक्रमण होनेके बदले, एक समाजका अपने समाजके सुखके लिये दूसरे समाज पर आक्रमण होने लगा। इस व्यवस्थाके बनने पर भी मनुष्यकी वह आशङ्का ज्यों की त्यों बनी रही। पुनः उसी असन्तोषने मानव जातिके मनमें घर कर लिया जो पहली मंजिलमें था। मानव-प्राणी अब इससे भी बचनेका उपाय सोचने लगा। सोचते सोचते उन मन्त्र-द्रष्टा भारतीय आर्य ऋषियोंने, जिन्होंने संसारमें सभ्यताको जन्म दिया तथा जो समाज-व्यवस्था धर्म और विज्ञानके लिये जगद्गुरु माने जाते हैं, मानव समाजके कल्याणार्थ एक मन्त्रकी रचना की—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत्॥

सारे संसारने इस मन्त्रको उत्फुल्ल हृदयसे स्वीकार किया। इस विचारको सबने पसन्द भी किया। इसके अनुसार चलनेकी कोशिश भी हुई और आजतक होती आ रही है। यह भावना कितनी उदार कितनी मधुर है, पर इसे व्यवहारमें लाना कितना कठिन है, इसे कितनोंने समझा ?

विकासवादी कहते हैं कि संसार आज सभ्याताके उस स्थानपर पहुंच गया है, जहांकी कल्पना मात्रसे ही किसी दिन लोगोंके दिमागमें आश्चर्य उत्पन्न होता रहा होगा।

विज्ञानका यह चमत्कार ! लाखों कोसकी खबरें मिनट भरमें घर-घर पहुंच जाती हैं। हम सिर्फ जमीन ही नहीं बल्कि समुद्र और आकाशपर भी विजय पा रहे हैं। विज्ञानके पंख लगाकर आसमानमें मोर्चेबन्दी कर रहे हैं। सैकड़ों रावणके विनाश कर डालनेकी क्षमता छोटेसे गोलेमें हम भर रहे हैं। हम खूनमें खून डालकर मुर्दोंमें जीवन डाला करते हैं। हड्डी से हड्डी जोड़कर शक्ति प्राप्त कर लेते हैं और वर्षोंकी यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घण्टे भरमें तय कर लेते हैं। इतना ही नहीं। युग युग बिखरी आयी हुई ज्ञान राशि, वर्षोंकी खोई हुई सम्पत्ति बातकी बातमें एकत्र कर लेते हैं। हम जहां चाहें वहां वर्षों बीती कहानी संचित एवं सुरक्षित पा जाते हैं। हम कलकत्तेके कोनेमें बैठकर सारे संसारमें व्यापार कर लेते हैं। एक साथ ही सम्पूर्ण विश्व को हम धर्मका सन्देशा पहुंचा सकते हैं। क्या फिर भी मनुष्य सुखी हो पाया है? क्या इतना आगे बढ़नेपर भी मनुष्य उस जमानेसे अधिक उदार और दयालु हो पाया है जब कि उसे बोलना भी नहीं आता था और न तो एक दूसरेको समझनेकी क्षमता ही रखता था?

हमारे इन सभी प्रश्नोंका उत्तर हमारे ये सामाजिक नियम, हमारी यह धार्मिक असहिष्णुता और विज्ञानकी विनाशकारी दुरुपयोगिताएं दे रही हैं।

मनुष्य चींटियोंपर दया कर सकता है। रास्ते-रास्ते दाने का दान किये फिर सकता है किन्तु, फुटपाथ पर पैदा होनेवाले मासूम मानव शिशुओंपर दया अथवा मनुष्यताका व्यवहार नहीं कर सकता। क्या यही सभ्यता और मानव जातिका विकास है?

एक धर्मके माननेवाले कहते हैं, तुम बुतपरस्त हो इसलिये काफिर हो। दूसरा कहता है— तुम हमारे देवी-देवताओंको नहीं मानते इसलिये हम तुमसे घृणा करते हैं; तुम विजातीय हो, विधर्मी हो। तुम्हारा छूना तो महापाप है ही तुम्हारा मुंह देखना भी पाप है। जो तुम्हें छू ले वह भी पापी, वह भी विधर्मी और इसीलिये उसे भी छूना पाप है। दूसरेको कत्ल करनेसे पहला गाजी होता है तो पहलेसे सम्बन्ध रखनेवालोंकी, चाहे वे अपने ही क्यों न हों परित्यागकर ही दूसरा राजी होता है। इस तीखेपनको दूर करनेके लिये अगर कोई तैयार भी हुआ तो वह और भी तीखा बना जाता है। दो अन्धोंकी जगह तीन हो जाते हैं। यह कोई नहीं कहता कि हम सभी मनुष्य हैं, हमारा सबका अपना अपना धर्म है। सभी अपने धर्ममें, अपने विश्वासमें सुखी रहें, किसीको दुःख न हो। यही हमारी उदारता है। फिर भी हम कहते हैं कि मानव जाति धार्मिक विकासपर है।

रही विज्ञानकी बात। इसका तो कुछ कहना ही क्या? मानव-कल्याणके लिये मनुष्यों द्वारा ही इसकी सृष्टि हुई पर इसका उपयोग होने लगा है मानव-जातिके संहारके लिये। जहां लाखों मनुष्य अपनी कमाईका फल अपने परिश्रमके अनुसार अलग-अलग पाते थे वहां आज लाखों और करोड़ोंकी कमाई एक ही यान्त्रिक तालाबमें जाकर सड़ती है। उसके विलासके विष बनते हैं और करोड़ों यन्त्र हीन जनता भूखों मरती रहती हैं। उसकी रोजी मर गयी, उनके धन्धे नष्ट हो गये। इसी की कृपाका फल है कि यंत्रवाले देशोंको बिना यंत्रवाले बाजारकी जरूरत पड़ने लगी। यही कारण है कि आज सारा संसार एक दूसरेका खूंखार बना बैठा है। देश और जातिके नामपर कितने ही देश और जातियोंका विनाश हो रहा है। सभी एक दूसरेके खूनके प्यासे बन गये हैं। मानवताके नामपर जिसका अविष्कार हुआ उसीसे मानवताका भयंकर संहार हो रहा है। फिर भी हम कहते हैं कि हमारी बुद्धिका यथेष्ठ विकास हुआ है हमारे ज्ञान ने हमारे जीनेके लिये बहुतसे सुन्दर और अनमोल अविष्कार किये हैं। हम यह कभी नहीं सोचते कि हमारी दुर्बुद्धिका ही अधिक विकास हो रहा है, बुद्धिका नहीं है। हमारे जीवनके लिये जिस चीजकी सृष्टि हुई उसीका उपयोग हम अपने विनाशके लिये कर रहे हैं।

यह क्यों? हम इन चीजोंका सदुपयोग क्यों नहीं कर सकते? चूंकि हमने अपने जीवनमें धर्मको प्रधानता नहीं दी। हमने सारी बातोंपर भौतिक दृष्टिकोणसे ही विचार किया, धार्मिक दृष्टिसे नहीं। यह कभी नहीं सोचा कि हम जो चाहते हैं सभी वही चाहते हैं। सबको वही चाहिये भी। जिन बातों से हमें दुःख होता है उन्हीं बातोंसे दूसरोंको भी पीड़ा पहुंचेगी ही। हमने पुस्तकोंमें **आत्मवत् सर्वभूतेषु** पढ़ तो लिया पर उसे गलेके नीचे हृदयमें कभी भी स्थान नहीं दिया। हमने इन शब्दोंके अन्दर छिपे हुए भावको नहीं पहचाना सिर्फ शब्दों को ही देखा। जीवनमें भौतिकवादको ही महत्व दिया, धर्मको धक्के मार दिये। हमने इसपर कभी विचार नहीं किया कि हम यदि सुख चाहते हैं तो संसारको भी सुख, स्वास्थ्य और सौन्दर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये ही। फिर हम कैसे कह सकते हैं कि सभ्यताके आदि कालमें हम जो थे ज्ञान विज्ञानमें आगे बढ़ जाने पर भी हम मानवताके नाते जहांके तहां ही नहीं हैं।

जबतक जीवनमें धर्मको प्रधानता नहीं दी जाती, सच्चे अर्थमें धर्मको पहचाना नहीं जाता तबतक ये सारे ज्ञान-विज्ञान मानव-जातिको स्थायी शान्ति प्रदान नहीं कर सकते, सभ्यताके बोझ ही बने रहेंगे। जबतक मनुष्य धर्मके वास्तविक अर्थको नहीं पहचानता, जबतक उसका हृदय विश्व-प्रेमसे अप्लावित नहीं होता तबतक मानव होकर भी वह दानवसे कम नहीं कहा जा सकता। धर्म ही मानवताका प्रधान अंग है। इसके बिना मनुष्य स्थायी शान्ति नहीं पा सकता, सुखी नहीं हो सकता।

उन्नतिका एकमात्र साधन

श्री जयकृष्ण दास अग्रवाल

आहार एक महत्वपूर्ण वस्तु है, क्योंकि प्राणीमात्रके जीवनका आहारसे बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य यदि वनस्पति आदि पदार्थोंको ठीक मात्रामें अपना आहार बनाये तो वह कमसे कम सौ वर्षतक स्वस्थ रहकर जीवित रह सकता है। ऋषियोंने आहार सम्बन्धी अपनी विविध खोजोंके अनुसार उनके प्रभावको आयुर्वेदके अनेक ग्रन्थोंमें लिखा है। इसीलिये इस बातकी बहुत आवश्यकता है कि अपने ऋषि-मुनियोंकी खोजोंका तुलनात्मक अध्ययन करके सर्वसाधारणके लिये उन्हें लाभदायक बनाया जाये, आहारका उपयोग, पोषण-शक्ति और भिन्न-भिन्न पदार्थोंके गुण और प्रभाव विस्तृत रूपसे दिखाया जाये। आहारके सर्वसाधारण नियम, दुग्धाहार, फलाहार इत्यादिका विवरण और ब्रह्मचर्य, व्यायाम, स्नान, निद्रा, उपवास इत्यादि आहारके सहायक उपायों पर भी विचार किया जाना चाहिये, जिससे ज्ञात हो कि मनुष्य को अपने आहारमें किन-किन पदार्थोंका किन-किन परिमाणोंमें उपयोग करना चाहिये, जिससे शरीरका पोषण तथा संवर्द्धन ठीक-ठीक हो।

वास्तवमें जो आहार हम करते हैं, वह सब हमको हजम नहीं होता। हम यदि आवश्यकतासे अधिक भोजन ग्रहण करते हैं, तो उसका बहुत-सा भाग हमारे शरीरसे यों ही निकल जाता है और जो कुछ पचता है उससे आवश्यकतानुसार शरीरका पोषण होता है। हमारे शरीरको जिन तत्वोंकी जितनी आवश्यकता है उससे अधिक यदि हम अपने आहारमें उन तत्वोंको ग्रहण करते हैं तो वह अन्नका दुरुपयोग होता है। उदाहरणार्थ यदि हम अधिक मात्रामें दूध, मलाई, मक्खन, घी इत्यादि ग्रहण करें या मिठाई ही खा लें तो आहारके अन्य पोषक तत्व नष्ट हो जायेंगे। हमारी पाचन-इन्द्रियों पर कामका बोझ अधिक पड़ जायेगा जिससे हमारे स्वास्थ्यकी हानि होगी। अतएव प्रत्येक मनुष्यको अपने अनुकूल आहारका निश्चय स्वयं अपने अनुभवसे कर लेना चाहिये। कौन मनुष्य कितनी मेहनत करता है और उसको किस मात्रामें क्या आहार करना चाहिये यह बात उसका शरीर ही बतलायेगा।

पदार्थोंके गुण अथवा अवगुण बतलाना ही बुद्धिमानोंका कार्य है। महात्मा गान्धीने अपने शरीर और जीवन पर आहार और उपवासके अनेक प्रयोग किये हैं और अपने अनुकूल आहार ग्रहण करके ही उन्होंने अपनी आत्माको इतना उन्नत बनाया है। हमारे शास्त्रोंमें भी कहा है कि आहारकी शुद्धिसे ही सत्वकी शुद्धि होती है। कितने ही मनुष्य हैं जो नित्य परिमाणसे अधिक भोजन करते हैं और उपवासके दिन भी घी में तले हुए भोजन करते हैं। स्वादिष्ट पदार्थ फलाहारके नाम पर खूब भर पेट खाते हैं जो बहुत बुरा है।

गीतामें भगवान श्रीकृष्णने कहा है कि मनुष्यको अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मोन्नति अवश्य करनी चाहिये। ऐसा काम कभी न करना चाहिये जिससे आत्माकी अवनति हो, अपनी शुभाभिलाषाओंका हनन हो, अपनी जीवन-शक्ति और उत्साह को उदासीनताके भंवरमें गोते खाने पड़ें। अपनी उन्नति अवनतिका उत्तरदायी मनुष्य स्वयं होता है। अर्थात् वह अपना बन्धु, मित्र तथा सहायक स्वयं है। और अपना शत्रु भी स्वयं ही है। जो स्वयं अपने पर विजय करता है, अपनी इन्द्रियोंका निग्रह करता है वह एकके बाद दूसरी उन्नतिकी सीढ़ीपर चढ़ता जाता है, सफलता प्राप्त करता है और अपनी आत्माका स्वयं बन्धु है। किन्तु इससे विपरीत जो आलसी है, इन्द्रियोंके वशीभूत हो गया है, कर्त्तव्य विमुख है, अपने कर्त्तव्य, अपने महत्व, अपने स्वरूपको नहीं पहचानता, अपनी भलाई-बुराई नहीं समझता वह स्वयं अपना शत्रु है, अपने पैरोंमें स्वयं कुल्हाड़ी मारता है।

भोजनका प्रश्न हमारे सामने उतना ही जटिल है, जितना कि वह हमारे लिये कभी आसान था। अगर यह सवाल किसी तरह समझमें आ जाये तो हमारी बीमारियोंका रहस्य प्रकट हो जाये। यह समस्या आज साधारण नहीं रह गयी है। इसके लिये हमें काफी अध्ययन करना पड़ेगा।

हमारे स्वास्थ्य और जीवनका आधार भोजन ही है। जो अपनेको स्वस्थ्य रखना चाहते हैं और जीवन-नैयाको आनन्द पूर्वक पार ले जाना चाहते हैं उनके लिये यह जरूरी है कि वे भोजनके सम्बन्धमें खूब जानकारी प्राप्त करें। वे इसका अनुभव होने पर ही तन्दुरुस्त और खुशमिजाज रह सकेंगे। क्योंकि भोजनसे ही तो हमारा जीवन है। भोजन ही हमारे रोगोंका कारण बना हुआ है।

हम जो भोजन हर रोज करते हैं उसको हर रोज हजम नहीं कर पाते। और दूसरे दिन फिर उसी तरह पेट भर लेते हैं। इसी तरह करते-करते एक दिन हमारी मांसपेशियां इतना काम करनेसे जवाब दे देती हैं। ये उस मोमबत्तीके सदृश बन जाती हैं जिसको यदि जलाकर एक बक्समें बन्द कर दें तो बुझ जायेगी। क्योंकि उसे हवा न मिलेगी जो उसके लिये बहुत आवश्यक है और यदि उसको बाहर तेज हवामें रख दें तो वह बुझ जायेगी। वही हवा जो उसके जलनेके लिये इतनी जरूरी है उसका विनाश भी कर देती है।

यह हाल हमारे भोजनका है। यदि हम भोजन करना छोड़ दें तो जीवित नहीं रह सकते और यदि भोजन अधिक मात्रामें करें तो वह हमारे लिये हानिकर सिद्ध होता है। वही भोजन जिसके सदुपयोगसे हम अपनी शारीरिक शक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं, दुरुपयोगसे हमारे स्वास्थ्यका नाश कर देता है। इसीलिये हमें उतना ही भोजन करना चाहिये जितना हम पचा सकें, क्योंकि जितना भोजन हम पचा सकते हैं और जिन पदार्थोंको पचा सकते हैं वही पदार्थ और पचा देने-वाली मात्रा ही हमारे लिये अमृत है। इसके विरुद्ध अपच पदार्थोंके सेवनसे और पचा सकनेकी मात्रासे अधिक जो कुछ भी हम अपने भोजनमें शामिल करेंगे वह हमारे लिये विषका कार्य करेगा।

संसारके अन्य जीवधारी भोजन करते हैं और वे उतना ही भोजन करते हैं जितना कि वे पचा सकते हैं। परन्तु इसके विपरीत मानव-जाति जिसको अपनी बुद्धिकी विशेषताका घमण्ड है अपनी बुद्धि द्वारा ही अपना नाश कर रही है। नित्य नये ढङ्गके भोजनोंका आविष्कार मनुष्यकी बुद्धिका परिचायक है। किन्तु हमारी बुद्धि इतना सोचनेको नहीं बैठती कि यह भोजन जिसका नित्य नया ढङ्ग बदलता जा रहा है हमारे स्वास्थ्यके लिये पूर्ण रूपसे घातक है। अतः यह हमारे लिये परमावश्यक हो जाता है कि अपने आहार-विहारको ठीक नियमित रखें जिनसे इहलौ-किक और पारलौकिक उन्नति-साधनमें सफलता मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन

श्री तुलसीराम सरावगी

किशोरावस्थामें जिस समय प्रातःकाल अपने ग्राममें स्व० लालगिरिजी महाराजसे गीता सहस्रनामका पाठ पढ़ा करता, सायंकालके समय आठ-दस साथियोंके साथ भगवद्भक्ति सम्बन्धी श्लोकोंका धारावाहिक रूपसे उच्चारण करता, उस समय यद्यपि उनके भावार्थोंको समझनेकी शक्ति नहीं थी; तो भी हृदयमें एक प्रकारकी शान्ति, एक प्रकारका आनन्द अनुभव होता। अगर कोई इसका कारण पूछे तो सिवाय इसके कि वह परम्परागत विश्वासका ही परिणाम था, मेरे पास और कोई उत्तर नहीं।

कुछ समझनेकी शक्ति जब हुई, जब 'रुक्मिणी मंगल' एवं 'नरसी मेहताके भजन' प्रेमसे गानेकी धुन समायी और जब रामायणकी चौपाइयोंका टूटा-फूटा अर्थ उस समयकी बाल-मित्र मण्डीलीके बीच लगानेकी चेष्टा होने लगी, तब हृदयमें एक प्रकारकी करुणा, एक प्रकारकी अधीरता और प्रेमके कोमल तत्वोंका आभास मिलता।

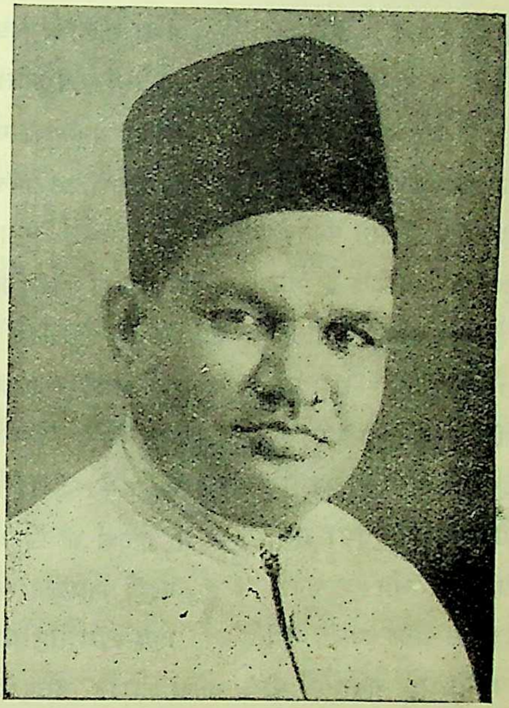

इस लेखके लेखक

समयने पलटा खाया। नवीन मित्रोंके संयोगसे राजनीति मिश्रित सेवा-मार्ग पर चलनेकी इच्छा हुई। दीन-दुखियोंके लिये हृदयके एक कोनेमें वेदना उत्पन्न होने लगी, उनके कष्टोंको दूर करनेके उपायोंको काममें लानेके लिये आत्मासे प्रेरणा होने लगी। उस समय भी हृदयमें एक प्रकारकी आतुरता, एक प्रकारका असन्तोष था।

सेवा-मार्ग पर चलते-चलते सभा-सोसाइटियोंके दङ्गलमें प्रवेश हुआ। निःस्वार्थ भावनाका आसन कुछ-कुछ हिलने लगा तब ऐसा ज्ञान हुआ कि आधुनिक सभ्यताके उपर्युक्त स्थानोंमें बहुत ही सावधानी से चलनेकी आवश्यकता है। हृदयने भी गवाही दी कि यदि सेवा-मार्ग पर चलना है तो अपने लिये समयका आश्रय लेना परमावश्यक है। इस विचारसे चित्तमें शान्ति एवं सात्विक बलका सञ्चार हुआ।

संसारके आधुनिक विचार-सागरमें डूबता उतराता हुआ, पारिवारिक जीवन सुख-दुःखोंका अनुभव करता हुआ, कष्ट और पीड़ाके आघातोंको सहता हुआ जब कभी विचलित हुआ, जब कभी आत्म-ग्लानि हुई तब 'प्रभु' के नामके स्मरणसे साहस और धीरज बँधा; चित्तको भी संतोषका अनुभव हुआ।

धर्मकी मीमांसा करना धर्मज्ञोंका काम है, मानव-समाजको सच्चा सुख प्राप्त करनेका जरिया बतलानेका काम पहुंचे हुए सन्तोंका है, वर्तमान धर्मकी वास्तविक स्थितिको समझानेका काम विद्वानोंका है, मैंने तो अपनी अल्प बुद्धिमें आडम्बरसे दूर रहकर प्रभुका नाम लेना एवं दीन-दुखियोंकी सेवा करना ही सच्चा धर्म समझा है। मुझे इससे शान्ति मिली है और जिस कार्यसे मनुष्यको सच्ची शान्ति, सच्चा आनन्द मिले वही श्रेष्ठ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचार तथा दीर्घ जीवन

श्रीकमलधारी सिंह, 'कमलेश' साहित्यरत्न

यह निर्विवाद सत्य है कि संसार नश्वर है। इसमें उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थ विनाशी हैं, क्षणिक हैं, स्वप्नवत हैं, मिथ्या हैं, परन्तु नेत्रोंपर मायाका ऐसा चश्मा चढ़ा हुआ है कि सूझता नहीं। बुद्धिपर मोहका ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है कि समझमें आता नहीं। इसीलिये प्राणीमात्रने अन्धेकी तरह धन, पुत्र, स्त्री, मान-बड़ाई आदिमें अपने ध्येयको सीमित कर रक्खा है। यही नहीं, अपितु समस्त प्राणीमात्रमें सर्वश्रेष्ठ समझे जानेवाले मनुष्यका ही लीजिये; वह भी स्त्री, पुत्र, कलत्र तथा धन वैभवकी चेष्टा करते-करते संसारको छोड़कर वासनाओंको साथ लिये सतृष्ण ही चल देता है और पुनः इन्हीं वासनाओंको लेकर आता है। इस प्रकार वह चौरासी लाख योनियोंमें भटकता रहता है, परन्तु शान्तिकी राह उसे नहीं मिलती। शान्ति मिले भी कैसे? जब हमारी राह ही ठीक नहीं है; बल्कि शान्तिके ठीक प्रतिकूल है। शास्त्रकारोंने जहां ऐसा कहा है कि **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'** अर्थात् माता, पिता और आचार्यको ईश्वर समझो, इनकी आज्ञाओंको ईश्वरकी आज्ञा मानो, वहां हम इनको देवता समझनेकी जगह अपनेसे श्रेष्ठ समझनेमें भी हिचकिचाते हैं। इनके वचनोंको अपने तर्कके सामने ठहरने नहीं देते, अपनी बुद्धिको प्रधानता दिये बिना हमसे रहा नहीं जाता। सबमें छिद्रान्वेषण करनेकी आदत हममें पड़ी है। हम गुण ग्रहण करनेकी जगह भूल निकालनेकी कोशिश करते हैं। दुराचारको ही सदाचार मान बैठे हैं। ऐसी अवस्था जबतक रहेगी, तबतक हमें शान्ति नहीं मिलेगी। हम लोगोंको समझना चाहिये कि 'नरत्वं दुर्लभं लोके' अर्थात् मनुष्य योनिमें जन्म लेना ही दुर्लभ है। जन्म-जन्मके पुण्य कामोंके फलस्वरूप जब मनुष्य-जीवन प्राप्त होता है, तब सबसे प्रबल इच्छा शान्ति और दीर्घजीवन प्राप्त करनेकी होती है। मृत्युसे प्राणी मात्रको भय होता है, सभी चाहते हैं कि दीर्घजीवन प्राप्त कर हम संसारका अधिकसे अधिक सुख भोगें। परन्तु महर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे यह कहलाया है—

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम्।
तथा नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम्॥

अर्थात् मनुष्योंकी गति ठीक वृक्षमें लगे हुए फलकी तरह हैं, जिस प्रकार फल पककर जमीनपर अवश्य गिर पड़ता है उसी प्रकार उत्पन्न हुआ मनुष्य भी एक-न-एक दिन अवश्य मृत्युके वशीभूत होकर कालके गालमें चला जाता है। यहां कोई भी जीव शाश्वतिक स्थिति नहीं प्राप्त कर सकता। ऐसे नश्वर एवं क्षणभंगुर संसारमें भी दीर्घजीवन प्राप्त करनेका उपाय हमारे महर्षियोंने अदम्योत्साह तथा असह्य कष्टोंको सहन कर ढूंढ़ निकाला है। यदि हम उनके बतलाये हुए उपायोंसे काम लें, तो मृत्युपर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि पतंजलिने स्वरचित योग सूत्रमें लिखा है—

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्य लाभः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका अभ्यास करता है, उसे निरतिशय सामर्थ्य प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है, अपने वीर्यको रोकना अर्थात् निकलने न देना। दीर्घ आयुके लिये वीर्यका रोकना जितना लाभदायक है, उतना और कुछ हो ही नहीं सकता। भीष्म पितामहकी इच्छामृत्युकी कथा जो सुनी जाती है, वह उनके ब्रह्मचर्यका ही महत्त्व समझना चाहिये। इसीलिये वैद्योंने भी लिखा है **मरणं बिन्दु पातेन, जीवनं बिन्दु धारणात्** अर्थात् वीर्यके बिन्दुओंको निकलने देना ही मृत्यु है और उसको धारण करना ही अमरत्वकी प्राप्ति है। संसारमें सभी मनुष्य अमरत्व प्राप्त करना चाहते हैं और इसकी राह भी अत्यन्त प्रशस्त और सुगम है फिर भी माया पिशाचिनीकी चमकसे आंखें चकाचौंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पड़ जाती हैं, मार्ग दीख नहीं पड़ता। गीतामें भगवान कृष्ण ने अर्जुनको कर्तव्य पालनकी शिक्षा देते हुए कहा है:—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

अर्थात् महात्माओंको कर्तव्यके परे होनेपर भी कर्तव्यका पालन करते रहना चाहिये, क्योंकि अज्ञानी मनुष्य उनकी भाँति अपना आचार बनाकर इस संसारमें रहते हैं। इसीका नाम है सदाचार, अर्थात् सज्जन पुरुषोंका आचरण। सदाचारसे मनुष्यको केवल दीर्घ जीवन ही नहीं, बल्कि सर्व प्रकारके एहिक, सुख और अन्तमें ब्रह्मलोककी प्राप्ति भी होती है। गीतामें एक अन्य स्थापन पर भगवान श्री कृष्णने कहा है कि **स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।** अर्थात् अपने-अपने कर्तव्यका पालन करके ही मनुष्य शान्तिको प्राप्त करता है। श्री मद्भागवतमें सभी मनुष्योंके लिये धर्मके तीस लक्षण लिखे गये हैं। इस तीस लक्षणवाले धर्मका पालन करनेका ही नाम सदाचार है। यथाः—

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्रास्येहो परमः शनैः
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्म विमर्शनम्॥२॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥३॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतांगतेः
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्म समर्पणम्॥४॥
नृणाममयं परोधर्मः सर्वेषां समुदाहृतः
त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥५॥

जिस मनुष्यमें उपर्युक्त सभी लक्षण पाये जाते हों, वह मनुष्य नहीं, अपितु देवता है। इनमेंसे यदि एक लक्षण भी जीवनमें उतर आये, तो वह साधारण मनुष्योंके स्तरसे कहीं ऊँचा उठ जायेगा और पुनः क्रमशः ये सभी लक्षण उसमें आ सकते हैं। स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही पुरुष पुङ्गव थे। इन लोगोंने सदाचारके बलपर ही देश-विदेशोंमें अपनी कीर्ति-कौमुदी फैलायी। स्वामी रामतीर्थको चरित्र बलके द्वारा अपनें ऊपर इतना विश्वास हो गया था, कि वे अपनेको राम बादशाह कहकर सम्बोधित करते थे। अपने ऊपर इतना बड़ा विश्वास बिना सदाचार या ब्रह्मचर्यके कैसे हो सकता है? वे प्रत्येक प्राणी को आत्मवत् देखते थे। चाहे वह चीता हो, शेर हो या सर्प हो।

स्वामी विवेकानन्दजी भी बड़े सदाचारी थे और इसी सदाचारके बलपर ही सुदूर अमेरिकामें जाकर आपने ज्ञान और भारतकी महानताकी विजय-वैजयन्ती फहरायी थी। कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि हम दीर्घ जीवनके आकांक्षी हैं, यदि हम सच्चे सुखके अभिलाषी हैं, यदि हम हिन्दू, हिन्दी, हिन्द देशको पुनः उन्नतिके सर्वोच्च शिखर पर आसीन करना चाहते हैं तो हमें सदाचारके महत्वको समझना होगा, उसकी महिमाको हृदयंगम करना होगा। उसी अवस्थामें हम दीर्घ जीवन तथा तज्जनित सुख-शान्ति-प्राप्तिकी आशा कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम-राज्य

पं० रामाशङ्कर त्रिपाठी

ऐसे ही दिन थे,—और ऐसी ही रातें,—भारत भी यही था,—किन्तु ऐसा ही न था। हम जिस समयकी चर्चा करते हैं उस समय दक्षिणी भारत और सीलोनसे राक्षसी सत्ता ध्वंस करनेके बाद महाराज श्री रामचन्द्र उत्तर कोशलके राजा हुए थे,—सन्त शिरोमणि भरत युवराज; वीराग्रणी लक्ष्मण सेनाध्यक्ष।

सर्वत्र सदाचारका सत्कार था। विद्वानों और ज्ञानियोंका बोलबाला था। प्रजा सब प्रकारके संकटोंसे मुक्त थी, धन-धान्यसे पूर्ण थी, मर्त्यु में स्वर्ग-सुखका अनुभव कर रही थी। राज सभामें महामुनि वशिष्ठ महाराज रामको अतीत और वर्तमानकी नाना भांतिकी कथाएँ सुना रहे थे। इसी बीच प्रतिहारने आकर दण्ड-प्रणामके अनन्तर निवेदन किया, "हे महीमहेन्द्र; केकय (काश्मीर) नरेशके परराष्ट्र सचिव गर्ग ऋषि दस सहस्र अश्व और सहस्रों शाल दुशालेलेकर नगरके प्रवेश द्वारपर श्रीमान्के आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

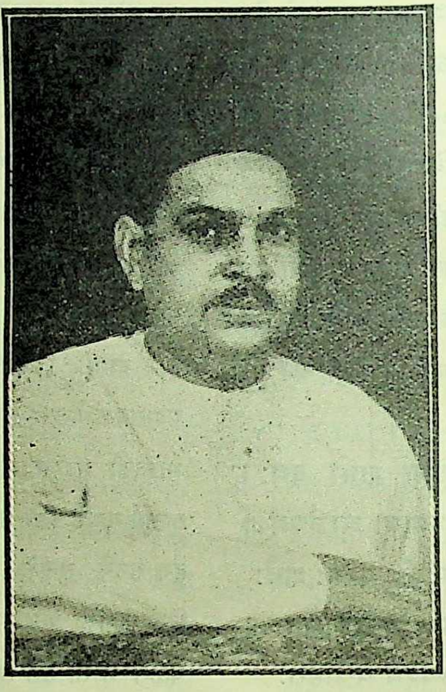

[इस लेखके लेखक]

उन्हें आदर पूर्वक राजसभामें लानेका राजाधिराजने आदेश दिया। गर्ग ऋषि आये—और शिष्ट-परिपाटीके अनुसार प्रणाम आशीर्वादके अनन्तर यथोचित स्थान ग्रहण किया,—एवं महाराजाका संकेत पाकर अपने अवध आगमनका कारण इस प्रकार कहा, "आपके मातुल केकयपति श्रीमान् युधाजित राजाने बंधुओं समेत आपका कुशल संवाद पूछा है। आपकी प्रसन्नताके लिये दस सहस्र अश्व और काश्मीरी ऊनी-वस्त्र भेजे हैं और कहा है कि गन्धर्व देश (वर्तमान सिन्ध तथा रावलपिंडी और पेशावर आदि) में शैलूष गण बड़ी दृढ़तासे जमे बैठे हैं, बड़ा उपद्रव कर रहे हैं। इनका उच्चाटन आवश्यक है; परन्तु अकेले हमारे करने योग्य कार्य यह नहीं है। अतएव महापुरुषार्थी अवध नरेश इनके दलनके लिये अग्रसर हों। काश्मीर वाहिनी श्रीमानका अनुगमन करेगी।"

"उत्तम संदेश है, ऋषिराज!" कहकर रघुपतिने भरतकी ओर दृष्टि डाली। कहा, हे अनुज! दुष्ट शैलूषोंके दलनका सुयश लेनेके लिये अग्रसर हो।

ऋषिराज मुदित मन कश्मीर लौटे। उभय देशोंकी सैनिक संधिने शैलूषोंको चकित और विस्मित कर दिया; किन्तु भीत नहीं। उन्होंने भी युद्धका ठान ठाना; — निश्चित तिथिको केकय सेना और रामवाहिनी गंधर्व देशके विजयके लिये अग्रसर हुई। घनघोर युद्धके पश्चात् शैलूष सेना छिन्न-भिन्न होकर भागने लगी,—शैलूषपतिने आत्म समर्पण कर दिया। समस्त आधुनिक सिन्ध सीमा प्रान्तमें रामराज्य हो गया।

जब बारह मासका चक्कर काटती हुई और निराशामें आशाकी नवज्योति फूंकती हुई विजया आती है— करोड़ों व्यक्ति रामका स्मरण कर उनकी इस विजयकी चर्चा कर अपने व्यथित हृदयको और सान्त्वना देते हैं। प्रभुसे फिर उसी रामराज्य और उन्हीं श्रीरामके पुनः दर्शन करनेकी प्रार्थना करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा परम कर्तव्य

श्री मनसुखराय मोर

मनुष्य अन्य प्राणियोंसे कुछ विशेषता रखता है। सृष्टिके अन्दर जितने भी प्राणी हैं उन सबमें मनुष्यका स्थान ऊंचा है और यह सबका स्वामी गिना जाता है। बुद्धि और हृदय नामकी दो वस्तुएं इसको ऐसी मिली हुई हैं जो और प्राणियोंको नहीं प्राप्त हैं। और यही इसकी विशेषता है। इसी विशेषताके बलपर यह अपना शासन अन्य प्राणियों पर बराबर स्थापित रखता है। एक कहावत है—पशु अनुकरण करता है, मनुष्य विचार करता है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य कोई भी कार्य सोचे-समझे विना नहीं करता। पशुको अपने हानि-लाभका उतना ज्ञान नहीं हो सकता जितना मनुष्यको। ऐसी अवस्थामें मनुष्यके लिये यह परम आवश्यक है कि वह जो भी कार्य करे सोच-विचार कर अपने लाभ या हानिका ख्याल करके करे। किन्तु आजकल हमारे देशके नवयुवकोंकी कुछ ऐसी प्रवृत्ति हो गयी है कि वे केवल अनुकरण करना ही अपने लिये गौरवपूर्ण कार्य समझते हैं। यह कितनी लज्जाकी बात है; उसपर भी अनुकरण अपने पूर्वजोंका नहीं वरन् ऐसे लोगोंका जिनकी संस्कृति-सभ्यता, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा हमसे सर्वथा भिन्न ही नहीं बल्कि हमारी उन्नतिके लिये बाधक है। यही कारण है कि देशका इतना अधिक पतन हो गया है और पतनकी ओर तीव्र वेगसे अग्रसर होता जा रहा है।

आज हमारे देशकी जो दुर्दशा है उसको देखकर आंखोंमें आंसू भर जाते हैं। जो भारत किसी समय ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति, शिक्षा-दीक्षा, धर्म-कर्म सभी दृष्टियोंसे जगत्गुरु गिना जाता था वह आज इतना नीचे चला गया है कि हम विदेशियोंकी नकल करना ही अपने लिये गौरवकी बात समझते हैं। उनके चरण चिन्होंपर चलना ही हमने अपना ध्येय बना लिया है। किसीकी अच्छी बातोंका अनुकरण बुरा नहीं है, किन्तु यहां तो बात ही और है। फैशन, विलासिता, श्रृङ्गार आदिकी नकल तो हमारे युवक आंख मूंदकर करते हैं परन्तु उनकी कार्यशीलता, कार्यतत्परता, दृढ़ता, ज्ञान आदिसे दूर भागते हैं। उनके यहां भी अनेक महात्मा हुए हैं जिन्होंने अपने यहांकी वर्तमान सभ्यताको दूषित और मानव-जातिके वास्तविक उत्थानके लिये बुरा तथा इसलिये त्याज्य बतलाया है, पर उसका विचार एतद्देशीय युवक नहीं करते। उनके अन्दर यदि आस्तिकताका भाव है,ईश्वरके प्रति प्रेम और भक्तिका भाव है तो हमारे युवक उस ओर आंख उठाकर भी नहीं देखेंगे। किन्तु यदि नास्तिकता और छल-कपट, आदि की बातें हैं तो उनकी नकल बिना विचारे करने लगेंगे। यही कारण है कि हम इस वेगसे गिर रहे हैं।

भगवानकी कृपासे आजकल इस दूषित मनोवृत्तिका परिहार होकर अपनी भारतीय संस्कृतिके प्रति हमारे युवकोंके अन्दर अनुराग उत्पन्न हुआ है तथा सरलता, आस्तिकताका भाव कुछ-कुछ आया है। सरल, सादा निष्कपट और धार्मिक जीवन ही भारतकी विशेषता रही है। यदि इसको ही हम अपने दैनिक जीवनमें स्थान न देंगे तो भारतीयताकी रक्षा कैसे हो सकती है? अतः हमारे लिये आवश्यक है कि हम भारतीय संस्कृतिके अनुरूप अपना जीवन बनायें।

जब तक हम भारतीय संस्कृति, सभ्यताका समुचित अनुकरण नहीं करेंगे, हमारी कोई भी उन्नति नहीं हो सकती। जबतक हम भारतीय आर्य-ऋषि-मुनियों द्वारा बतलाये रास्तेपर न चलेंगे तबतक हम वास्तविक सुख और शांन्ति नहीं प्राप्त कर सकते। इसलिये यदि हम चाहते हैं कि हमारी, हमारे परिवारकी, हमारे देशकी उन्नति हो, हम समृद्धशाली बनें तो हमारे लिये आवश्यक है कि हम तन, मन, धनसे भारतीय संस्कृति, सभ्यता, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षाको अपनायें। यही हमारा परम कर्तव्य है जिससे विमुख होना हमारे लिये बुरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपवास करनेसे लाभ

श्री रुलियाराम गुप्त

उपवासोंकी हमारे धर्म और आयुर्वेद शास्त्रोंमें बड़ी महिमा गायी गयी है। जहां कोई अनुष्ठान करना हुआ, कोई व्रत लेना हुआ कोई नयी बात हुई वहीं उपवासका विधान है। कोई भी कार्य आप आरम्भ करें आपको अवश्य ही उपवास करना पड़ेगा। धर्मकी, स्वास्थ्यकी सारी भित्ति उपवास पर अवलम्बित है। शुभ कार्योंमें, अशुभ कार्योंमें (प्रायश्चित स्वरूप) स्वास्थ्यमें, रुग्णावस्थामें जहां देखिये वहीं उपवासका विधान आपको मिलेगा।

उपवासको जो इतना अधिक महत्व दिया गया है उसका कारण यह है कि किसी भी कार्यकी सिद्धि, साधनकी अच्छाई पर ही निर्भर करती है। जैसा साधन होगा वैसा ही परिणाम होगा। उचित और योग्य साधनके अभावमें परिणाममें स्थायित्वका होना सम्भव नहीं। यदि हमारी प्रणाली शुद्ध हुई तो हम निश्चय सफल होंगे, अन्यथा हमें असफलता ही मिलेगी। एक कहावत है—जिस कार्यका आरम्भ अच्छे प्रकार होता है उसमें अवश्य सफलता मिलती है।

इसीलिये हमारे धर्म और आयुर्वेद शास्त्रोंमें इस बातका विधान है कि किसी भी कार्यको प्रारम्भ करनेके पहले हमें अपने मनको यथावत् शुद्ध कर लेना चाहिये। इसीलिये हमारे ऋषियोंने उपवास करनेका आदेश किया है। वास्तवमें उपवास करनेसे स्वास्थ्य उत्तम होता है, शरीरके दोषादि दूर हो जाते हैं, मन प्रफुल्लित हो जाता है, शरीर हल्का और कान्तियुक्त हो जाता है तथा किसी भी कार्यके करनेमें मन लगता है।

यहां हम शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपवासके सम्बन्धमें कुछ विचार करेंगे।

मनुष्य सोते बैठते कुछ न कुछ किया ही करता है। उसके पास शारीरिक या मानसिक कार्य कोई-न-कोई अवश्य ही बना रहता है। किन्तु यदि इन कार्योंके बीचमें उसको विश्राम मिल जाता है तो वह द्विगुणित उत्साहसे काम करता है। यदि विश्राम न मिले तो वह थककर चूर हो जाता है और कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। यदि थोड़ी देरतक उससे जबरदस्ती कार्य कराया भी जाये तो वह बिल्कुल खराब होगा। किन्तु यदि बीचमें उसको थोड़ा भी विश्राम मिल जाये तो फिर उसको इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि उसके सम्मुख आलस्य प्रमाद, थकावट और उद्वेगकी कोई बात नहीं रह जाती। ठीक यही दशा हमारे शरीरके भीतर कार्य करनेवाले पाचन अवयवोंकी भी है। उनको निरन्तर कार्य करना पड़ता है। इसलिये उनमें शिथिलता आ जाती है। यदि उनको विश्राम दे दिया जाये तो वे नयी ताजगी और स्फूर्तिके साथ कार्य करेंगे। उनमें नयी शक्ति भर जायेगी और कार्य भी सुचारु रूपसे होगा। इसलिये उनको विश्राम देना बहुत ही आवश्यक है। शरीरको तो हम कार्य न करके विश्राम देते हैं और इस प्रकार अपनी थकावटको दूर कर लेते हैं पर उन अवयवोंको, जिनसे हमें काम करनेकी शक्ति प्राप्त होती है, जिनपर ही हमारा जीवन अवलम्बित हम बिल्कुल ही विश्राम नहीं देना चाहते वरन् उनसे इतना अधिक काम लेते हैं जितना शरीरके किसी भी अवयवसे नहीं। भला सोचिये कि इस प्रकार अधिक काम लेनेसे उनके ऊपर क्या प्रतिक्रिया होगी। क्या वे अच्छी तरह काम कर सकते हैं? कदापि नहीं। और यही कारण है कि हमारे अन्दर दोष एकत्र हो जाते हैं। यदि किसीको लगातार मानसिक श्रमका कार्य करना पड़े तो उसको बहुत शीघ्र विश्राम की आवश्यकता होगी। यदि वह विश्राम न करे तो उसका मस्तिष्क विकृत हो जाता है और वह पागल हो जाता है। इसी प्रकार यदि हम अपने सुकोमल पाचन अवयवोंको विश्राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न देंगे तो वे दुर्बल, अशक्त और काम करनेके सर्वथा अयोग्य हो जायेंगे। कालान्तरमें उनमें इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि वे अपना कार्य किसी तरह कर सकें और इसका परिणाम यह होता है कि हम तरह-तरहकी बीमारियोंमें फंस जाते हैं। इसलिये इन अवयवोंको विश्राम देना बहुत ही जरूरी है।

उनको विश्राम देनेका एक मात्र साधन उपवास है। हम प्रति दिन कई बार खाते हैं और इस प्रकार इन अवयवोंको सदा कार्यमें फंसाये रखते हैं। यदि हम भोजन न करें तो निश्चय ही कार्यके अभावमें उनको विश्राम मिलेगा जिससे वे पुनः शक्ति-सञ्चय कर लेंगे और पुनः भली भांति कार्य करनेके योग्य हो जायेंगे। इसलिये उपवास करना प्रत्येक मनुष्यके लिये जरूरी है - यह बात स्पष्ट हो गयी।

अब प्रश्न यह होता है कि कितने-कितने दिनोंके बाद और किस प्रकारका उपवास किया जाये। वैसे तो हमारे यहां कई प्रकारकी, यथा—चान्द्रायण आदि – उपवास विधियां प्रसिद्ध हैं, किन्तु पक्षमें एक बारका विधान बहुप्रचलित है और अधिकांश लोग इस पक्षका समर्थन करते देखे गये हैं कि पन्द्रह—सोलह दिनोंके बाद एक बार प्रत्येक मनुष्यको उपवास कर लेना चाहिये। इसीलिये हमारे पूर्वजोंने प्रत्येक एकादशीको उपवास करनेका आदेश दिया है और उसका समावेश धर्मशास्त्रमें इसलिये किया है कि लोग अवश्य ही इसका पालन करें। आजकल कुछ ऐसा दोष हमारे अन्दर आ गया है कि इसके धार्मिक पहलूको ही ध्यानमें रखा है और आरोग्यता सम्बन्धी पहलूको भुला दिया है। इसलिये एकादशीके दिन लोग अन्न न खाकर और गरिष्ठ चीजें इतनी अधिक मात्रामें खा लेते हैं कि इसकी असलियत ही छिप गयी है। जिस उद्देश्यसे एकादशीको उपवास करनेका विधान किया गया था वह उद्देश्य ही नष्ट होगया और इसीसे उसका कुफल हम लोग भोगने लग गये। वास्तवमें चाहिये तो यह कि उस दिन कुछ भी न खाया जाये। बिलकुल निराहार रहे, उपवासका अथवा अन्न न खानेका पूरा लाभ उठाया जा सके। किन्तु लोग इसकी ओर तो ध्यान ही नहीं देते स्वादेन्द्रियको तृप्त करनेके लिये तरह-तरहके पदार्थ उदरमें उस दिन भी भर देते हैं। यही कारण है कि लाभके बजाय हानि अधिक होती है। अतः उस दिन पूर्ण निराहार रहकर पाचन अवयवोंको कुछ विश्राम देना चाहिये जिससे स्वास्थ्य और शक्तिकी वृद्धि हो।

इससे शरीर नीरोग और सबल तो होगा ही मानसिक लाभ भी अपार होगा। कहा है—Sound mind in a sound body. शारीरिक दृष्टिसे यदि हम अच्छे रहेंगे तो मानसिक दृष्टिसे भी अवश्य ही अच्छे रहेंगे।

रहन-सहनमें सादगी मनुष्य जीवनमें विशेष महत्व रखती है। आजकलके लोगोंमें बनाव-सिङ्गारका रोग फैल गया है। यह बड़ी अजीब बात है कि एक पुरुष विभिन्न ढङ्गसे बाल कटाये, चेहरेपर रङ्ग-विरङ्गी औषधियों और सामग्रियोंका लेप करे और सुगन्धित द्रव्योंकी दूकान बना घूमा करे। कपड़े लोग ऐसे पहनते हैं कि सतरंगी चिड़िया भी मात है। स्त्रियोंमें शृङ्गारकी मात्रा तो बढ़ गयी है लेकिन पुरुष उनसे भी कहीं आगे बढ़ जाते हैं। यहींसे हमारा विनाश आरम्भ होता है।

सादे कपड़े पहनना चाहिये और उन चीजोंका प्रयोग शरीरके लिये किया जाये, जो उपयोगी हों, तड़क-भड़कवाली नहीं। क्या कोई पुरुष यह दावा करता है कि गालमें पाउडर और क्रीम लगाने अथवा रङ्ग-विरंगे कपड़े पहननेसे वह दिग्विजय कर लेगा। सफाई स्वास्थ्यके लिये बहुत जरूरी है। मनुष्यको सभी प्रकारकी सफाईका ध्यान रखना चाहिये। सुन्दरता और आकर्षण तो मनुष्यमें गुणोंसे आता है। यदि ललाट पर विद्या बुद्धि और ब्रह्मचर्यका तेज हो तो फिर क्या संसार आकर्षित नहीं होगा।

स्वस्थ और सच्चे आदमीका आदर सभी करेंगे, वह भले ही खादीका एक कुर्त्ता पहनता हो। शृङ्गार प्रियतासे विलास-प्रियता बढ़ती है और सादगीसे मानसिक शुद्धि मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोदुग्ध और हमारा स्वास्थ्य

श्रीछोटेलाल कानोडिया

प्राचीन कालसे भारतवर्षमें गोदुग्धको आहारकी सब चीजोंके मुकाबलेमें विशेषता प्राप्त है। गायके दूधमें वे सभी तत्व हैं जो हमारे शरीरके पोषण के लिये आवश्यक हैं। फल, अन्न, शाक, सब्जी सब चीजोंमें कोई-न-कोई कमी अवश्य रह जाती है किन्तु जहांतक दूधका सम्बन्ध है यह कहा जा सकता है कि इसमें किसी भी तत्वकी कमी नहीं है और मनुष्यके लिये यदि सबसे उपयुक्त और अपने आप पूरा-पूरा आहार कोई है तो दूध। मनुष्य और कोई भी एक चीज खाकर स्वस्थ नहीं रह सकता किन्तु उसे यदि सदा दूध ही मिले तब भी वह स्वस्थ्य रहकर सारे कार्य कर सकता है। उसकी शक्ति तनिक भी कम नहीं होगी। उसका उत्साह पूर्ववत् ही बना रहेगा। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि बच्चे, चाहे वे मनुष्यके हों अथवा अन्य जीवधारियोंके, जबतक और कोई पदार्थ खाने योग्य नहीं होते तबतक केवल माताके दूधपर ही रहते हैं और उतने समय तक अधिकतर वे पूर्णस्वस्थ रहते हैं। यही कारण है कि प्राचीन कालमें हमारे ऋषि-मुनि आश्रमोंमें रहते हुए भी जहां उन्हें फल, वनस्पति सभी आरोग्यप्रद और पौष्टिक आहार मिलते थे, गाय रखते थे, उनकी सेवा करते थे और उनके दूधसे अपना तथा अपने शरीरका पोषण करते थे। गौओंके प्रति उनकी कितनी भक्ति थी यह इसीसे प्रकट हो जाता है कि नन्दिनीको वशिष्ठने लाख मांगने पर भी राजर्षि विश्वामित्रको न दिया यद्यपि उसके लिये दोनोंमें भीषण संग्राम हुआ।

इस लेखके लेखक

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे पूर्वजोंके अन्दर कितनी गोभक्ति और गोसेवाका भाव था। गायको हमारे यहां गोमाता कहते हैं और उसको सदा माताकी तरह पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। इसका कारण यह है कि जहां दूध सबसे अच्छा, उत्तम और लाभप्रद आहार है वहां और पशुओंके दूधसे गायका दूध सबसे अच्छा गिना जाता है। गायके दूधको ही अमृत कहते हैं। दूधसे घी और मक्खन आदि बनते हैं। घीको आयुर्वेद शास्त्रमें स्पष्ट रूपसे—घृतमायुः कहा है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसका यही मतलब है कि प्रत्येक मनुष्यको नित्यप्रति कुछ न कुछ दूध अवश्य मिलना चाहिये। दूधके बिना भोजन ही पूरा नहीं होता। किन्तु आजकल हमारे देशमें नब्बे प्रतिशत लोगोंको दूध नहीं मिलता। और जिनको मिलता भी है उनको दूधके स्थानपर पानी। इसका कारण यही है कि हमारे अन्दर गोसेवा और गोरक्षाका भाव सर्वथा लुप्त हो गया है। जिससे हमको इतने लाभ हों उनकी चिन्ता हम न करें यह कितनी लज्जाकी बात है। इसलिये यह हमारा परम कर्तव्य हो जाता है कि सब कुछ छोड़कर गोरक्षाके कार्यमें लग जायें—जिससे हमारे शरीरकी, मनकी, तथा आत्माकी शुद्धि हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारके तत्त्ववेत्ताओंपर उपनिषदोंका प्रभाव

पं० अयोध्याप्रसाद बी० ए०, वैदिक रिसर्चस्कालर

शब्दस्तोम महानिधिमें 'उपनिषद्' शब्दका अर्थ यह बतलाया गया है कि "**उपनिषद्यते प्राप्यते ब्रह्मविद्या अनया इति**"। उप+नि+षद्+क्विप् अर्थात् इनके द्वारा ब्रह्म विद्याकी प्राप्ति की जाती है इसलिये इन्हें उपनिषद् कहा जाता है

इसी आशयको लेते हुए श्री स्वामी शंकाराचार्यजी महाराजने अपने मुण्डकोपनिषद्के भाष्यकी भूमिकामें 'उपनिषद्' का लक्षण इस प्रकार किया है:—

"**य इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्मभावे श्रद्धाभक्तिपुरःसरा सन्तस्तेषां गर्भजन्मजरारोग्याद्यनर्थपूगं निशातयति परं वा ब्रह्म गमयति। अविद्यादि संसार कारणञ्चात्यन्तमवसादयति विनाशयत्युपनिषद्। उप+नि पूर्वस्य सदेरेवमर्थस्मरणाम्॥**"

अर्थात जो कोई श्रद्धा और भक्तिसे संयुक्त होकर अत्यन्त प्रेमके साथ इस ब्रह्मविद्याके निकट आते हैं उनके गर्भजन्म (गर्भमें जन्म ग्रहण करना) जरा रोगादि अनर्थ समूहोंको यह शिथिल करती है अथवा उनके परब्रह्ममें मिलाती है और उनके अविद्यादि संसार कारणको अत्यन्त विनष्ट कर देती है, इस हेतु इस ब्रह्म विद्याका नाम उपनिषद् है, क्योंकि उप+नि+षद्का ऐसा अर्थ होना सम्भव है। श्री शंकराचार्यका भाव यह है कि 'उप' शब्दका अर्थात् समीप, 'नि' का अर्थ अत्यन्त और 'सद्' धातुके विकारण = शिथिल करना, गति = गमन करना, अवसादन = नाश करना ये तीन अर्थ हैं। अतः सम्पूर्ण 'उपनिषद्' शब्दका यह अर्थ हुआ कि जो जिज्ञासु (उप) इस ब्रह्म विद्याके समीप श्रद्धा और भक्तिसे पहुंचता है उसके क्लेशोंको (निशातयति) अत्यन्त शिथिल कर देती है अथवा (उप) जो इसके समीप आता है उसको (ब्रह्म गमयति) ब्रह्मके समीप ले जाती है और अविद्यादि संसार कारणको (नि) अत्यन्त (अवसादयति) विनष्ट कर देती है।

इसी प्रकार अपने उपनिषद् भाष्यके अन्यस्थलोंमें श्री स्वामी शंकराचार्यजी महाराजने उपनिषद् शब्दका अर्थ यह किया है कि ये "अज्ञानके विनाशक हैं" अथवा "ये ब्रह्म-प्राप्तिके पथ-प्रदर्शक हैं" (शंकर भाष्य-वृ० आ० प्र० २,४; कठ० प्र० ७३, ११; तैत्ति, प्र, ९, ५; मु० प्र, २६१-७०)

स्पष्ट शब्दोंमें कहा जा सकता है कि आत्मासे अज्ञानका पर्दा हटाकर परमतत्त्वकी झलकका अवलोकन करना ही उपनिषद् ग्रन्थका परमध्येय है। बाह्यिक दृश्यमाण जगतका ज्ञान हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त करते हैं तथा इस दृश्यमाण जगतके क्रिया-कलापके आधार स्वरूप प्राकृतिक नियमोंका ज्ञान हम अपनी मेधाशक्ति द्वारा उपलब्ध करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु इस समष्टि जगत् तथा इसके अन्तर्गत परिवर्तनके कारण नैसर्गिक नियमोंका आदि मूल जो अतीन्द्रिय तथा मेधाशक्ति द्वारा भी अगम्य है उसका ज्ञान प्राप्त करना अति ही दुरूह है। जर्मन देशके प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता 'काण्ट' (Kant) को भी शुद्धबुद्धि की समालोचना करते हुए स्वीकार करना पड़ा कि उस परम तत्त्वका ज्ञान बुद्धि द्वारा उपलब्ध नहीं हो सकता। हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) जैसे तत्त्ववेत्ताको भी घोषणा करनी पड़ी कि वह परम तत्त्व अज्ञात् तथा अज्ञेय (Unknown and unknowable) है। उसके अनुसंधानमें मनुष्यकी समस्त शक्तियां निश्चेष्ट हो जाती हैं:—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वागच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि॥ इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥ केन० उ० १।३,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् उस परम तत्त्व तक आंखें नहीं जा सकतीं, और न वहांतक वाणीकी ही पहुंच है, तथा मन भी उसतक पहुंचने में असमर्थ है, न तो उसे हम जानते हैं और न हम उसे जना सकते हैं, वह तो हमारे जाने हुए व्यक्त दृश्यमाण जगतसे भी परे है तथा जिस अव्यक्त जगतको हम नहीं जानते उससे भी वह परे है। इस विषयमें हमारे पूर्वके आचार्योंने हमारे लिये ऐसा ही उपदेश दिया है।

अन्यस्थलोंमें भी इसी प्रकार कहा गया है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्....इत्यादि, तैत्ति० २।४

अर्थात् जहांसे वाणी मनके साथ उसके बिना प्राप्त हुए लौट आती है। वह ब्रह्म आनन्द स्वरूप है ऐसा उसे ज्ञानी पुरुष जानते हैं।

इस दृश्यमाण जगतके दोनों स्वरूप, कारण जगत तथा कार्य जगत अथवा अव्यक्त जगत तथा व्यक्त जगत हमारी बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्राह्य हैं, परन्तु जगतके इन दोनों स्वरूपों से परे जो ब्रह्म-तत्त्व है वह न तो इन्द्रियों द्वारा ही ग्राह्य है और न बुद्धिकी ही वहां तक पहुंच है। विश्लेषणात्मिका बुद्धि (Analytical reason) तो संश्लिष्ट जगतके अन्तर्गत कारण-कार्य-प्रवाहके क्रमको निरीक्षण कर तथा कृत्रिम साधनों द्वारा इस क्रमका परीक्षण कर तद्विषयक क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्तिमें पूर्णतया समर्थ है परन्तु जिसके विषयमें यह कथन किया गया है—

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः
श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं
सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥
मुण्डक० उ० १, ६।

अर्थात्—वह ब्रह्म ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अगम्य है, तथा कर्मेन्द्रियों द्वारा भी अग्राह्य, अगोत्र तथा अवर्ण है, वह चक्षु तथा श्रोत्रादि इन्द्रियांसे रहित है और उसके हाथ-पांव आदि कर्मेन्द्रियां भी नहीं हैं; वह नित्य है, विभु है, सर्वव्यापक तथा अत्यन्त सूक्ष्म है वह क्षय रहित है; उस समस्त भूतोंके मूलको धीर पुरुष साक्षात् कर लेते हैं। इस परम तत्त्व तक तो विश्लेषणात्मिका बुद्धि (Analytical reason) की पहुंच असम्भव है क्योंकि इस बुद्धिकी ज्ञानप्राप्तिकी रीति तर्कणा (Thinkning) है, पर—

नैषातर्केण मतिरापनेया। कठ० उ० १।२।९

अर्थात्—तर्क शक्ति द्वारा उस ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

इसीलिये उपनिषदोंने ज्ञानके दो विभाग किये हैं—(१) अपरा विद्या (Existeric Knowledge) तथा (२) परा विद्या (Esoteric Knowledge) और परा विद्या द्वारा ही उस अक्षर, अव्यक्तका ज्ञान होना सम्भव है, जैसा कि स्वयं उपनिषद्का कथन है --

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते॥
— मुण्ड० उ० १।५

अर्थात् - परा विद्या द्वारा उस अक्षरका ज्ञान प्राप्त होता है। अतः उपनिषद् इसी पराविद्याके ग्रन्थ हैं परन्तु जिस प्रकार अन्यान्य विद्याओंका ज्ञान पुस्तकोंके स्वाध्याय, तद्विषयक व्याख्यानोंके श्रवण आदि साधनों द्वारा प्राप्त होता है उस प्रकार पराविद्या सम्बन्धी ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन॥
—कठ० उ० १।२।२३

इस आत्माकी उपलब्धि प्रवचन द्वारा नहीं हो सकती और न कोई इसे मेधा द्वारा ही जान सकता है और न बहुत श्रवण करनेसे ही इसे कोई प्राप्त कर सकता है। इस पराविद्याकी प्राप्तिके लिये प्राचीन कालमें श्रद्धालुभक्त ऋषियोंके आश्रमोंमें जाया करते थे और वर्षों ब्रह्मचर्य पूर्वक उनकी सेवामें रहते हुए उनसे इस रहस्य-विद्याका ज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ होते थे।

इसीलिये स्वयं उपनिषदोंमें इस रहस्य-विद्याके लिये **'गुह्य आदेशा'** (छा० उ० ३।५।२), **'परममगुह्यम्'** (श्वेताश्व० उ० ५-६) **"वेदगुह्य उपनिषत्सु गुह्यम्"** (कठ० उ० ३,१७; श्वेताश्वर, ६ २२) तथा **'गुह्यतमम्'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मैत्र० उ० ६-२९) इत्यादि शब्दोंके प्रयोग किये गये हैं। इस विद्याका उपदेश सर्वसाधारण जनताको नहीं किया जाता था। जो इस विद्याके प्राप्त करनेके उपयुक्त पात्र होते थे उन्हींको ऋषि इस रहस्य-विद्याकी शिक्षा दिया करते थे —

(१) तमेतन्नापुत्राय वान्तेवासिने वा ब्रूयात् ॥

— बृ० आ० उ० ६-३-१२

अर्थात्—जो अपना पुत्र वा शिष्य न हो उसे इस विद्याका उपदेश नहीं करना चाहिये।

(२) वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्राय शिष्याय वा पुनः ॥

—श्वेताश्व० उ० ६।२२

अर्थात् —वेदान्तके परमगुह्य रहस्यका उपदेश उस पुत्र वा शिष्यको नहीं देना चाहिये। जिसके (मन तथा इन्द्रियां) वशीभूत न हों।

बाइबिलके पढ़नेसे भी ऐसा विदित होता है कि मसीह भी रहस्यकी बातोंको ऐसे शब्दोंमें कहा करते थे जिसे चुने हुए कतिपय शिष्य ही समझ सकते थे और सर्वसाधारण जनता उस रहस्यको कुछ नहीं समझती थी। मसीह कहते हैं—

Therefore I speak them in parablse because they seeing see not . and hearing they hear not, nor do they understand.

Mathew. XIII. 13.

अर्थात्—इसलिये मैं उनसे कहनियोंमें बातें करता हूं क्योंकि वे देखते हुए नहीं देखते और सुनते हुए नहीं सुनते और न तो वे कुछ समझते ही हैं।

रहस्यविद्याके परिचायक ग्रन्थ होनेके कारण उपनिषद्की भाषा शैली भी इस प्रकारकी है कि उसे सर्वसाधारण पुरुष भली प्रकार हृदयङ्गम नहीं कर सकते। उपनिषद्का अध्ययन शताब्दियोंसे एतद्देशीय तथा विदेशीय विद्वान करते रहे हैं और उनपर इन उपनिषदोंका प्रभाव बहुत ही उत्तम पड़ा है। हां कतिपय साम्प्रदायिक पक्षपातमें ग्रस्त विद्वानोंने जान-बूझकर उपनिषदोंके विषयमें अनर्गल बातें भी लिख डाली हैं, जैसे उदाहरणके लिये गफ (Gough) महोदयका लेख ही देखिये —

"There is little that is spiritual in all this empty intellectual conception, Void of spirituality is the highest form that the Indian mind is capable of."

अर्थात्—इन समस्त उपनिषदोंमें आध्यात्मिक तत्त्वकी बातें बहुत ही कम हैं। भारतीय मस्तिष्क इसी उच्चतम विधानके योग्य हैं जिसमें शून्य बौद्धिक विचार आध्यात्मिकतासे रहित हैं।

'गफ' महोदयका यह लेख कितना पक्षपात पूर्ण है इसे पाठक भली प्रकार समझ सकते हैं। इसाई होनेके कारण हिन्दुओंके उच्चतम दार्शनिक तथा आध्यात्मिक आदर्शोंकी सराहना वे किस प्रकार कर सकते हैं। ऐसे ही लोगोंके विषयमें मसीहने कहा है—

....They seeing see not, hearing hear not, nor do they understand.

अर्थात्—वे देखते हुए नहीं देखते, सुनते हुए नहीं सुनते और न तो वे कुछ समझते ही हैं। हां जिन लोगोंने अपने हृदयसे पक्षपातको दूर कर उपनिषदोंके अध्ययन करनेका कष्ट किया है वे इसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। जे० एस० मेकेंझी (J. S. Mackenzie) महोदयने कितना ठीक लिखा है—

"The earlist attempt at a constructive theory of the cosmos, and certainly one of the most interesting and remarkable, is that which is set forth in the Upanishads."

—Encyclopedia of Religion and Ethics
Vol. VIII P. 597.

अर्थात्—विश्व ब्रह्माण्ड विषयक एक रचनात्मक सिद्धान्तके निर्धारण करनेका प्राचीनतम उद्योग जो निःसन्देह अत्यन्त ही चित्ताकर्षक तथा आश्चर्यपूर्ण है, वह है, जिसका वर्णन उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निषदोंमें किया गया है।

शोपेन हावर (Schopenhawer) जर्मन देशके एक बड़े प्रसिद्ध दार्शनिक पण्डित थे उन्होंने लैटिन भाषामें अनुवादित उपनिषदोंका अध्ययन किया था और इनके अध्ययनसे वे अत्यन्त ही प्रभावित हुए थे, जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है और उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उपनिषदोंके स्वाध्यायसे उन्हें निजी दार्शनिक विचारोंमें बड़ी सहायता मिली और उनके दार्शनिक विचारोंपर इनका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। इस विषयका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक *Wett als Wille Vorstellung* में इस प्रकार किया है :—

"How does every line display its firm difinite, and throughout harmonious meaning! From every sentence deep, original, and subline thoughts arise, and the whole is pervaded by a high and holy and earnest spirit....In the whole world there is no study, except that of the originals, so benificial and so elevating as that of the Opanikhat. It has been the solace of my life, it will be the solace of my death!"

—Translation by Huldane and Kemp.
Vol. I. Pp. XII and XIII.

अर्थात—'इनकी प्रत्येक पंक्ति अपने दृढ़, निश्चित् और प्रत्येक भागमें अनुरूप अर्थको कैसे सुन्दर ढङ्गसे प्रकट करती है! प्रत्येक वाक्यसे गम्भीर, मौलिक तथा उत्कृष्ट विचार उदय होते हैं और समस्त रचनामें एक उच्च, पवित्र तथा उत्साहपूर्ण आत्मा ओतप्रोत है। समस्त संसारमें इन अपूर्व रचनाओंके अतिरिक्त और कोई (उपयुक्त) अध्ययन (का विषय) नहीं हैं जो उपनिषदोंके सदृश् उपयोगी तथा समुन्नत करने वाला हो। ये हमारे जीवन (काल) में सान्त्वना प्रदायक सिद्ध हुए और ये हमारे मृत्युकालमें भी शान्ति प्रदायक सिद्ध होंगे।'

शोपेनहावर महोदयने जिस लैटिन भाषामें अनुवादित उपनिषदोंको पढ़ा था वह अनुवाद भी मूल संस्कृतसे नहीं किया गया था वरन् वह अनुवाद फारसी भाषामें किया गया था। उपनिषदोंका यह फ़ारसी भाषामें अनुवाद मोगल सम्राट बादशाह शाहजहांके ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा दाराशिकोहने मूल संस्कृतसे अपने आप किया था। शाहजादा दाराशिकोह अध्यात्म विद्याके एक श्रद्धालु जिज्ञासु थे और अपने आत्माकी पिपासाकी तृप्तिके लिये उन्होंने कुरान, बाइबिल आदि समस्त धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन किया था, परन्तु इनसे उनकी आत्माको शान्ति नहीं मिली जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं—

"जमीये कुतुब समावी बा नज़र दर आवुर्द।"

अर्थात्—मैंने समस्त आसमानी पुस्तकों अर्थात् ईश्वरीय पुस्तकोंका अवलोकन किया परन्तु

तिश्नगीये तलबे तौहीद के बहरेस्त,
बेनहायत दमबदम ज्यादा मी शुद।

अर्थात्—परमात्मा विषयक ज्ञान जो एक अथाह समुद्र है उसकी उत्सुकताकी प्यास क्षण-क्षण में अधिक होती जाती थी।

काश्मीरमें निवास करते हुए उनको मुल्लाहशाह नामक एक मुसलमान साधुके साथ सत्सङ्ग करनेका अवसर प्राप्त हुआ और उसकी प्रेरणासे उनका ध्यान उपनिषदोंकी ओर आकृष्ट हुआ। घरपर पण्डित रख उन्होंने संस्कृत भाषाका अध्ययन किया और कुछ ही कालमें इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि वेद तथा उपनिषदोंको वे समझने लगे। उपनिषदोंमें वर्णित अध्यात्मविद्यासे वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वयं इनके अनुवाद करनेका निश्चय कर लिया और तात्कालीन प्राप्त पचास उपनिषदोंका बहुत ही सुन्दर फारसी भाषामें उन्होंने अनुवाद किया जैसा कि वे लिखते हैं—

'आँ उपनिखत हाराके गञ्ज तौहीद बूद....
खुद वज़बाने फारसी बे कमो ज्यादा व
बे ग़र्जे नफ़सानी ब इबारत रास्त
ब रास्त लफ़ज़न लफ़जन तर्जुमा नमूदा बे फ़हमीद'

अर्थात्—इन उपनिषदोंका जो ब्रह्मज्ञानके कोष हैं...मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं फारसी भाषामें उनमें विना किसी प्रकारका न्यूनाधिक किये हुए तथा अपना कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न रखते हुए सत्य वाक्योंमें शब्दशः अनुवाद करके (उनके तात्पर्यको) समझा।

शाहजादा दारा शिकोह द्वारा फारसी भाषामें अनुवादित उपनिषदोंके अध्ययनसे इस बातका पता मिलता है कि वे किस प्रकार इनमें वर्णित अध्यात्मविद्यासे प्रभावित हुए थे। अनुवादकी भूमिकामें उन्होंने लिखा है—

किताबे क़दीम के बेशक व शुबह अव्वलीन किताबे समावी व सरचश्मये तहक़ीक़ व बह्र तौहीद अस्त ॥

अर्थात्—यह पुस्तक अनादि है और इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि समस्त ईश्वरीय पुस्तकोंमें यह प्राचीनतम है और परम सत्यका स्रोत और ब्रह्मज्ञानका समुद्र है।

शाहजादा साहेबने अपनी जिस आध्यात्मिक पिपासाकी चर्चाकी थी उसकी तृप्ति उन्हें इन्हीं उपनिषदोंके स्वाध्याय, तथा इनके अनुशीलन और निदिध्यासनसे हुई थी।

जर्मन देश निवासी शोपेनहावर ईसाई धर्मावलम्बी थे और शाहजादा दाहाशिकोह मुसलमान थे परन्तु दोनोंके हृदय साम्प्रदायिक पक्षपात और तज्जन्य संकीर्ण विचारसे शून्य रहे। इसी हेतु इन महानुभावों पर उपनिषदोंसे वर्णित अध्यात्मतत्त्वके स्वरूपका इतना गहरा प्रभाव पड़ा, फिर इस देशके विद्वानोंपर उपनिषदोंका प्रभाव पड़ना तो एक स्वाभाविक बात है। भारतीय तत्त्ववेत्ताओंपर इनका कितना गहरा प्रभाव पड़ा है इसका अनुभव तो इसीसे किया जा सकता है कि भारतवर्षमें जितने भी बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ता हुए, चाहे उनके मनोतीत सिद्धान्तों में परस्पर मतभेद हो उन सबने अपनी-अपनी विचार-धाराओंका आधार इन्हीं उपनिषदोंको स्वीकार किया है। स्वामी शंकराचार्य, स्वामी रामानुजाचार्य तथा स्वामी बल्लभाचार्य और जितने भी भारतके उच्च कोटिके दार्शनिक पण्डित थे सबने अपने-अपने सिद्धान्तोंकी पुष्टिमें उपनिषद् वाक्योंका ही उद्धरण दिया है। इनके निकट उपनिषदोंकी प्रामाणिकता वेदों ही के समान है, क्योंकि श्रुति नामसे वेद तथा उपनिषद् दोनोंका बोध होता है। कतिपय पण्डितोंका तो ऐसा भी विश्वास है कि उपनिषद् वेदोंसे पृथक् नहीं वरन् वे भी वेदोंके भाग मात्र हैं। अस्तु जो हो, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि भारतके समस्त दर्शन-शास्त्रवेत्ताओंके विचार उपनिषदोंके ही सिद्धान्तों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं। हाँ, उनके विचारोंमें जो परस्पर भेद हैं वह इस कारण है कि उपनिषद्के वाक्योंके अर्थ वे आचार्य अपनी-अपनी रीतिसे ऐसा करते हैं जिससे उनके निजी सिद्धान्तोंकी पुष्टि हो तथा परपक्षका निराकरण हो। उपनिषदोंके वाक्योंमें एक ऐसा सौन्दर्य तथा विशेषता है कि प्रत्येक प्रकारके विचार रखनेवाले मस्तिष्ककी तुष्टि उनसे हो जाती है। यद्यपि बौद्ध दार्शनिक पण्डित वेदों तथा उपनिषदोंको प्रामाणिक नहीं मानते थे तथापि इस बातको अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारतके अन्यान्य दर्शनोंके समान बौद्ध दर्शन पर भी उपनिषदोंमें वर्णित विचारोंका गहरा प्रभाव पड़ा है जैसा कि ब्लूमफील्ड (Bloomfield) महोदयने लिखा है—

"There is no important form of Hindu thought, Heterodox Buddhism included, which is not rooted in the Upanishads".

— The religion of the Veda p. 51.

अर्थात्—हिन्दू विचारशैलीमें ऐसी कोई भी विचारशैली नहीं है, जिनमें उदार विचार रखनेवाले बौद्धोंकी विचारशैली भी सम्मिलित है, जिनका मूल आधार उपनिषदोंपर स्थापित हो।

दार्शनिक पण्डितोंके दर्शनशास्त्र विषयक विचारोंमें परस्पर भेद होना सम्भव है, कारण कि दार्शनिक विचारकी प्रक्रिया तर्कणा शक्ति पर निर्भर है, परन्तु आत्मतत्त्वकी गवेषणाकी रीति तर्कणाशक्तिकी पहुंचसे परे कुछ और ही हैः—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभू-
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मान मैक्षदावृत्त-
चक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥

—कठ० उ० १।१।१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अर्थात्—स्वयंभू परमात्माने ज्ञानेन्द्रियोंको बहिर्मुखी रूपेण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृजन किया है, इसी कारण मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्यिक वस्तुओं ही का साक्षात् करता है और अन्तरात्माका निरीक्षण नहीं कर सकता, परन्तु कोई ही धीर पुरुष अमृतत्त्वकी प्राप्तिकी कामना करते हुए चक्षु आदि इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे निग्रहित कर उस विश्वात्माके साक्षात् करनेमें समर्थ होते हैं।

उपनिषदोंमें युक्तियुक्त तार्किक प्रमाणों सहित दार्शनिक विचारोंका प्रतिपादन न रहनेके कारण उनमें संकेतरूपेण वर्णित वाक्योंसे उनके पूर्ण तात्पर्यका हृदयङ्गम करना बहुत ही कठिन है। अध्यात्म विद्याके रहस्यात्मक तत्त्वोंका तत्कालीन ऋषियोंने योग-युक्त होकर आत्मगत अनुभूतियोंको रहस्यपूर्ण वाक्योंमें वर्णन किया है और जहांतक सम्भव हो सका संक्षेप तथा सरल शब्दों में ही उन विचारोंको परिस्फुटित किया। अनुभूतियोंकी रहस्यात्मक वार्तायें जो शब्दों द्वारा वर्णित हुईं उन्हें केवल मात्र पाठ कर लेनेसे हृदयङ्गम कर लेना सहज काम नहीं है। आज भी यदि हम रसायनशास्त्र वा अन्य व्यावहारिक विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थोंमें उनके प्रतिपाद्य विषयोंका अध्ययन करें तो केवलमात्र पुस्तकके वाक्यों द्वारा उनका समझना कठिन ही नहीं वरन् किन्हीं-किन्हीं अवसरों पर असम्भव-सा भी हो जाता है। इसीलिये एक पथ-प्रदर्शक गुरुकी आवश्यकता होती है जो वैज्ञानिक प्रयोगशालामें ले जाकर उन प्रतिपाद्य विषयोंको क्रियात्मक प्रयोग द्वारा समझाये। इसी प्रकार उपनिषदोंके विषयमें भी समझना चाहिये। उनमें बहुत स्थलोंपर आध्यात्मिक अनुभूतियोंके उल्लेख हैं, जिनको समझनेके लिये शिष्योंको आचार्योंकी सेवामें नियमपूर्वक जाना पड़ता था जो उसे दीक्षित कर रहस्य-विद्यामें प्रवेश कराते थे। इस प्रकार शिष्यगण आचार्यों द्वारा समस्त रहस्योंको समझनेमें समर्थ होते थे और गुरु-शिष्य परम्परागत इन विद्याओंका प्रचार होता था जैसा कि निम्नाङ्कित मन्त्रोंके आशयसे प्रतीत होता है—

परीक्ष्यलोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि गच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय
प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय॥
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्म विद्याम्॥

—मुण्ड० उ० २। १२-१३

अर्थात् कर्मों द्वारा प्राप्त जगतकी भली प्रकार परीक्षा कर ब्राह्मण ऐसा विचार करके कि जगतके समस्त पदार्थ कर्म द्वारा उत्पन्न हैं (अतः नाशवान हैं), उस (परमतत्व) के ज्ञानके लिये वह किसी ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरुकी सेवामें श्रद्धापूर्वक हाथोंमें समिधा लिये हुए उपस्थित हो। प्रशान्तचित्त मनको वशीभूत किये हुए जो श्रद्धापूर्वक सेवामें उपस्थित हुआ है ऐसे (श्रद्धालु शिष्य) को वह ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्मविद्याका उपदेश सत्यका आश्रय करके करे जिससे उस अक्षर (अविनाशी) तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन और उसका निग्रह

कविराज श्री रघुनन्दन शास्त्री

ऐहिक आमुष्यिक चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति ही मानव जीवनका उद्देश्य है। प्रथम प्रवृत्यात्मक त्रिवर्गको प्राप्त करके जीव निवृत्यात्मक अपवर्गको प्राप्त करता है और परब्रह्ममें लीन हो जाता है। किन्तु प्रवृत्ति तथा निवृत्ति उभयात्मक चेष्टाओंका मूल कारण मन है। अर्थात् सर्वविध आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति या अवनति विषयक चेष्टायें मनके ही द्वारा हुआ करती हैं। कहा भी है—

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।'

अर्थात् मनुष्योंके बन्धन या मुक्तिका एकमात्र कारण मन ही है।

वैशेषिक दर्शनमें द्रव्यप्रकरणमें आत्माके पश्चात् मनका निर्देश किया है और मनको आत्मज कहा है, अर्थात् आत्माद्रव्यके अनुकूल मनोद्रव्यका निर्माण होता है। चरकमें भी कहा है—

'शरीरं हि सत्वमनुविधीयते, सत्वञ्च शरीरम्'

अर्थात् मनके अनुकूल भावी शरीर बनता है और शरीरके अनुकूल मनका निर्माण होता है। शरीर अन्नसे बनता है, अतः जिस प्रकारका आहार किया जाता है तदनुरूप मन भी बनता है। छान्दोग्योपनिषद्में कहा है—

'अन्नमशितं त्रेधाविधीयते। तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत् पुरीषं भवति, योमध्यमस्तन्मांसं योऽनिष्ठस्तन्मन इति अन्नमयं हि सौम्यं मनः।'

अर्थात् भुक्त अन्नके स्थूलतया तीन भाग होते हैं उसका मोटा भाग पुरीष (मल) को, मध्य भाग मांस (शरीर) को तथा सूक्ष्मतम भाग मनको बनाता है। इसलिये मन अन्नमय और सौम्य है। सूक्ष्म वस्तु द्वारा निर्मित होनेके कारण मन अणुस्वरूप है और निरवयव केवल है।

'अणुत्वमथ चैकत्वं द्वौगुणौ मनसः स्मृतौ।'

च० सं०

मन समस्त इन्द्रियोंका अगोचर है। चरकमें मनका स्वरूप वर्णन किया है—

'अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्वसञ्ज्ञकं चेत इत्याहुरेके। तदर्थात्मसम्पदायत्तचेष्टं चेष्टा प्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम्। मनः पुरः सरानीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति।'

मन अतीन्द्रिय है इसको सत्व भी कहते हैं, यह स्वविषय (चिन्त्य पदार्थ) तथा आत्मसम्पद् (प्रयत्नशीलता) के सहयोगसे चेष्टा करता है और समस्त इन्द्रियोंकी चेष्टाका स्वयं कारण है, क्योंकि किसी भी विषयकी प्रतिपत्ति समनस्क इन्द्रिय द्वारा होती है। बिना आत्मसहयोगके मन कुछ नहीं कर सकता।

मन किस तरह विषयमें प्रवृत्त होकर उसकी उपलब्धि करता है इसका प्रतिपादन करना आवश्यक है। सर्वप्रथम मन, इन्द्रिय द्वारा किसी विषयका निर्विकल्पक ज्ञान करता है, इसको ऊह कहते हैं। पश्चात् उस विषयके गुण दोषकी विवेचना करता है तदनन्तर उसकी हेयता या उपादेयताको लेकर बुद्धि प्रवृत्ति होती है और बुद्धिके अनुकूल इन्द्रियां उस व्यापारमें प्रवृत्त होने लगती हैं। जिस समय मन किसी विषयके गुण दोषोंपर विचार करता है उस समय दो विरुद्ध भावोंका संघर्ष हुआ करता है और मनुष्य क्षणभरके लिये किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। यदि उस समय मनको हित विषयमें प्रवृत्त होनेकी और अहित विषयसे निवृत्त होनेकी प्रेरणा न की जाये तो वह स्वच्छन्द होकर किसी तरफ बढ़ सकता है। यह प्रेरणा धृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा दी जाती है। मनोनिग्रहकारिणी शक्तिका नाम धृति है और यह शक्ति आत्मामें रहती है। आत्मामें जितना बल होगा उतनी ही दृढ़ यह शक्ति होती है। यदि आत्मिक बल नहीं है तो धृतिभ्रंश हो जाता है और मनोनिग्रह नहीं हो सकता एवं मनका बांध टूट जाता है।

विषय प्रवणं चित्तं धृति भ्रंशान्नशक्यते।
नियन्तु-महितादर्थाद् धृतिर्हिनियमात्मिका॥

अर्थात् विषयानुरक्त मन धृति-भ्रंश होनेपर निगृहित नहीं हो सकता क्योंकि इसकी नियामिका शक्ति धृति ही है। मनका यह स्वभाव है कि वह जिस विषयको सोचता है उसका एक धुंधला चित्र हमारे अन्तःपटपर अंकित हो जाता है, और ज्यों-ज्यों मन उसका चिन्तन करता है त्यों-त्यों उस भावचित्रकी छाया गहरी तथा दृढ़तर होती रहती है तथा मन उसी प्रकारके भावोंको अपनानेका आदी (Habituated) हो जाता है। आदतके अनुसार ही वाङ्मनः शरीरकी प्रवृत्ति होती है। इसी सिद्धान्तके आधार पर अंग्रेजीमें एक कहावत है—'What a man thinks that he becomes' मन बड़ी चञ्चलता और वेगसे अपना कार्य करता है इसीलिए इसको दुर्निग्रह मानते हैं। जैसा अर्जुनने कहा है —

'चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥'

हे कृष्ण यह मन बड़ा चञ्चल और शक्तिशाली है इसका निग्रह करना तो मानो हवाको रोकना है। तब भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥'

हे अर्जुन! निस्सन्देह मन दुर्निग्रह और चञ्चल है परन्तु अभ्यास तथा विषयविरक्तिसे इसका दमन किया जा सकता है। किसी भाव या कर्मकी बार-बार आवृत्तिका नाम अभ्यास है। यदि मनको अच्छे-अच्छे विषयोंके चिन्तन करनेका आदी बना दिया जाये तो वह उन्नतिकी ओर अग्रसर होने लगता है। इसके निग्रहका कारण केवल धी, धृति, स्मृतिकी सम्यक् उपस्थिति है, जोकि आत्माके गुण हैं—

'इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः।
बुद्धिः स्मृतिरहंकारो लिङ्गानि परमात्मनः।'

यदि इनका नाश हो जाये तो आत्मबल नष्ट हो जानेसे मन दुष्ट हो जाता है और मनुष्य विनष्ट हो जाता है।

'धी धृति स्मृति विभ्रष्टः कर्म यत्कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात्सर्वदोष प्रकोपणम्॥'

अर्थात्—धी, धृति, स्मृति भ्रष्ट हो जानेसे मनुष्य जिस अशुभ कर्मको करता है उसको 'प्रज्ञापराध' कहते हैं और यह प्रज्ञापराध समस्त शारीरिक (वातादि) तथा मानसिक (रजस्तमः) दोषोंको प्रकुपित करनेवाला होता है। यह प्रज्ञापराध अहित विषयोंके सतत सम्पर्कसे होता है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने भी इसको कारण सहित निर्दिष्ट किया है—

'ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्सञ्जायते कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥'

अर्थात्—विषयोंका सतत चिन्तन करनेसे उनमें मन आसक्त हो जाता है और असक्तिसे उन पदार्थोंमें कामना होती है, कामनासे क्रोध और क्रोधसे मोह, मोहसे स्मृतिनाश, स्मृतिनाशसे बुद्धिका नाश तथा बुद्धि नष्ट होनेसे सर्वनाश हो जाता है। इसलिये कल्याण चाहनेवालेको जहांतक हो सके धृत्यादिका नाश नहीं होने देना चाहिए। यह धृत्यादि ही आत्म सम्पद् हैं, इन्हींसे आत्मा बलवान् होती है। इस आध्यात्मिक शक्तिसञ्चय का उपाय भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

'शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृति गृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपिचिन्तयेत्॥'

मनुष्यको हर समय अपने सामने इस विचारको रखना चाहिये कि इस समय मेरे दिन-रात्रि किस प्रकारसे व्यतीत हो रहे हैं मैं सद्गुण युक्त होकर समयका सदुपयोग कर रहा हूं अथवा दुर्गुणी होकर दुरुपयोग। इस प्रकार चिन्तन करनेसे मनुष्य दुःखको प्राप्त नहीं होता। बल्कि उसका कल्याण होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलताका साधन

पं० जगमोहन शुक्ल शास्त्री

वर्तमान युग आर्थिक युग है । आजकल हमारी दृष्टि सर्वथा आधिभौतिक हो गयी है । सांसारिक उन्नति और अभ्युत्थानका ही हमको सदा ध्यान रहता है । हमारे जीवनमें जो अशान्ति और असन्तोष आ गया है उसका प्रधान कारण यही है । चूंकि आजकल हमारे अन्दर किन्हीं दोषोंके कारण गिरावट आ गयी है, हम गुलाम हो गये हैं अतः हमारी प्रवृत्ति अधिकतर अनुकरणात्मक हो गयी है । इस समय परतन्त्र होनेके कारण हमारी आंखोंमें एक ऐसा नशा-सा छा गया है कि हमारे प्रभु जो करते हैं वही ठीक है और हमें भी उसीका अनुकरण करना चाहिये । यह बात यद्यपि बुरी है फिर भी हमें ज्ञान नहीं होता । इसीका यह परिणाम है कि हम अपनी संस्कृति और सभ्यताको भूल बैठे हैं । इसमें सन्देह नहीं कि हमारी आंखें अब खुल रही हैं पर अभी भी अज्ञानका चश्मा हमारी आँखों पर चढ़ा हुआ है ।

अस्तु, सरल जीवन और ऊँचे विचार, जो भारतीय जीवन का आदर्श था, उसको भूलकर हम सांसारिक उन्नतिको सब कुछ समझकर उसकी ओर बढ़ने लगे इसीसे हमारे अन्दर अशान्ति और असन्तोष व्याप गया । अध्यात्मवाद जो भारतका प्राण था उसको हम सर्वथा भूल गये हैं, जो हमारे लिये घातक है । इसलिये यदि हम जीवनमें उन्नत और सफल होना चाहते हैं तो हमारे लिये परमावश्यक है कि नैतिकता और आध्यात्मिकताकी ओर बढ़ें जिससे इहलौकिक और पारलौकिक सुखोंकी प्राप्ति हो ।

धर्मका साधक

महामहोपाध्याय पं० सकलनारायण शर्मा

विभिन्न युगोंके लिये धर्मके विभिन्न मार्ग बतलाये गये हैं । कलियुगके लिये सबसे बड़ा धर्म दान है,—यह तो रही शास्त्रोंकी बात । यदि हम वर्तमानकालको देखें तब यह शास्त्र-वचन बिलकुल ठीक प्रतीत हो रहा है । आजकल आर्थिक युग है । धनका महत्व बढ़ गया है । बिना धनके आजकल कोई भी कार्य सम्भव नहीं है । यदि धन न हो तो दान नहीं किया जा सकता । दान नहीं करनेसे पुण्य कार्य नहीं हो सकते । आज जिस गतिसे ज्ञान विज्ञानकी उन्नति हो रही है उसको देखते हुए यह स्पष्ट है कि जिसके पास धन नहीं है, वह न तो तीर्थाटन कर सकता है, न स्कूल, पाठशाला आदिकी सहायता कर सकता है । यदि उसके अन्दर उत्साह और लगन हो तो भी धनके अभावसे उसके लिये कुछ कर सकना सम्भव नहीं है ।

लोकमें भी यह बात प्रचलित है—धनसे धर्म, अर्थात् यदि धन नहीं रहे तो धार्मिक कृत्य नहीं किये जा सकते । इसलिये हमारा परम कर्तव्य है कि धनोपार्जनकी ओर प्रवृत्त हों और विशेषकर इस आर्थिक युगमें, किन्तु ध्यान इस बातका रखना चाहिये कि परिश्रमसे उपार्जित धन ही अच्छा और लाभकारी होता है । इस प्रकार उपार्जित धनको सदा सत्कार्यमें लगाना चाहिये । धनसे धर्मका मतलब ही यह है कि धनका उपयोग धार्मिक कार्योंमें हो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

अपनी बात

आज सात्विक जीवन अपनी आयुका एक वर्ष समाप्त कर द्वितीय वर्षमें पदार्पण कर रहा है। ये बारह मास जैसे भी थे बीत गये और अब नये दिन आये। अवस्थावृद्धिसे सभी लोग गौरवका अनुभव करते हैं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है वैसे-वैसे लोगोंके ज्ञान और अनुभवमें भी वृद्धि होती है। इस दृष्टिसे अपनी बड़ाईका लोगोंको अभिमान भी होता है। ये दिन चाहे जैसे भी बीतें कुछ न कुछ मनुष्यको दे कर ही जाते हैं और प्रत्येक आनेवाला दिन, मास अथवा वर्ष उसके हृदयमें एक प्रकारकी गुदगुदी पैदा करनेवाला होता है। आशावान मानव प्राणी अपनेको नव वर्षके आगमनमें सौभाग्यशाली समझता है, प्रसन्नताका अनुभव करता है और आशा तथा स्पृहा करता है कि ऐसे ही नव वर्षका स्वर्णिम प्रभात उसके जीवनमें अनेक बार आये। ऐसे अवसरोंपर जयन्तियां मनाकर लोग औरोंसे शुभ सन्देश चाहते हैं। कौन अधिक आयुकी आकांक्षा नहीं रखता? किसको अधिक दिन जीनेकी इच्छा नहीं होती? कौन अपने द्वारा प्रशस्त कार्योंको अधिकसे अधिक दिन रहकर अग्रसर करनेकी अभिलाषा नहीं रखता? और इतना ही क्यों? अमर होनेकी अभिलाषा भी तो सभीकी रहती है।

अस्तु, तो सात्विक जीवनके भी द्वितीय वर्षमें पदार्पण करनेपर इसकी जयन्ती मनानेका विचार हुआ किन्तु एक तो यह विचार ही बहुत देरमें उठा और अन्य अनेक युद्ध-जनित कठिनाइयां हमारे सामने आ उपस्थित हुईं, किन्तु फिर भी जयन्ती मनानेका निश्चय किया गया और इसीके फलस्वरूप यह तै हुआ कि विजया दशमीके अवसरपर, जब सात्विक जीवनका द्वितीय वर्ष प्रारम्भ होता है, इसका एक सर्वाङ्ग सुन्दर विशेषांक निकाला जाये। समयकी कमी और कार्यकी अधिकता जो थी सो तो थी ही कागज आदिके मिलनेमें भी कठिनाई का सामना करना पड़ा। किसी प्रकार प्रयत्न करके कुछ कागज प्राप्त किया गया। किन्तु जितना बड़ा विशेषांक निकालनेकी हमारी अभिलाषा थी वह पूरी न हुई। यही कारण है कि बहुतसे विशिष्ट विद्वानोंके भी लेख जो विशेषांकमें प्रकाशनार्थ आ गये थे हम नहीं दे सके। इसके लिये हम उन समस्त सज्जनोंसे क्षमाप्रार्थी हैं जिन्होंने हमारी प्रार्थनापर लेख भेजनेकी कृपा की किन्तु विवशतावश हम दे न सके। उनके लेखोंको यथा अवसर हम आगामी अङ्कोंमें स्थान देनेकी कोशिश करेंगे।

सात्विक जीवनका यह विशेषांक मासिक पत्रिकाओंके आकारमें निकल रहा है। इसको देखकर हमारे पाठक इस बातका अनुमान कर सकते हैं कि पत्र अब सदा इसी रूपमें निकला करेगा। प्रारम्भमेंही हमने यह अनुभव किया था कि सात्विक जीवन जैसे पत्रका मासिक संस्करण ही अच्छा है किन्तु प्रारम्भ साप्ताहिकके रूपमें होनेके कारण यह वांछनीय नहीं समझा गया कि बीचसे इसमें परिवर्तन किया जाये। अतः विचार किया गया कि द्वितीय वर्षके प्रारम्भसे इसको मासिकका रूप दे दिया जाये। यहांपर हम यह अपने पाठकोंसे यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि साविक जीवनके साप्ताहिक संस्करण से मासिक संस्करण काफी अच्छा रहेगा और वे किसी प्रकार भी घाटेमें नहीं रहेंगे। जो सामग्री उनको चार हफ्तोंमें अलग-अलग मिलती थी वही अब एकत्र तथा सुव्यवस्थित रूपमें मिला करेगी।

अन्तमें हम अपने पाठकों, शुभाकांक्षियों तथा उन समस्त सज्जनोंसे स्नेह और सहयोगकी आशा और प्रार्थना करते हैं जिन्होंने हमें समय समयपर सहायता देकर अपने मार्ग पर आगे बढ़ानेमें योग दिया है। आशा है भविष्यमें भी उनसे ऐसी ही सहायता प्राप्त होती रहेगी। त्रुटियां मनुष्यसे ही होती हैं अतः इस विशेषांकमें उनका न होना सम्भव नहीं है। इनके लिये अपने उदार पाठकोंसे क्षमा प्रार्थना कर यह अङ्क हम उनकी सेवामें समर्पित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

धड़ाधड़ बिक रही है ! स्थायी ग्राहकोंको पौने मूल्यमें !!

सात्विक जीवन ग्रन्थमाला

वेदान्त, धर्म, सदाचार, स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य, आरोग्यता, व्यायाम,
आसन, योगादि की पुस्तकों का हिन्दी में

अभूतपूर्व संकलन

अल्प मूल्य में ही श्रेष्ठ आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक
विकास विषयक ग्रन्थों की प्राप्ति का

श्रेष्ठ सुअवसर

'दिव्य जीवन संघ' के (जिसकी शाखायें संसारके कोने–कोनेमें स्थापित हैं)

संस्थापक—

हिज होलीनेस श्रीमत्परमहंस स्वामी शिवानन्द सरस्वती
('आनन्द कुटीर' हृषीकेश) की

रचनाओंका हिन्दीमें प्रकाशन

॥) भेजकर स्थायी ग्राहक बनें।

प्रकाशक— जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड,
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्र निवेदन

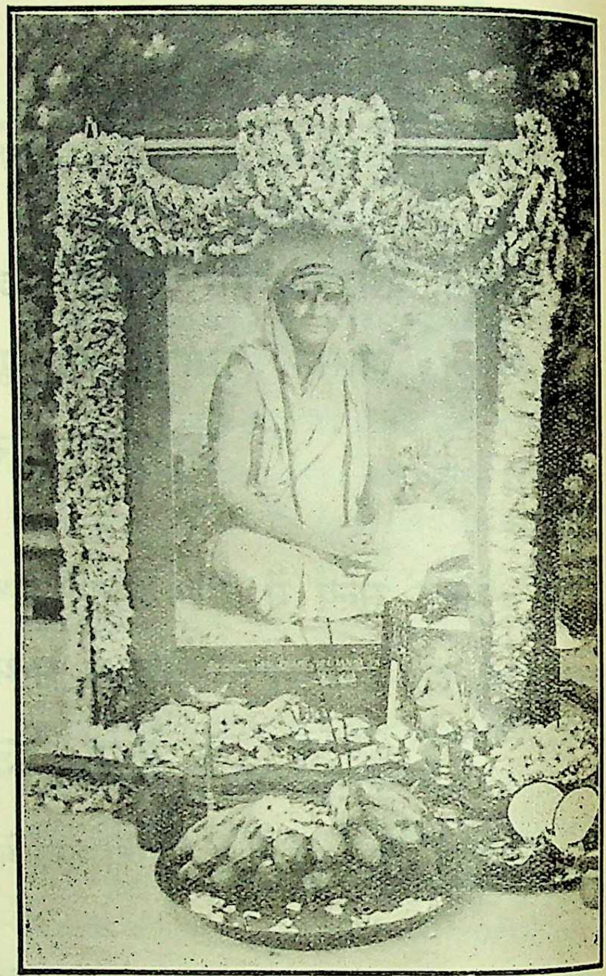

आध्यात्मिक रुचि रखनेवालोंसे श्री स्वामी शिवानन्दजीकी लेखनीका चमत्कार और ओज छिपा नहीं है। स्वामीजी स्वयं आध्यात्मिकता की प्रतिमूर्ति और आदर्श ब्रह्मचारी हैं। इस ग्रन्थमालामें सर्वप्रथम उन्हींके पवित्र पुष्प गुंथे हैं। श्री स्वामीजी महाराजकी रचनाके सम्बन्धमें विशिष्ट पत्र पत्रिकाओंके सम्पादकों तथा विद्वानोंकी सम्मतियां हम नीचे देते हैं।

कुछ अमूल्य सम्मतियां—

'डेली हेराल्ड' लाहौर,

श्री मत्परमहंस स्वामी शिवानन्द जी सरस्वतीका परिचय देना सूर्यको दीपक दिखाना है। श्रीस्वामीजी महाराजने आध्यात्मिक विषयों पर उच्च कोटिकी पुस्तकें लिखी हैं। वह स्वयं एक महान् योगी हैं अतः उनकी पुस्तकें पाठकों पर चिरस्थायी प्रभाव छोड़ जाती हैं।

'वाम्बे क्रानिकल', बम्बई।

श्री स्वामी शिवानन्दजीके लेख धार्मिक एवं दार्शनिक विषयों पर भारतकी विभिन्न प्रमुख पत्रिकाओंमें निकलते रहते हैं जो बहुत गम्भीर और उच्चकोटिके होते हैं।

'सर्चलाइट' पटना।

हिन्दू धर्म एवं हिन्दू दर्शन पर अच्छे-अच्छे लेख तथा पुस्तकें लिखनेके कारण श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वतीको पाठक भली भांति जानते हैं।

'लीडर' प्रयाग।

श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज हिन्दू धर्म ग्रन्थोंके केवल उच्च कोटिके गम्भीर एवं प्रभावपूर्ण साहित्यकार ही नहीं हैं बलिक वे स्वयं एक महान् सिद्ध योगी भी हैं। वे अन्तर्द्रष्टा और सच्चे पारखी हैं।

'कल्याण', गोरखपुर।

आध्यात्मिक साहित्यके प्रति जिसकी थोड़ी भी रुचि होगी उससे श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती का नाम न छिपा होगा। उन्होंने योग एवं वेदान्त विषयक विभिन्न गूढ़ समस्याओंको जिस प्रकार सरल तथा बोध गम्य भाषामें स्पष्ट किया है उसने आधुनिक लेखकोंमें उनके एक गौरवमय पदपर लाकर आसीन कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दू' मद्रास ।

यौगिक विषयों पर श्री स्वामी शिवानन्दजीके लेख अद्वितीय हुआ करते हैं। आध्यात्मिक विषयोंके अनुरूप ही श्री स्वामीजी संयत भाषामें अपने विचार प्रकट करते हैं। थोड़े शब्दोंमें अधिक बात कह देनेमें वे पूर्ण दक्ष हैं।

'फारवर्ड' कलकत्ता ।

श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती यौगिक विषय पर लिखनेके कारण काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। धर्म एवं दर्शन पर लिखे गये उनके ग्रंथ सर्व मान्य और प्रतिष्ठित हो चुके हैं। कर्म भक्ति-राज-ज्ञान योग पर श्रीस्वामीजीने विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है तथा उसको स्पष्ट एवं बोधगम्य बनानेकी उन्होंने काफी चेष्टाकी है। और इसमें उन्हें अच्छी सफलता मिली भी है। अपनी पुस्तकोंमें स्वामीजीने सर्वत्र ही साधकोंकी कठिनाइयोंका ध्यान रखा है और उनको सावधान करते हुए फिसलनेसे बचने का उपाय बतलाया है। यह सब उनकी उग्र साधना और अनुभवका द्योतक है। अतः स्वामीजी इन विषयोंपर लिखनेमें पूर्ण समर्थ और योग्य हैं।

मि० हैरीडिक मैन लैटविया, यूरोप

श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी कृतियोंको पढ़ लेनेके बाद सब लोग इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि ब्रह्म-साक्षात्कारकी विधि बतलानेके लिये वह सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं। उनको अपने विषयपर पूर्ण अधिकार है, यूरोपियन विद्वानोंके अनुकरण उन्होंने नहीं किया है। उनको निश्चय ब्रह्मज्ञान प्राप्त है। उनकी पुस्तकोंको पढ़नेसे मुझे बड़ी शांति मिली। उन्नीस बीस वर्षों तक जो प्रश्न मुझे हैरान किये हुए थे उनका उत्तर श्री स्वामीजीकी कृतियोंसे ही मिला। धन्य हैं वे योगिराज श्री हिज होलीनेस श्रीस्वामी शिवानन्दजी महाराज।

मि० हीन्जावाके ब्लाट, कोलोन जर्मनी ।

हिज होलीनेस श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी पुस्तकोंको पढ़नेसे जो अनुपम सुख और शांतिकी प्राप्ति हुई उसका वर्णन शब्दोंमें नहीं किया जा सकता। भारतके प्रति मैं आदरसे सिर झुकाता हूं जिसने विश्वमें इतना बड़ा योगी उत्पन्न किया है।

सी० वी० विजय राघवाचार्य एम० ए०, बम्बई ।

योगदर्शनका मैंने बहुत दिनों तक अध्ययन किया है। अतः मैं श्रीस्वामी शिवानन्दजी महाराजकी पुस्तकों का मूल्य समझ सका हूं। और इसीलिये इन अपूर्व पुस्तकोंका मैं स्वागत करता हूं। इन पुस्तकोंके लेखकने सर्वत्र सरल और जोरदार भाषा का प्रयोग किया है। स्वामीजीको यौगिक क्रियाओंमें दक्षता प्राप्त हैं अतः उनके विषय प्रतिपादनका ढङ्ग बहुत अच्छा है। यह काम स्वामीजी ही जैसे ऋषियोंके योग्य था। उन्होंने यह कार्य करके निस्संदेह अपना हाथ जनताके ऊपर फेर दिया है। मेरा विश्वास है इस ऋषिके आशीर्वादसे हम सब उन्नतिकी ओर दिनोंदिन अग्रसर होंगे और ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। स्वामीजीकी पुस्तकोंके अध्ययन से समस्त मानव जातिका अकथनीय कल्याण होगा। अतः मैं उनका फिर एक बार स्वागत करता हूं।

प्रकाशक—जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड

८३ पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीस्वामीजी महाराजकी लेखनी द्वारा प्रस्तुत

सात्विक जीवन ग्रन्थमालाका

प्रथम पुष्प—

ब्रह्मचर्य नाटक

रंगमंचपर सफलता पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं, हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रचारार्थ केवल ॥)।

द्वितीय और तृतीय पुष्प—

आध्यात्मिक शिक्षावली (दो खण्ड)

आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू धर्म और अध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया गया है। आज ही मंगाकर पढ़िये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम।

मूल्य प्रथम खण्ड ।॥), द्वितीय खण्ड ।॥)।

चतुर्थ पुष्प—

सचित्र हठयोग (सजिल्द)

(आसनोंके ३८ चित्रों सहित) मूल्य १) विशेष विवरणके लिये कवरका चौथा पृष्ठ देखिये।

पंचम पुष्प—

"LIFE & SAYINGS OF SIVA"

In this book Life & Teachings of Sri Swami Sivanandji have been presented in a nice and attractive manner The study of the Life and Teachings of Sri Swamiji at once presents a unique feature. Those who are not able to procure all the works of Sri Swamiji will do well to have this single volume wherein they will find all the teachings of Sri Swamiji put briefly together with a short sketch of his life. The language used in the book is simple and charming. Handsomely bound and excellently got-up.

Price Rs. 1/8/-

नोट—सात्विक जीवनके सभी ग्राहकोंको ३१ दिसम्बरतक उपर्युक्त सभी पुस्तकें पौने मूल्यमें मिलेगी।

प्रकाशक—जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्र ही प्रकाशित होंगी ! अभी आर्डर भेजें !!

भारत की सुप्रसिद्ध सर्वोपयोगी अद्वितीय डायरियां

(१) राष्ट्रीय डायरी (रजिस्टर्ड) १९४२ मूल्य ।=)

१९३९ की डायरी ५००० }
१९४० की डायरी २०,००० } प्रकाशित हुई।

तथा १९४१ की डायरी जब्त हो गयी

राष्ट्रीय डायरी की प्रशंसा भारत के सभी प्रतिष्ठित पत्रोंने की है।

१९४२ की डायरी में ४० के करीब नेताओंके चित्र रहेंगे। तथा
पहले के सभी वर्षों की डायरियोंसे अधिक
आकर्षक व उपयोगी होगी।

(२) सदाचार डायरी १९४२ मूल्य ।-)

(३) जेनरल डायरी [रजिस्टर्ड] १९४२ मूल्य ।-)

कागज के अभावसे डायरी बहुत कम संख्यामें छप रही है।
अतः अपना आर्डर शीघ्र भेजें।

**थोक खरीदारों तथा पुस्तक विक्रेताओंको काफी
कमीशन व विज्ञापनकी सुविधायें दी जायेंगी।**

डायरियों के प्रशंसा पत्र तथा अन्य जानकारी अन्दर देखें

प्रकाशक—

जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

८३ पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

फोन बड़ा बाजार २१०४ तारका पता '*Bhai kashi*'

सभी रेलवे बुक स्टालों पर बिकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

देहलीका राष्ट्रीय पत्र 'वीर अर्जुन' अपने १६-१-३६ के अङ्कमें लिखता है—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय डायरी १६३६—इसमें कांग्रेसका परिचय, उसका इतिहास, किस प्रकार कांग्रेसका जन्म हुआ, उस समय उसकी क्या अवस्था थी और अब क्या है। छुआछूत, हिन्दू-मुस्लिम समस्या, मातृभाषाका प्रश्न, हिंसा-अहिंसा, घरेलू व्यवसाय, हमारी पत्रकारकला, शिक्षा, मद्य-निषेध आदि प्रमुख विषयोंको सुलझानेमें कांग्रेस ने क्या-क्या किया और आजादी की लड़ाईमें भारत किस प्रकार उन्नतिकी और अग्रसर हुआ इसपर लेखकने बहुत शुद्ध और संक्षेपमें लिखा है। कुछ प्रमुख घटनायें, सभापतियोंकी लिस्ट और उनके सभापति होनेके वर्ष, कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंका व्यौरा और मन्त्रियोंके नाम आदि याददाश्तके लिये उपयोगी बातोंको भी इस डायरीमें दिया गया है।

सब कुछ देखते हुये डायरी काफी उपयोगी है, और खासकर राष्ट्रीय विचारके लोगोंके लिये तो बहुत उपयोगी है।

बनारसका राष्ट्रीय पत्र 'आज' अपने १-१२-३६ के अंकमें लिखता है—

राष्ट्रीय डायरी १६४०—जेनरल प्रिटिङ्ग वर्क्स कलकत्ता गत २ वर्षोंसे राष्ट्रीय डायरी नामकी डायरी प्रकाशित कर रहा है। सन् १६४० की डायरी हमारे सामने है। इस डायरीमें राष्ट्रीय जागरणसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक ज्ञातव्य बातोंका समावेश है। डायरीकी छपाई, कागज, बंधाई आदि बड़ी अच्छी है। यह डायरी राष्ट्रीयताके उपासकोंके रखने लायक है।

कलकत्तेका प्रसिद्ध साप्ताहिक 'विश्वमित्र' अपने २५-१२-३६ के अंकमें लिखता है—

स्थानीय जेनरल प्रिंटिङ्ग वर्क्सकी ओरसे हमें राष्ट्रीय डायरी, १६४०, प्राप्त हुई है। इस डायरीमें डायरी सम्बन्धी बातों तथा भारतके राष्ट्रीय जागरणका इतिहास तथा देशकी आर्थिक स्थिति, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, प्रान्तोंमें कांग्रेस द्वारा की गयी सेवायें, बिहार और संयुक्त प्रान्तके किसानोंके हितके लिये कांग्रेसी सरकार द्वार बनाये गये कानून आदिका बोधगम्य भाषामें विश्लेषण दिया गया है। राष्ट्रीयताके भावोंसे ओत-प्रोत इस डायरीको प्रकाशित कर प्रकाशक महोदयने प्रशंसनीय कार्य किया है।

टनकपुर, ३ जनवरी सन् १६४० ई०

प्रिय मैनेजर, सादर वन्दे !

श्रीमान्‌जी, यह कहते हुये बड़ा हर्ष होता है कि आज मैं आपसे राष्ट्रीय डायरीके विषयमें फिरसे कह रहा हूं। मैं आपकी सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय डायरीका सन् १६३६ से ग्राहक हूं। इस वर्ष भी मैं उक्त डायरीका ग्राहक होना चाहता हूं। मैं यह छः आनेका टिकट भेज रहा हूं सो कृपा करके प्रचारके ख्यालसे मेरे लिये इस सालकी (सन् १६४०) राष्ट्रीय डायरी की एक प्रति भेज दें। गत वर्ष भी मैंने आपकी डायरीको लोगोंसे परिचित कराया था और इस साल भी कोई कसर उठा न रखूंगा। इतना आप नोट कर लें कि मुझे इस साल उक्त डायरी न मिलनेपर बड़ा भारी आघात पहुंचेगा क्योंकि मैं एक मात्र आपकी राष्ट्रीय डायरीका भक्त हूं। जिस प्रकार एक भक्त अपने भगवानके विरहपर दुखी होता है उसी प्रकार मुझे भी इस सालकी राष्ट्रीय डायरी न मिलनेपर दुःख होगा। यदि किसी कारणवश आप न भेज सकें तो मुझे बाध्य होकर कोई अन्य डायरी खरीदनी पड़ेगी। मुझे आशा है कि आप ऐसा कभी न होने देंगे। मैं फिरसे आपसे अनुरोध करता हूं कि निम्न पतेपर सन् १६४० ई० की राष्ट्रीय डायरीकी एक प्रति यथाशीघ्र मेरे लिये भेज देनेकी कृपा करेंगे।

भवदीय—जयदत्त पन्त मार्फत पं० गंगादत्त पन्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

परचूनिया, पो० आ० टनकपुर, जि० नैनीताल (यू० पी०)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटनेका प्रसिद्ध पत्र 'योगी' अपने [illegible] अङ्कमें लिखता है —

राष्ट्रीय डायरी १९४०—जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स कलकत्ताने राष्ट्रीय डायरी प्रकाशित की है। सर्व प्रथम डायरीमें कांग्रेसका इतिहास बड़ी शुद्ध और सजीव भाषामें दिया गया है। इसके पश्चात रेलवे, डाकघर तथा अन्य ज्ञातव्य विषयोंकी पूरी जानकारीकी बातें दी गयी हैं। डायरीके प्रत्येक पृष्ठके ऊपर उपदेशका एक-एक सुन्दर वाक्य दिया हुआ है। अबतक बाजारमें हमें जो डायरियां देखनेको मिली हैं उनमें राष्ट्रीय डायरी सबसे सुन्दर है। पृष्ठ संख्या ५६०........ हम प्रेसके अधिकारियोंको ऐसी बढ़िया डायरी निकालनेके लिये धन्यवाद देते हैं।

कलकत्तेका सुविख्यात पत्र 'लोकमान्य' २६—२—४० के अङ्कमें लिखता है—

राष्ट्रीय डायरी १९४०—डायरियां तो इस वर्ष अनेक निकली हैं, परन्तु जैसी डायरी कलकत्तेके जेनरल प्रिंटिंग वर्क्सने निकाली है, वैसी डायरी इस वर्ष कोई नहीं निकाल सका। यह डायरी क्या है? कांग्रेसका आदिसे अन्त तक संक्षेपमें इतिहास हैं। भारतमें जो कुछ राष्ट्रीय जागरण हुआ है उसका श्रेय कांग्रेसको है और कांग्रेसका इतिहास भारतके पुनर्जीवनका इतिहास है। यह पुनर्जीवनका इतिहास प्रत्येक भारतीय पढ़े, यह सर्वथा वाञ्छनीय है।

जिन्हें बड़े बड़े ग्रन्थ पढ़नेका अवसर नहीं मिलता और जो प्रत्येक समय बड़े-बड़े ग्रन्थ साथमें भी नहीं रख सकते उनके लिए यह डायरी बड़े कामकी है। इससे डायरी वास्तवमें राष्ट्रीय इतिहास बन गयी है। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं, स्वयंसेवकों, अध्यापकों, छात्रों और पत्रकारोंको यह डायरी अपने पास अवश्य रखनी चाहिये और सर्वसाधारणको भी। इतिहासका इतिहास और डायरीकी डायरी। इस डायरीको प्रकाशित कर जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स ने बड़ा उपयोगी कार्य किया है जिसकी हम प्रशंसा करते हैं।

'सैनिक' आगरा युद्धाङ्कमें लिखता है—

राष्ट्रीय डायरी १९४०—कलकत्तेके जेनरल प्रिंटिंग वर्क्सने हमारे पास राष्ट्रीय डायरी की प्रति भेजी है। हमने उसे ध्यान पूर्वक देखा है और उसमें दी गयी ज्ञातव्य बातोंको पढ़ा है। हम मुक्त कण्ठ से कह सकते हैं कि 'राष्ट्रीय जागरणका इतिहास' शीर्षकसे जो पाठ्य सामग्री राष्ट्रीय डायरी में दी गयी है वह प्रमाणिक ज्ञानवर्द्धक और राष्ट्रीय भावनाओंको प्रेरित करनेवाली है। प्रत्येक पृष्ठ पर आदर्श वाक्य देकर भी डायरीकी उपयोगिता बढ़ायी गयी है। डायरीकी छपाई, बंधाई, कागज, आकार प्रकार भी बहुत उत्तम है। हम अनुरोध करते हैं कि जन-साधारण इस डायरीका अधिकाधिक व्यवहार करें।

प्रकाशक—

जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट,

कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) सदाचार डायरी १९४२ मूल्य ।=)

विद्यार्थियों तथा नवयुवकोंको अद्वितीय उपहार

आज विश्वमें जो इतना अज्ञान फैला हुआ है, मानव जाति उन्नति तथा विकासके पथसे फिसल कर पतनकी ओर जो द्रुत गतिसे बढ़ती जा रही है इसका प्रधान कारण प्राचीन ऋषियों द्वारा बतलाये हुये मार्गका परित्याग ही है। ऋषियोंके पद चिन्होंका अनुकरण करनेके बजाय हम पाश्चात्य सभ्यताकी चकाचौंधमें आगये, हमारे भीतर नयी रोशनी की चकाचौंधसे अन्धकार छा गया और परिणामस्वरूप हम कुसंस्कारोंमें पड़ गये। सन्मार्ग पर चलनेके स्थान पर हम कुमार्ग पर चलने लगे, इसलिए जहां हम विश्वका सर्वतोभावेन नेतृत्व करते थे वहां अनुकरण करने लगे और अनुकरण भी ऐसा कि जिसने हमें गड्ढेमें गिरा दिया। जिनके हम सिर-मौर थे उनके पादत्राण भी नहीं बनने योग्य हैं। हमारी दुर्दशाका और क्या रूप होगा। अब भी तो हमें मोह-निद्रासे जागना चाहिये। देशको इस महानिद्रासे बचानेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम अपने युवकोंको उन्हीं नियमोंके अनुसार चलनेके लिये प्रेरित करें जिनका निर्देश हमारे महर्षियोंने किया है।

इन नियमोंकी जानकारी आप सदाचार डायरी १९४२ से कीजिये

छपाई, बंधाई, साइज आदि राष्ट्रीय डायरी जैसी। कागजके मूल्यमें इतनी अधिक वृद्धि होनेपर भी इसका मूल्य गत वर्षकी भांति केवल पांच आने रखे गये हैं। अनेकमेंसे कुछ प्रशंसा-पत्र आगे दिये जाते हैं।

---

(३) जेनरल डायरी (रजिस्टर्ड) १९४२ मूल्य ।=)

हमारी डायरियोंमें जेनरल डायरीकी अपनी निज़ी विशेषता है। इसमें दैनिक व्यवहारकी तथा डाक, तार, बंधाईके तार, चिट्ठी-पोस्टकार्ड, रेल आदि इनकम टैक्स, सुपर टैक्स, स्वास्थ्य, सदाचार सम्बन्धी अनेक बातें दी गयी हैं और साथ ही साथ साधारण ज्ञानकी बहुत सी ऐसी बातें दी गयी हैं जिनकी आवश्यकता हमारे प्रति दिनके कामोंमें पड़ती है। कागज अच्छा और गेट-अप आकर्षक, फिर भी मूल्य केवल पांच आना।

सदाचार तथा जेनरल डायरी सम्बन्धी कुछ प्रशंसा पत्र

कलकत्तेका प्रमुख दैनिक 'लोकमान्य' १३—१२-१९४० के अंकमें लिखता है—

सदाचार डायरीके ६३ पृष्ठोंमें ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, आरोग्यता सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य बातें दी गयी हैं। इसके अतिरिक्त डाक, तार आदि कुछ आवश्यक ज्ञातव्य बातोंका भी संकलन किया गया है। जेनरल डायरीके ४८ पृष्ठोंमें डाक, तार, रेल, इनकम टैक्स, सम्बन्धी बातोंके अतिरिक्त संसार और भारतकी अन्य अनेक ज्ञातव्य बात दी गयी हैं जिनका जानना हमारे लिये आवश्यक है। ३२ पृष्ठोंमें 'आदर्श जीवन' नामक निबन्धमें देशवासियोंके कर्त्तव्य आदिका सुन्दर विश्लेपण किया गया है। दोनों डायरियोंके प्रत्येक पृष्ठपर आदर्श वाक्य दिये गये हैं। डायरियां बढ़िया चिकने कागज पर छापी गयी हैं। ४५० पृष्ठोंकी इतनी अच्छी डायरियोंके मूल्य केवल पांच पांच आने हैं जो उचित ही [illegible] है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागपुरका [illegible] १९४१ के अंकमें लिखता है —

सदाचार डायरी में पोस्ट, तार और रेलवे सम्बन्धी साधारण बातोंके अलावा स्वास्थ्य विज्ञान पर भी काफी प्रकाश डाला गया है। इसमें मनुष्यकी दिनचर्या, अखाद्य, खाद्यकी विषम मीमांसा, ब्रह्मचर्यका महत्व और उसके नियम तथा अन्य आवश्यक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। जेनरल डायरीमें पोस्ट, तार, डाक, इनकम टैक्स सम्बन्धी नियमों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। साथ ही भारतके सम्बन्धमें अन्य ज्ञातव्य बातों के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयोंपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

काशीके राष्ट्रीय दैनिक 'आज' ४ जनवरी १९४१ के अंकमें लिखता है —

सदाचार और जेनरल डायरी—इन डायरियोंमें हिन्दी, अंगरेजी और बङ्गला तिथियोंके सिवा हर तारीखके पास यह भी लिखा है कि वह सालका कौन सा दिन है। प्रत्येक पृष्ठमें एक अच्छा सिद्धान्त वाक्य भी दिया हुआ है। भूमिकामें स्वास्थ्य सम्बन्धी सबके जानने योग्य बातें भी दी गयी हैं। सदाचार डायरीमें यह भूमिका अधिक विस्तृत है। जेनरल डायरीमें डाक, तार, रेलवे आदि सम्बन्धी जानने योग्य बातें दी गयी हैं।

साप्ताहिक अर्जुन २८ जनवरी १९४१ के अंकमें लिखता है—

सदाचार डायरी में आत्मोद्धार, ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, आरोग्यता आदि सम्बन्धी लेख तथा अन्य ज्ञातव्य बातें दी हुई हैं। जेनरल डायरीमें अनेक उपयोगी लेख तथा ज्ञातव्य सामग्री दी गयी हैं। दोनों डायरियोंके प्रत्येक पृष्ठ पर कण्ठस्थ करने योग्य आदर्श वाक्य दिये हैं। प्रत्येक डायरी प्रायः ४५० पृष्ठोंकी है।

व्यापारके नियम

(१) आपसे प्रार्थना है कि आप अपना आर्डर अभीसे भेज दीजिये अन्यथा विलम्ब होनेसे दूसरे संस्करणकी प्रतीक्षा करनी होगी। दूसरी बात यह है कि कागजके अभावसे हो सकता है दूसरा संस्करण छप भी न सके।

(२) आर्डर भेजते समय कृपया अपना पता पूरा-पूरा तथा साफ लिखें।

(३) माल सवारी या मालगाड़ीसे भेजा जाये यह अवश्य लिखें।

(४) १०० डायरीका वजन करीब १८ सेर होता है। इसलिये आर्डर देते समय वजनका ख्याल अवश्य रखें।

(५) स्टेशनका नाम साफ-साफ अंगरेजीमें लिखकर भेजें जिससे माल लगानेमें सुविधा रहे।

(६) आर्डरके साथ २) प्रति १०० डायरी पेशगी आना आवश्यक है।

(७) दूकानदारों को २५ प्रतिशत कमीशन दियाजाता है। २५० डायरी लेनेसे पैकिंगखर्च नहीं लगेगा।

(८) २५ अक्तूबर १९४१ तक आर्डर आनेपर प्रत्येक १०० (एक प्रकारकी) डायरी पर ५०० हैंडबिल तथा प्लेकार्ड दुकानदारके नामके दिये जायेंगे जिससे बेचनेमें बड़ी सुविधा होगी।

(९) प्रत्येक डायरीके नमूनेके लिये ॥) का टिकट या तीनों एक साथ मंगानेके लिये १।) भेजना आवश्यक है। डायरियोंका आर्डर देते समय हमारे अन्य प्रकाशनोंका भी आर्डर भेजें जिसकी सूचीपत्र अन्यत्र दिया गया है।

प्रकाशक—जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०

९३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे प्रकाशन

(१) जीवन सौरभ—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया है कि साधारण परिस्थितमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें और अपनी सन्तानके भी हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)

(२) देशके नौनिहालोंसे—नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्रओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं। अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य -)

(३) सदाचारका महत्व—सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक-दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हैं तथा अपनी और देशकी जो हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसीलिये उसका पतन हो गया है। आवश्यकता है इस समय देशके युवकोंको सन्मार्ग पर ले जानेकी। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

(४) स्वास्थ्य-पत्र—स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ्य रहना ही मृत्यु है एक धनहीन स्वस्थकी जीवनकी दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए भी उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्गतुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है।

२०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाती है। मूल्य केवल =)

(५) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास—स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन यापन करता है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। छोटे बच्चोंसे लेकर बड़े बूढ़ों तक सबके कामकी चीज। मूल्य केवल -)

(६) कांग्रेस चार्ट—कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अब तकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति स्थान, समयकी सूचना और उस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमीटेशन आर्ट पेपरपर साइज २०"×३०", दो रंगोंकी मनोहर, छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

प्रकाशक—जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात्विक जीवन ग्रन्थमाला

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

लेखक—श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती

मनोनिग्रहके साधन

मन बड़ा चञ्चल है। इसको वशमें किये विना किसी प्रकारकी भी उन्नति सम्भव नहीं है। स्वामीजीने इसमें मनको नियन्त्रणमें लानेकी सरल विधियां बतलायी हैं।

ब्रह्मचर्यकी साधना

ब्रह्मचर्य ही सब प्रकारकी उन्नतियों का मूल है। ब्रह्मचर्यके अभ्यास विना कुछ भी नहीं हो सकता। इस पुस्तकमें ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी सरल विधि बतलायी गयी है।

कैलाशके पथपर

कैलाश और मानसरोवरके यात्रियों के लिये तथा सर्वसाधारणके लिये भी एक अत्युत्तम पुस्तक।

प्रकाशक—

जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र हठयोग (सजिल्द)

(आसनोंके ३८ चित्रों सहित)

आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है वह अन्य कई पुस्तकें पढ़ कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान योगी है। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक हिन्दीमें दूसरी नहीं हैं। मूल्य केवल १)।

देशके बड़े बड़े विद्वानों तथा अनेक पत्र पत्रिकाओंने पुस्तककी भूरि भूरि प्रशंसा की है।

अनेकोंमेंसे कुछ सम्मतियां

आज—काशी— प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्री स्वामीजी एक महान योगी हैं। आपकी पुस्तकोंका सात्विक जीवन ग्रन्थमाला नाम देकर कलकत्तेके जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्सने प्रकाशन किया है। उसीका यह चतुर्थ पुष्प है। अभ्यासीकी कठिनाईका पूरा ध्यान रखकर श्री स्वामीजीने हठयोग जैसे विषयको इस उत्तम और सरल ढङ्गसे समझाया है कि देखकर आश्चर्य होता है। गुरुकी सहायताके बिना भी इस पुस्तककी सहायतासे अभ्यास करना सुगम है। हमारी रायमें पुस्तक सबके पास होनी चाहिये। उपयोगिताको देखते हुए सजिल्द पुस्तकका दाम कोई अधिक नहीं है।

नव भारत—नागपुर— प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्री स्वामीजी विश्वविश्रुत हैं। हठयोग जैसे कठिन विषयका वर्णन इस उत्तम ढंगसे किया गया है कि साधक बिना गुरुकी सहायताके इसमें वर्णित आसनादिका अभ्यास कर सकता है। भाषा बोधगम्य और स्पष्ट है। पुस्तक काफी अच्छी बन पड़ी है। आबाल वृद्ध सभी इससे एकसाथ लाभ उठा सकते हैं। प्रकाशकको हम धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिसने केवल १ रुपयेमें ऐसी सजिल्द और सचित्र पुस्तक प्रकाशितकर जनताका कल्याण किया है। हम ऐसी पुस्तकका घर-घर प्रचार चाहते हैं।

लोकमान्य—कलकत्ता— यह पुस्तक यौगिक क्रियाओंके साधकोंके लिये नहीं वरन् सर्वसाधारणके लाभार्थ लिखी गयी है। यह साधकोंके लिये सहायक और सर्वसाधारणके लिये स्वास्थ्यदायक सिद्ध होगी। इसमें आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध आदि प्रकरण हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

वैश्य समाचार—दिल्ली— योग पर यह पुस्तक बड़ी उत्तम है। इसमें आसन, प्राणायामकी विधि अच्छी तरह स्पष्ट रूपसे समझायी गयी है। पुस्तक सजिल्द है और कागज छपाई सब अच्छी है।

जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

Printed & published by Ruliaram Gupta at the General Printing Works, Ltd. 83, Old China Bazar Street Ca

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्वं सुखे सञ्जयति

सात्विक जीवन

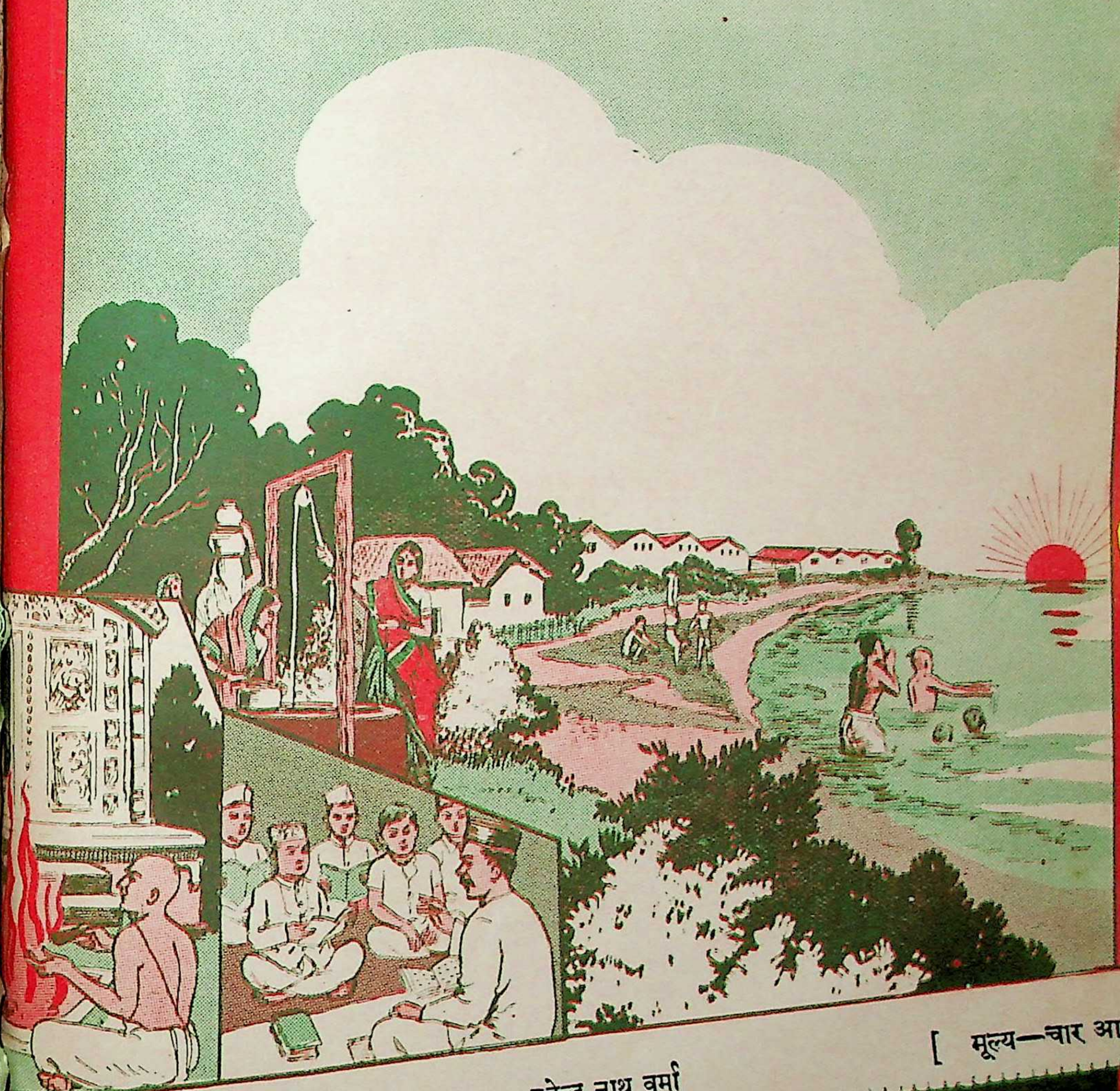

[मूल्य—चार आना

सम्पादक—महेन्द्र नाथ वर्मा

वर्ष २—अङ्क ३]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

काँगड़ी गुरुकुल में ८ दिसम्बर सन् १९४१ को प्राप्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१—तप-गान (कविता)	श्री 'सुदेव'	१
२—सम्पादकीय	....	२
३—मिट्टीका उपचार	महात्मा गान्धी	५
४—कुछ उपयोगी प्राणायाम	श्री स्वामी सर्वानन्द सरस्वती	७
५—नाम जप क्यों और कैसे करें ?	श्री स्वामी शिवानन्द	९
६—ब्रह्मचर्य	पाण्डेय पराशर भट्टाचार्य	१२
७—सात्त्विक जीवनकी सार्थकता (कविता)	कविवर 'श्रीश'	१४
८—शक्तिवाद	श्री स्वामी स्वरूपानन्द	१५
९—प्रायश्चित और शुद्धि	पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी	१८
१०—उपवास चिकित्सा	श्री सैन्फोर्ड बेनेट	२३
११—क्रोधका शमन कैसे करें ?	श्री जी० एस० एन० मूर्ति	२५
१२—सुख और शान्तिका साधन	श्री स्वामी कैवल्यानन्द	२७
१३—स्वस्थ रहनेकी विधि	श्री रामचन्द्र जोशी	२९
१४—मनुष्यका स्वाभाविक आहार	श्री श्यामकृष्ण कपूर	३३
१६—मनुष्य या पशु ?	पं० ठाकुर दत्त शर्मा	३५
१७—ब्रह्मचर्यके सहायक कुछ नियम	श्री रमेश शर्मा	४०
१८—आदर्श दिनचर्या	....	४३

उद्देश्य और नियम

१—'सात्विक जीवन' प्रत्येक सौर मासकी १५ तारीख तक प्रकाशित होता है ।

२—'सात्विक जीवन' में ब्रह्मचर्य, सदाचार, स्वास्थ्य, आरोग्यता, दर्शनशास्त्र, आध्यात्मिक आख्यायिकाओं, भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं तत्सम्बन्धी विषयोंपर गवेषणापूर्ण लेख रहते हैं।

३—समस्त मानव-समाजको अधिकाधिक उन्नत और विकसित करना ही इसका ध्येय है ।

४—यह सदाचार एवं सात्विक वृत्ति द्वारा मनुष्य-जीवनको सफल बनानेका प्रचार करेगा ।

५—प्रकाशित लेख प्रमाणित एवं अनुभूत होते हैं । केवल विचारपूर्ण लेख ही प्रकाशित किये जाते हैं ।

६—विद्वानों, विशेषज्ञों, मनोविज्ञानवेत्ताओं एवं अनुभवी डाक्टरोंके विचारपूर्ण लेखोंकी व्यवस्था है, जिससे मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक शक्तिकी वृद्धि करे ।

७—किसी भी अवस्थामें गन्दे, अश्लील, साम्प्रदायिक, किसी धर्म, व्यक्ति अथवा जातिपर आक्षेप करनेवाले लेख नहीं प्रकाशित किये जायगे ।

८—लेखको काटने-छांटने तथा छापने न छापनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है ।

९—अप्रकाशित हस्तलिपियां प्रेषककी ओरसे आवश्यक टिकट मिलनेपर ही वापस की जायंगी ।

१०—लेखादि सम्बन्धी पत्र सम्पादकको और व्यवस्था सम्बन्धी पत्र व्यवस्थापकको लिखना चाहिये । पत्र लिखते समय ग्राहकोंको अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखनी चाहिये अन्यथा उत्तरके लिये कार्यालय जिम्मेदार न होगा ।

११—सात्विक जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है । पुस्तकालयों, विद्यालयों तथा छात्रोंसे २), एक प्रतिका मूल्य।), नमूनेके लिये चार आनेका टिकट आना आवश्यक है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered No. C. 2773.

संरक्षक—
श्री मनसुखराय मोर

सात्विक जीवन

B.C. PONNAPPA.

सर्वें भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः।
सर्वें भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ॥

वर्ष २ } कलकत्ता, सौर-मार्गशीर्ष—१९९८ { अंक ३

तप-गान

क्यों न दुख विष घूंट पी, सुखकी सुधा धारा बहाऊं ?
ग्रीष्मको कर सिक्त जलसे, स्वेद कणसे मैं नहाऊं ?
यंत्रणा, दुख, ताड़ना तो, आत्मसुखके हेतु ही हैं।
प्राणके संघर्ष भी तो, पूर्णताके केतु ही हैं ॥
क्या न कंटक बीच पाटल, झूमता खुश हो पवनमें ?
क्या न सुन्दर चन्द्र हंसता, नीलतम पूरित गगनमें ?
क्यों न फिर इस जग-रुदनमें, हासका संगीत गाऊं ?
क्यों न दुख विष घूंट पी, सुखकी सुधा धारा बहाऊं ?
विषम पतझड़ से सुखद, निर्माण मधु-ऋतुका हुआ है।
बीजके संहार पर, श्रृङ्गार पतझड़का हुआ है ॥
ग्रीष्मका उत्ताप ही है, हेतु इस वर्षा सुखदका।
है तपस्यामें निहित, वरदान ही तो उस वरदका ॥
क्यों न पावसकी अमापर, चांदनीका हास पाऊं ?
क्यों न दुख विष घूंट पी, सुखकी सुधा धारा बहाऊं ?

'श्री सुदेव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

सर्वोत्तम पद्धति—

कुछ हमारे प्रभुओंकी कृपासे तथा कुछ परिस्थिति-जन्य हमारे अज्ञानसे एक ऐसी हवा हमारे देशमें बह गयी थी कि अपने प्राचीन गौरवका, अपनी मर्यादाका, अपनी अतीत महत्ताका ज्ञान हमारे अन्दर बिलकुल ही न रह गया था। हम अपनेको सर्वथा भूल गये थे। हमें अपने अन्दर तनिक भी गुण अथवा अच्छाई नहीं दिखायी पड़ती थी। अपने तौर-तरीके, रस्म-रिवाज सभी हमें भद्दे और अग्राह्य लगते थे। अपनी संस्कृति और सभ्यताको हमने भुला दिया था और यह न जानते हुए भी कि सभ्यताका क्या अर्थ पश्चिमके लोग करते हैं हम उन्हींके स्वरमें स्वर मिलाकर कहने लगे कि वास्तवमें हम अभी सभ्यतासे कोसों दूर हैं। इस विचारके आते ही हमारे यहांके कुछ लोग सभ्य और संस्कृत कहे जानेके लिये यहां यह जान लेना चाहिये कि हमारे ऐसे भाई जो सभ्यता और संस्कृतिका अर्थभी नहीं समझते थे। अधिकतर इस भावसे ही प्रेरित होकर यह समस्त कार्य करते थे कि उनपर महाप्रभुओंकी कृपा-दृष्टि बनी रहेगी तथा वे उनकी दृष्टिमें अच्छे और उन्नत समझे जायंगे—अपने तौर-तरीके, आचार-विचार, चाल-ढाल और रहन-सहनको कोसने लगे और साथ ही विजातीयोंके रङ्ग-ढङ्ग अख्तियार कर अपनी गुलाम मनोवृत्तिका परिचय देने लगे। पश्चिमसे आनेवाली प्रत्येक वस्तुमें उनको गुण ही मालूम होते थे। फल यह हुआ कि वे लोग, जो इस देशमें अपने धर्मका, अपनी सभ्यताका प्रचार करनेके लिये आये थे, उत्साहित हो गये और वे और भी जोशके साथ हमारी चीजोंकी निन्दा कर अपनी चीजोंको श्रेष्ठ बताने लगे और उनका प्रचार करने लगे। देखते-देखते देशसे हमारे अतीत की परिचायक वे सभी चीजें लुप्त होने लगीं जिनके कारण हम अपना सिर ऊपर उठा सकते थे, जिनसे हमारा गौरव-वर्द्धन होता था तथा जो हमारी विशेषताकी परिचायक थीं। किन्तु समयने पलटा खाया और देशमें ऐसे अनेक महात्मा हुए जिन्होंने इस अवस्था को देखकर दुःख प्रकट किया और भारतीयताको पुनः प्रतिष्ठित करनेके लिये प्रयत्न करना आरम्भ किया जिसके फलस्वरूप हमारे अन्दर अपने अतीत और उसकी चीजोंके प्रति प्रेम उठ खड़ा हुआ है तथा उसका पुनरुत्थान वेगसे हो रहा है।

ऐसी ही अनेक चीजोंमें आसन, प्राणायाम आदिका पुनर्प्रचार है। इधर कुछ वर्षोंमें इनका देशमें यथेष्ट प्रचार हुआ है और इनपर काफी साहित्य भी रचा गया है। हमारे देशके लोगोंके दिमागमें अब यह बात आ गयी है कि शरीरको पुष्ट और स्वस्थ रखनेके लिये देशी ढङ्गके व्यायाम या आसन, प्राणायाम, षट्कर्म आदि जितने उपयोगी हो सकते हैं उतने विदेशी व्यायाम नहीं। यही कारण है कि लोग अब अधिकतर आसनादिकी ओर वेगसे प्रवृत्त हो रहे हैं। यहां हम पश्चिम द्वारा आये हुए खेलों और व्यायाम पद्धतियोंके साथ-साथ एतद्देशीय व्यायाम पद्धतियों तथा खेलोंपर विचार करेंगे और बतायेंगे कि हमारे लिये क्या ग्राह्य है।

हमारे यहां कुश्ती, दण्ड, बैठक, मुग्दर, दौड़ना, तैरना, लाठी चलाना तथा योगासन और प्राणायाम अधिकतर प्रचलित हैं। पश्चिमसे आयी हुई चीजोंमें मुख्य-मुख्य ये हैं—हाकी, फुटबाल, क्रिकेट आदि, जिमनास्टिक, बाक्सिंग, डम्बल आदि। कुछ और तरहकी भी प्रणालियां हैं जिनका उल्लेख यहां अनावश्यक समझकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया गया है। अब हम सब तरहसे इन पर विचार करेंगे और देखेंगे कि हमारे लिये कौन-सी प्रणाली ग्राह्य हो सकती है।

सबसे पहले यह बात जान लेना जरूरी है कि उपयोगिता जाननेका मापदण्ड क्या है। हमारा ऐसा खयाल है कि जिस प्रणालीको हम कम समयमें कम स्थान घेरकर और कम धन व्यय कर अपना सकें और साथ ही अधिक लाभ उठा सकें उसीको सर्वोत्तम एवं सर्वजन-सुलभ और सबके लिये ग्राह्य कह सकते हैं। जिस भी व्यायाम प्रणालीको हम इस दृष्टिकोणसे देखकर उचित समझें उसको ही हमें अपनाना चाहिये। अन्यथा केवल दिखानेके लिये और लोगोंपर अपने बड़प्पनकी छाप डालनेके लिये कमसे कम व्यायाम जैसी चीज नहीं है। व्यायामका काम है शरीरको रोग-मुक्त रखना तथा उसको पुष्ट करना। यदि वह कार्य न हो सका तो केवल दिखाने और लोगोंपर अपने बड़प्पनका भाव प्रकट करनेके लिये और भी कितनी चीजें हैं। अस्तु। सबसे पहले हम देशी ढङ्गके व्यायामोंको लेते हैं।

कुश्ती, तैरना और दौड़ना ऐसे व्यायाम हैं जो व्यय साध्य नहीं हैं। इनमें खर्च तो कुछ पड़ता ही नहीं साथ ही सारे शरीरपर इनका प्रभाव एक साथ पड़ता है और उससे समस्त शरीर पुष्ट होता है। देशी व्यायामोंमें यह इस दृष्टिसे सर्वोत्तम हैं। बहुत लोग घोड़े-पर भी चढ़कर दौड़नेका अभ्यास करते हैं। उससे भी काफी लाभ होता है। यह व्यायाम यूरोपादिमें सर्वत्र प्रचलित हैं। इसके बाद दण्ड, बैठक, मुग्दर, लाठी, कबड्डी आदिका नम्बर आता है। हमारे यहां कुछ ऐसा रिवाज है कि जो लोग व्यायाम करते हैं वे सबेरे या शामको अखाड़ेमें चले जाते हैं और वहीं दण्ड, बैठक, मुग्दर आदिका अभ्यास करते हैं, उसके बाद कुछ कुश्ती लड़ते हैं और तब व्यायामकी यह क्रिया समाप्त होती है। तैरनेका हमारे यहां जो रिवाज है वह केवल इसीलिये कि जो लोग नदी या तालावमें स्नान करने जाते हैं वे केवल आनन्दके लिये थोड़ा तैरते हैं। व्यायामकी दृष्टि-से तैरनेका प्रचलन हमारे यहां कम ही है। कबड्डी आदि-का सम्बन्ध भी व्यायामके साथ नहीं रखा जाता। प्रायः बालकों और युवकोंमें इसका प्रचलन है और खेलने और आनन्द मनानेके लिये लोग कबड्डी या इसी प्रकार के अन्य खेलोंका आश्रय लेते हैं। एक तो व्यायाम समूह हमारे यहांका इस प्रकार है। दूसरेमें हम आसन, प्राणायाम एवं अन्य यौगिक क्रियाओंको रख सकते हैं। कुछ दिन पूर्व इस देशमें आसन, प्राणायाम एवं अन्य यौगिक क्रियाओंका नाम सुनकर लोग घबराते थे। विशेष कर स्त्रियोंके अन्दर तो इसके सम्बन्धमें बड़ी भ्रान्त धारणा थी। उनका ऐसा ख्याल था कि यह समस्त क्रियाएं केवल योगियों और संन्यासियोंके लिये ही हैं। इसीलिये यदि कोई लड़का इनका अभ्यास करता तो अधिकतर उसको इससे छुड़ानेकी चेष्टा की जाती थी। सौभाग्यसे अब यह बात नहीं रही। इनके प्रति लोगोंके विचारोंमें परिवर्तन हो गये और अब यह समझा जाने लगा है कि शरीरको स्वस्थ और पुष्ट रखनेके लिये इनके उपयोग जिस प्रकार सफलतापूर्वक किया जा सकता है उतना और किसी भी देशी और विदेशी व्यायाम पद्धतिका नहीं। इसका कारण यह है कि प्रथम ढङ्गके देशी व्यायाम जिनका वर्णन ऊपर किया गया है लाभप्रद होनेके साथ ही साथ हानि भी पहुंचाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनसे शक्ति अधिक उत्पन्न होती है परन्तु अङ्ग विशेषपर दबाव अधिक पड़नेके कारण उस स्थानपर रक्तका संचार अधिक वेगसे नहीं हो पाता और परिणाम यह होता है कि रक्त शुद्धि उनसे उतनी नहीं होती जितनी होनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि ज्यादा दबाव पड़नेसे और रक्तकी गति वेगवती न होकर स्थान विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रुकनेसे वहांके स्नायुओंपर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है। तीसरी बात यह है कि ये व्यायाम अधिक श्रमसाध्य होनेके कारण जीवन शक्तिको क्षीण करते हैं और इस प्रकार इन व्यायामोंको करनेवालोंकी आयु घटती है। इसके ठीक विपरीत आसन, प्राणायाम तथा षट्कर्मादि करनेवालोंकी आयु बढ़ती है मन तथा शरीर में दिन भर स्फूर्ति बनी रहती है और रक्त अधिक वेगसे बहता है जिससे वह परिष्कृत और शुद्ध होता है। पहलवानी व्यायामोंसे जहां आलस्य बना रहता है वहां आसन व्यायामसे शरीरमें स्फूर्ति रहती है और मनुष्य गिलहरीकी तरह फुदकता रहता है।

यहांतक तो देशी व्यायामोंकी बात हुई। अब हम यहांपर विदेशी व्यायामोंपर विचार करेंगे। ऊपर यह लिखा जा चुका है कि दौड़ना और तैरना विदेशोंमें भी प्रचलित है। इनके अतिरिक्त सैन्डो-सिस्टम, बाक्सिङ्ग, जिमनास्टिक आदि ऐसे व्यायाम हैं जिनसे शरीरमें काफी शक्ति आती है और स्नायुमण्डल और पुट्ठे काफी परिपुष्ट होते हैं। किन्तु यहांपर एक बात ध्यान रखनेकी यह है कि जिस प्रकार हमारे देशके पहलवानी व्यायाम थोड़ी देरके लिये लाभ पहुंचाते हैं और अन्तमें अधिक नुकसान करते हैं उसी प्रकार इन व्यायामोंसे भी नुकसान होता है। शरीरके अङ्ग विशेषपर प्रभाव डालनेके कारण ये व्यायाम न तो सम्यक् रूपसे समस्त शरीरको लाभ पहुंचा सकते हैं और न शरीरमें स्फूर्ति और तेजी ला सकते हैं। दीर्घायुष्यके लिये भी यह अच्छे नहीं। इसके बाद हाकी, फुटबाल आदि हैं। आज कल विद्यालयोंमें इनका अधिक प्रचलन है। और बालकोंके लिये तथा युवकोंके लिये भी ये उपयोगी व्यायाम (Physical Exercises) समझे जाते हैं। वयस्क पुरुष भी इनमें काफी दिलचस्पी लेते हैं। ऐसा समझा जाता है कि इन व्यायामोंमें दौड़नेका काम अधिक पड़ता है और क्योंकि दौड़ना समस्त शरीरके लाभके लिये एक उत्तम चीज है अतएव ये विशेष उपयोगी और लाभकर हैं। इसीलिये इनका प्रचलन भी अधिक है। टेनिस मुख्यतया स्त्रियोंका व्यायाम है और वही उससे अधिक लाभ उठा सकती हैं।

ऊपर विदेशी व्यायाम पद्धतियोंको जो हमारे देशमें प्रचलित हैं दो समूहोंमें बांटा गया है। दूसरेमें हाकी आदि हैं जिनकी तुलना हम कबड्डी आदिसे कर सकते हैं। ये खेल हैं, व्यायाम नहीं हैं। अधिकतर ये बालकोंके लिये ही हैं। इन खेलोंके सम्बन्धमें सबसे पहली बात यह कही जा सकती है कि ये हमारे देशके लिये उपयुक्त नहीं हैं, क्योंकि एक तो कबड्डी वगैरह अधिक गुणकारक हैं और दूसरे हमारे देशकी निर्धनताको देखते हुए यह सम्भव नहीं है कि इनका प्रचलन सब लोगोंमें हो सके। जिस देशके अधिकांश लोग प्रतिदिन भूखे रहते हों उस देशका रुपया इस तरह खेलोंमें नष्ट करना कहां की बुद्धिमानी है।

इस तरह हम देखते हैं कि विदेशी व्यायाम पद्धतिसे अथवा खेलोंसे देशी व्यायाम पद्धति और खेल काफी अच्छे हैं। धनकी बरबादी नहीं, समयकी भी बचत, एक साथ अधिक लोगोंकी प्रतीक्षा भी नहीं करनी पड़ती और इतना सारा स्थान भी नहीं घेरना पड़ता। किन्तु फिर भी देशी व्यायाम (पहलवानी) उतने लाभकर नहीं हैं जितने आसन व्यायाम। अन्य देशी व्यायामोंमें कुछ खर्च और आदमियोंकी जरूरत रहती है मगर आसनोंका अभ्यास अपने आप किया जा सकता है और खर्च तो उसमें किसी प्रकारका है ही नहीं। लाभ भी अधिक होता है। हानिकी भी कोई सम्भावना नहीं रहती। अतः यह हमारा आवश्यक कर्तव्य है कि इनको अपनायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिट्टीका उपचार

महात्मा गान्धी

रोगोंके उपचारके लिये मिट्टी भी एक आवश्यक वस्तु है। हमारे शरीरका अधिक भाग मिट्टीसे बना है, इसलिये यदि उसपर मिट्टीका असर हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। मिट्टीको लोग बहुत पवित्र मानते हैं। दुर्गन्ध मिटानेके लिये लोग जमीनपर मिट्टी लीपते हैं सड़ी चीजोंपर मिट्टी डालते हैं तथा हाथ अपवित्र हो जानेसे उसे मिट्टीसे धोकर पवित्र करते हैं। योगी लोग शरीरपर मिट्टी लगाते हैं। यहांके लोग साधारण-तया फोड़े फुन्सियोंमें मिट्टीका उपयोग करते हैं। हमारे देशकी स्त्रियां जो अभीतक गांवोंमें रहती हैं, साबुनका प्रयोग विरले ही करती हैं। यदि उनके सिरके बाल मैले हो जाते हैं तो वे पीली मिट्टीसे ही उनको साफ करती हैं। और मिट्टीसे साफ करनेसे बाल जितने मुलायम, चिकने और साफ हो जाते हैं उतने साबुनसे कदापि नहीं होते। इसीलिये जिन स्त्रियों को शहरोंमें पीली और शुद्ध मिट्टी मिल जाती है वे भी साबुनका प्रयोग, सुलभ होनेपर भी नहीं करती क्योंकि वे जानती हैं कि मिट्टीसे सिर मलनेपर जो आराम मिलता है वह साबुनसे कभी भी नहीं मिलता। यह तो शारीरिक सफाईकी दृष्टिसे हुआ। इसका एक दूसरा पहलू भी है। जिन लोगोंने हिन्दुओंके घर भोजन बनते देखा ही होगा उनको इस बातका ज्ञान होगा कि हिन्दुओंके चूल्होंके ऊपर चाहे जिस चीजके बने हों, मिट्टी जरूर लिपी होगी। जबतक उनको नित्य मिट्टीसे लीप कर साफ नहीं किया जाता तबतक वे उनपर भोजन नहीं बना सकते क्योंकि उनकी दृष्टिमें वह केवल पानीसे धो देने मात्रसे साफ और पवित्र नहीं समझा जाता। वे उसको पवित्र माननेके लिये तैयार नहीं हो सकते। इसका कारण यह है कि मिट्टीसे लीपकर साफ कर देनेसे उस स्थानकी गन्दगी तो दूर हो ही जातीहै साथ ही मिट्टीमें कृमि-मारक जो गुण हैं उसका भी लाभ होता है और यही कारण है कि हिन्दुओंमें मिट्टीको इतना पवित्र और ऊंचास्थान प्राप्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिट्टीमें अमितगुण हैं।

जस्ट नामक एक जर्मन विद्वानने मिट्टीके सम्बन्धमें बहुत सी लाभदायक बातें बतलायी हैं। उसने यहांतक बतलाया है कि मिट्टीके उपचारसे असाध्य रोग भी मिट सकते हैं। उसका कहना है कि एक बार एक मनुष्यको सांपने काट लिया। लोगोंने उसे मरा हुआ समझ लिया परन्तु उस गांवके किसी आदमीने मुझसे सलाह लेनेके लिये कहा। वहांके लोग उसे लेकर मेरे पास आये। मैंने उसे मिट्टीमें गड़वा दिया, थोड़ी देर बाद उसे होश हो गया। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। और कोई कारण भी नहीं कि जस्ट झूठ लिखता। यह बात तो साफ दिखायी देती है कि मिट्टीमें गाड़नेसे बहुत गरमी निकलती है। हमारे पास यह जाननेके साधन नहीं हैं कि मिट्टीमें मौजूद किन्तु अदृश्य जन्तुओंने शरीरके ऊपर क्या काम किया। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि मिट्टीमें जहर इत्यादि चूस लेनेकी शक्ति है। इसपर भी जस्टने लिखा है कि मेरा मतलब यह नहीं कि सभी सांपके काटे मिट्टीके उपचारसे जी उठते हैं। तो यह बात जरूरी है कि ऐसे समयमें मिट्टीका उपचार करना चाहिये। बरे और बिच्छू आदिके डङ्कपर मिट्टीके उप-योगकी बात अधिक मान्य गिनी जाती है। ऐसे डङ्कों पर मैंने खुद भी आजमाइश की है और लाभ होते देखा है। मिट्टीको ठण्डे पानीमें सानकर उसकी गाढ़ी पुल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिस बना लेनी चाहिये और काटे हुए स्थानपर रखकर कपड़ेसे बांध देना चाहिये।

नीचेके उदाहरणोंमें मैंने इस उपचारको स्वयं आजमाया है। मरोड़ होनेवालोंके पेटपर मिट्टीकी पुलटिस बांधनेसे ही तीन दिनमें पेटका मरोड़ना बन्द हो जाता है। सिर दर्दमें सिरपर मिट्टीकी पुलटिस रखनेसे तुरन्त ही आराम मालूम होता है। आंख उठनेपर भी इस पुलटिससे लाभ देखा गया है। चोट लगनेकी दशा में मिट्टीकी पुलटिस सूजन और दर्द दोनोंको साफ कर देती हैं। मैं पहले फ्रूटसाल्ट वगैरह अधिकतर लिया करता था। इसके बिना मैं स्वस्थ नहीं रह सकता था।

१९०१ में मुझे मिट्टीकी उपयोगिता ज्ञात हुई और तबसे ये तमाम चीजें सर्वथा छूट गयीं। कोष्टबद्धतामें यदि पेड़ूपर मिट्टीकी पुलटिस बांधी जाय तो अधिक लाभ दिखायी देता है। पेटका दर्द, अतिसार यह सभी मिट्टी बांधनेसे जाते रहते हैं। तेज बुखारमें पेड़ू और माथेपर मिट्टी बांधनेसे बुखार एक दो घण्टेके बाद ही कम हो जाता है। धीरे धीरे रसनेवाले फोड़ोंपर अक्सर देखा जाता है कि मिट्टीकी उपयोगिता कम हो जाती है। जलेपर मिट्टी बांधनेसे जलन कम हो जाती है और सूजन नहीं चढ़ती। बवासीरके रोगियोंको मिट्टीका बांधना बहुत लाभ पहुंचाता है। पाला पड़नेसे प्रायः हाथ पैर लाल होकर सूज आते हैं। इसपर मिट्टी की पुलटिस अपना असर जरूर करती है। खुजली आदिपर भी मिट्टी गुणकारी देखी गयी है। दुखते हुए जोड़ोंपर मिट्टी लगानेसे तुरन्त फायदा होता है।

इस प्रकार मैंने अनुभव किया है कि मिट्टी हमारे घरेलू इलाजके लिये एक अमूल्य वस्तु है। किन्तु यहां पर यह जान लेना चाहिये कि सब मिट्टी समान असर वाली नहीं होती। सुर्ख मिट्टी अधिक असर करनेवाली देखी गयी है। मिट्टी सदा साफ जगहसे खोदकर निकालनी चाहिये। मिट्टीमें गोबर इत्यादिका मेल होने से उसे काममें नहीं लाना चाहिये। मिट्टी बहुत चिकनी भी नहीं होनी चाहिये। अच्छी मिट्टी वही होती है जिसमे कुछ चिकनाहट हो और कुछ बालूका मेल हो। कूड़े कचरेवाली मिट्टीका उपयोग अच्छा नहीं। यदि सम्भव हो तो मिट्टीको चलनीसे चालकर काममें लाना चाहिये। ठण्ढे पानीमें भिगोकर उसे गूंधना चाहिये। जितना कड़ा आटेको रखा जाता है उतना ही मिट्टीको भी रखना चाहिये। फिर उसे कपड़ेमें लपेटकर पुलटिसकी तरह अभीष्ट स्थानपर रखना चाहिये। मिट्टीको शरीरपर सूखनेके पूर्व ही खोल लेना चाहिये। एक बार बांधी हुई पुलटिस साधारणतया २।३ घण्टे लेती है। एक बार जो मिट्टी काममें आ चुकी हो उसे फिर काममें नहीं लाना चाहिये। यदि पीब आदि न लगी हो तो पुलटिसवाला कपड़ा पुनः धो सुखाकर काम में लाया जा सकता है। पेड़ूपर पुलटिस बांधनेके समय पुलटिसपर एक गरम कपड़ा रखकर तब उसपर पट्टी चढ़ानी चाहिये। हर एक मनुष्यकी एक डिब्बेमें मिट्टी भर कर रखना चाहिये। इससे आवश्यकताके समय उसका प्रयोग हो सकेगा। बिच्छू इत्यादिके डङ्क मारने पर जितनी ही जल्दी मिट्टी लगायी जाती है उतना ही अधिक फायदा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ उपयोगी प्राणायाम विधियां

श्री स्वामी सर्वानन्द सरस्वती

प्राणायामसे हमारे शरीरके भीतर स्थित गन्दगी दूर होती है इसको सभी लोग जानते हैं। यह भी अनुभव सिद्ध बात है कि यदि नियमित रूपसे प्राणायाम किया जाय तो आयु बढ़ती है। शरीरके अन्दर यदि किसी प्रकारके दोष हों तो वे भी विशेष प्रकारके प्राणायाम करनेसे दूर होते हैं। नीचे हम मल-शोधक, ज्ञान तन्तुओंको शक्ति देनेवाले तथा स्वर-सुधारक तीन प्रकारकी प्राणायाम विधियां देते हैं।

(१) मल-शोधक प्राणायाम—इस प्राणायामसे फेफड़े शुद्ध होते हैं, शरीरके कोषोंमें चैतन्यका समावेश होता है और श्वास–नलिका तथा शरीरमें स्वास्थ्यका संचार होता है। इसके अभ्याससे थके हुए शरीरमें फिर ताजगी आती है। व्याख्याता, गायक, शिक्षक, वकील आदि जिनको बोलनेका अधिक काम पड़ता है इसका अभ्यास कर लाभ उठा सकते हैं।

विधि—(१) नासिकाके दोनों छिद्रों द्वारा क्रमशः फेफड़ेमें वायु भरे। (२) कुछ देरतक वायुको अन्दर ही रोके रखे। (३) फिर होठोंको सीटी बजानेकी तरह संकुचित करके छोटेसे छिद्र द्वारा थोड़ी सी वायु साधारण वेगसे बाहर निकाले। इसके बाद मुंह बन्दकर वायुको थोड़ी देरतक भीतर ही रोके रहे। इसी प्रकार एक-एक कर वायु थोड़ी देरतक निकाल डाले। जबतक पूरी हवा न निकल जाय तब तक इसी प्रकार करता रहे। इस क्रियामें वायु साधारणसे कुछ विशेष वेग-पूर्वक निकालनी चाहिये साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि वायु एकदम बाहर न निकल जाय।

शारीरिक परिश्रमसे थके हुए लोगोंके लिये यह क्रिया अत्यन्त उपयोगी है। अभ्याससे अनुभवके बाद प्रत्येक मनुष्यको इसके गुणोंका विश्वास हो जायगा। सरलतासे सुखपूर्वक इस क्रियाका अभ्यास कुछ देरतक करना चाहिये। इस क्रियामें मुखके द्वारा श्वास बाहर निकालनेका आदेश है। कितने लोगोंको यह योगशास्त्रोंके नियमोंके विरुद्ध प्रतीत होगा। इसका कारण यह है कि सर्वत्र ही मुख द्वारा वायु निकालनेका वर्जन किया गया है। कहते हैं इससे शक्ति क्षीण होती है। प्राणायामकी कुछ विशेष विधियोंमें इस नियमका पालन हो सकता है परन्तु श्वसन क्रियाके सभी अवसरों पर इस नियमका पालन असम्भव है। गायक, वक्ता और शिक्षक आदिको बोलते समय और ऐसे साधारण मनुष्योंको भी बातचीत करते समय अवश्य ही मुख द्वारा वायु बाहर निकालनी पड़ती है। तो क्या इससे उनकी शक्ति अधिक क्षीण हो जाती है? असलमें प्राणायामकी विशेष क्रियाएं करने वालोंको मुखके द्वारा श्वास नहीं निकालनी चाहिये। और यदि देखा जाय तो कितने ही ऐसे अवसर हैं जब हम थक जानेपर मुंहसे सांस निकाल कर विश्राम और आरामका अनुभव करते हैं।

ज्ञान तन्तुओंको बल देनेवाला प्राणायाम—इस क्रियाके करनेसे ज्ञानतन्तु शक्तिशाली होते हैं। अभ्यास किया जाय तो यह स्वतः विदित हो जायगा कि यह क्रिया कहांतक गुणकारी है।

विधि (१) खुली हवामें सीधा खड़ा हो जाय। (२) नासिकाके दोनों छिद्रोंसे वायु अन्दर भरे और उसे अन्दर ही रोक रखे। दोनों हाथोंको सामने सीधा फैलाये परन्तु शिथिल रखे। किन्तु इतने शिथिल न रखे कि वे सीधे न रह सकें। (४) फिर हाथोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नायुओंको दृढ़ करके मुट्ठी बांधता जाय और उनको धीरे-धीरे कन्धेकी ओर लाता जाय। इधर हाथ कन्धे की ओर आयें और उधर हाथोंकी मुट्ठियां इतनी दृढ़ होती जायं कि हाथोंमें कम्प मालूम होने लगे। (५) फिर अवयवोंकी दृढ़ अवस्थामें ही मुट्ठियोंको धीरे-धीरे खोले और सवेग पुनः बन्द कर ले। इस प्रकार कई बार करे। (६) श्वास मुखके द्वारा बल पूर्वक बाहर निकाल दे। (७) इसके बाद थोड़ा रुककर मल-शोधक प्राणायाम कर डाले।

अभ्यासके बिना इस क्रियाके वास्तविक लाभका अनुमान नहीं किया जा सकता। अभ्याससे इसका लाभ प्रकट होनेके अनन्तर इसके महत्वका अनुभव होता है।

वायुसे फेफड़ेको पूर्णतया भरने, वायुको भीतर रोक रखने और अन्तमें फेफड़ोंको धीरे-धीरे किन्तु वेगपूर्वक खाली करनेकी जो विधि इस क्रियामें बतलायी गयी है वह अभ्यासके द्वारा क्रमशः सिद्ध कर लेनेपर ही इस क्रियामें सफलता प्राप्त हो सकती है।

स्वर-सुधारक प्राणायाम —यह प्राणायाम स्वरको बल-वान, मधुर और कर्णप्रिय बना देता है। यदि नियमित रूपसे इसका अभ्यास किया जाय तो ये समस्त गुण साधकके स्वरमें आ जाते हैं। दिन भर इसका अभ्यास न करके केवल पन्द्रह बीस मिनट तक इसे करना चाहिये। प्रत्येक कार्यकी सिद्धिमें जितनी दृढ़ता अपे-क्षित है उतनी ही नियमितता भी।

विधि —बहुत ही मन्द किन्तु समान गतिसे वायु फेफड़ोंमें तब तक भरता जाय जब तक वे भर न जायं। वायु ग्रहण करनेमें अधिकसे अधिक समय लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये। (२) ग्रहण की हुई वायुको कुछ देर तक भीतर ही रोक रखना चाहिए। (३) फिर मुंह फैलाकर एक ही प्रवाहमें वायुको वेगसे बाहर निकाल दे। अभ्यासके अन्तमें मलशोधक प्राणा-याम कर डाले।

स्वर सुधारनेकी एक और विधि दी जाती है। इससे भी उतना ही लाभ होता है। किन्तु यह ऊपर-वालेसे कुछ कठिन है।

(१) मानसिक वृत्तिको छातीके नीचेवाले छेदके भीतरी भागमें, अत्यन्त गहरी जगहमें, जहां अनाहत चक्र है, स्थापित करे। (२ फिर ऐसा सङ्कल्प करे कि बाहर किसी प्रकारकी भी क्रिया नहीं होती है किन्तु क्रिया अन्दरके ही भागमें हो रही है। इसके बाद अल्प परिमाणमें नासिकाके दोनों छिद्रों द्वारा वायु अन्दर खींचे। थोड़ी देरतक ऐसे ही रहनेके अनन्तर फिर वायु खींचे और फिर रुके। इस प्रकार चार पांच बारमें फेफड़ेमें यथेष्ट वायु पहुंचा दे। पेट अधिक हिलना नहीं चाहिये। सारा कार्य मन्द गतिसे करना चाहिये। सारी हलचल अन्दरके ही भागमें होती रहे ऐसी चेष्टा रखनी चाहिए। (३) वायु अन्दर खींचनेमें जितना समय लगाये उतने ही समय तक उसको अन्दर रोक रखे तथा अपनी समस्त वृत्तियोंको अनाहत चक्रपर ही स्थित रखे। (४) फिर जितने समयतक वायु रोक रखी हो उतने ही समयमें, अन्दर खींचनेके समान क्रम-क्रमसे थोड़ी-थोड़ी वायु बाहर निकाल दे। पांच मिनटसे प्रारम्भ कर इस क्रियाको दस मिनटतक करना चाहिये। इससे अधिक समय लगाना ठीक नहीं। दिनमें दो या तीन बार अनुकूल अवसर देख कर यह क्रिया की जा सकती है। अभ्यास हो जानेपर चाहे तो वायु एक ही बारमें ग्रहणकी जा सकती है परन्तु बाहर निकालते समय उपर्युक्त क्रमका ध्यान रखना आवश्यक है।

इस क्रियाके अभ्याससे स्वर अत्यन्त मधुर और मनोहर हो जाता है शारीरिक संगठनकी रचना नूतन रीतिसे होती है और मानसिक वृत्तियोंके ऊपर भी इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामजप क्यों और कैसे करें ?

श्रीमत् परमहंस स्वामी शिवानन्द सरस्वती

भगवन्नाम अथवा किसी मन्त्रकी आवृत्तिको जप कहते हैं। इस कलियुगमें जब कि लोग शक्ति हीन और दुर्बल हो गये हैं हठयोगकी क्रियाओंका अभ्यास कठिन है। ऐसी दशामें ब्रह्मसाक्षात्कारकी सर्व सरल विधि नाम जप ही है। भक्त तुकनाम, ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि, रामकृष्ण परमहंस आदि सभीने भगवन्नाम-जपके द्वारा ही परम पद प्राप्त किया है।

जप योगका एक प्रमुख अंग है। भगवान कृष्णने कहा है-यज्ञोंमें मैं जप यज्ञ हूं। इस कलिकालमें सबसे बड़ा साधन जप ही है। जप करनेसे कालान्तरमें समाधि लगती है। जप नित्य नियमित रूपसे करना चाहिये। जपके समय मनमें सदा दिव्य भाव रहने चाहिये। प्रेम, श्रद्धा और पवित्रताकी भावनाके विना जप हो ही नहीं सकता। जप योगसे बढ़कर दूसरा कोई योग नहीं है। इससे अष्ट सिद्धियां तथा मुक्ति, भुक्ति सभी कुछ सुगमतया प्राप्त हो जाती हैं।

मन्त्रकी आवृत्तिको जप कहते हैं; भगवानके गुणों का चिन्तन करते हुए उनकी मूर्तिपर चित्त एकाग्र करनेका ध्यान कहते हैं। यही जप और ध्यानमें अन्तर है। ध्यान जप सहित और जप रहित दोनों प्रकार हो सकता है। जब आप अपने अभ्यास-क्रममें आगे बढ़ते हो तो जप पीछे छूट जाता है, केवल ध्यान ही ध्यान रह जाता है। किन्तु इस अवस्थाकी प्राप्ति सुगम नहीं है। ध्यानका अभ्यास अलग भी किया जा सकता है। जिसको जो मार्ग सुगम जान पड़े उसीपर उसको चलना चाहिये। ॐ सगुण ब्रह्म एवं निर्गुण ब्रह्म दोनोंका द्योतक है। सगुण ब्रह्मका ध्यान करनेके लिये भी ॐ, राम आदिका जप किया जा सकता है।

नाम और रूप एक ही हैं। जिस प्रकार शब्द और विचार दो नहीं एक ही हैं, उसी प्रकार नाम और नामी एक ही हैं। जिस समय आप अपने पुत्रको याद करते हो उस समय मानसिक पटलपर आपके पुत्रकी मूर्ति आकर खड़ी हो जाती है। ठीक उसी प्रकार जब आप राम अथवा कृष्णका जप करते हो तब रामकी अथवा कृष्णकी मूर्ति आपके मनमें साकार हो उठती है। अतः जप और ध्यान एक ही हैं, ये अविभेद्य हैं।

जिस समय आप किसी मन्त्रका जप करते रहो उस समय यह विचार अपने मनमें जमा लो कि आप अपने इष्टदेवके सम्मुख खड़े हो, आपके इष्टदेव प्रसन्न वदन आपके ओर देख रहे हैं, तथा मोक्ष प्राप्त्यर्थ आप-को अभयदान दे रहे हैं। इस भावका सम्पादन करनेसे आपको बहुत लाभ हो सकता है।

मन्त्रका जप भक्ति भाव पूर्ण हृदयसे किया करो। मन्त्रका अर्थ भी जानना बहुत जरूरी है। भगवानको सर्व व्यापी समझो। जप करते समय अपनेको उनके समीपस्थ समझा करो। भगवानको अपने हृदय मन्दिर में आसीन समझा करो। भगवान सर्वद्रष्टा और सर्वसाक्षी हैं। अतः आप जब मन्त्रका जप करते हो उस समय वह आपकी जप-क्रियाको भी देखते रहते हैं।

अनन्य प्रेम और श्रद्धाके साथ भावापन्न होकर जप करना चाहिये। नाम-स्मरण या नाम-जप भगवत्सेवा से तनिक भी न्यून नहीं है। भगवानको देखनेपर जो अनन्यता, तन्मयता, श्रद्धा और प्रेमका भावोद्रेक आप के हृदयमें होता है। उसीको आपके हृदयमें जप करनेके समय भी स्थित रहना चाहिये। नामकी महिमा, उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति और उसकी नित्यतामें आपके अन्दर दृढ़ विश्वास रहना चाहिये ।

जपके सम्बन्धमें मन्त्रका भी ज्ञान रखना अत्यावश्यक है । जिसका मनन करनेसे प्राणी आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाता है उसको मन्त्र कहते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि जिसका ध्यान, चिन्तन अथवा मनन करनेसे मनुष्य, रोग, दोष, दुःखादिसे तथा पापपुण्यमय जगत्के बन्धनसे मुक्ति पा जाता है तथा चतुर्वर्गको प्राप्तकर लेता है वही मन्त्र है । मन्त्र शब्दकी व्याख्या बड़ी कौतुक पूर्ण है । मन्त्र शब्दका प्रथम वर्ण मननको व्यक्त करता है तथा द्वितीय वर्ण दृष्यमाण जगत्से मुक्तिका सूचक है । अतः दोनोंके संयोगसे प्राप्त इस शब्दका अर्थ हुआ धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको प्राप्त करानेवाली वस्तु ।

प्रत्येक मन्त्रमें दिव्यता होती है । साधकको चाहिये कि वह अपनी शक्तिभर मन्त्रकी दैवी शक्तिके साथ अपना सामंजस्य स्थापित करनेका उद्योग करे । जिस सीमा तक वह अपने इस प्रयत्नमें कृतकार्य होगा उस सीमातक मन्त्रशक्ति उसकी साधना शक्तिकी सहायक होगी । जिस प्रकार हवाकी सहायतासे अग्नि अधिकाधिक प्रज्ज्वलित होती है उसी प्रकार साधककी व्यक्तिगत शक्तिका उत्तरोत्तर विकास मन्त्रशक्ति द्वारा होता है । इस प्रकार मन्त्रकी शक्तिके साथ साधककी शक्तिका मेल होनेपर उसमें यथेष्ट बल आ जाता है ।

मन्त्रोंमें सबसे प्रमुख और सबसे प्रसिद्ध मन्त्र प्रणव (ॐ) है । इसकी महिमाका क्या कहना । ॐ ही सब कुछ है । ॐ ही ब्रह्म है, ॐ ही जगत् है । ॐ के जपसे मनपर विलक्षण प्रभाव पड़ता है । भारतीयों की तो बात ही छोड़िये, यूरोपीय विद्वानोंका भी ध्यान प्रणव-जप तथा उसकी अपरिमेय शक्तिकी ओर आकृष्ट हुआ है (१) ॐ (२) भूर (३) भुवः (४) स्वः (५) तत् (६) सवितुर, (७)वरेण्यम् (८) भर्गो (९) देवस्य—इन नव नामोंके द्वारा भगवत् प्रार्थनाकी जाती है । 'धीमहि' और 'धियोयोनः प्रचोदयात्' भगवानके भजन और प्रार्थना हैं । इस मन्त्रका पूर्णोच्चारण करनेमें पांच विराम पड़ते हैं—

पहला ॐ के बाद, दूसरा भू र्भुवःस्वः के बाद, तीसरा तत्सवितुर्वरेण्यम् के बाद चौथा भर्गोदेवस्य धीमहि के बाद और पांचवां धियोयोनः प्रचोदयात् के बाद । अतः मन्त्रके जप करनेके समय प्रत्येक व्यक्तिको इन विराम स्थलोंपर रुकना चाहिये ।

गायत्री मन्त्रमें सविता आराध्य देव है, अग्नि मुख है, विश्वामित्र ऋषि हैं और गायत्री छन्द है । इसका जप लोग यज्ञोपवीत धारण करनेके समय, प्राणायामके समय तथा जपके समय करते हैं । सन्ध्या और गायत्री एक ही हैं । दोनोंमें कोई विभेद नहीं । गायत्रीके ध्यान करनेवालेको उतना ही पुण्य होता है जितना विष्णुके ध्यान करनेवालेको । गायत्रीका जप सब कालमें, सब परिस्थितियोंमें किया जा सकता है । और क्योंकि सन्ध्या और गायत्रीमें कोई अन्तर नहीं है अतः प्रत्येक मनुष्य गायत्री जप द्वारा त्रिकाल—प्रातः, मध्याह्न एवं सायं—संध्या कर सकता है । वेदोंमें आता है—समानो मंत्राः, अर्थात् सबके लिये एक मन्त्र होना चाहिये । गायत्री ही एक ऐसा मन्त्र है जिसको सभी हिन्दू श्रद्धा भावसे देख सकते हैं और जिसका सभी जप कर सकते हैं । कहा है—उपनिषदोंमें वेदोंका सार तत्व आ गया है तथा उपनिषदोंका सार गायत्रीमें आ गया है । वही व्यक्ति द्विज कहा जा सकता है, जो गायत्रीकी इस महत्ताको समझता है । गायत्रीके इस प्रकारके ज्ञान बिना ब्राह्मण शूद्रसे भी पतित है चाहे वह वेदोंका कितना भी पण्डित क्यों न हो ।

गायत्रीके जपसे लाभ

गायत्री वेदोंकी जननी है तथा पापोंके समूहको निवारण करनेवाली है । त्रिलोक तथा त्रिकालमें ऐसी

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भी वस्तु नहीं जो हमारे मन एवं शरीरको गायत्री के सदृश शुद्ध करनेकी क्षमता रखती हो। चारों वेदोंके साङ्गोपाङ्ग स्वाध्यायसे जितना पुण्य होता है उतना ही गायत्री-जपसे भी होता है। प्रतिदिन यदि केवल इसी मन्त्रका तीन वार जप किया जाय तो मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इस वेदमन्त्रमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि सब प्रकारके कलमष इससे धुल जाते हैं। इससे शक्ति, स्फूर्ति, तेज तथा सौन्दर्यकी प्राप्ति होती है।

गायत्री जपसे तापत्रय विनष्ट होते हैं। इससे चारों प्रकारके पुरुषार्थ,—धर्म,अर्थ, काम, मोक्ष—प्राप्त होते हैं। ग्रन्थित्रय—अविद्या, काम और कर्मका इससे विनाश होता है। मन पवित्र होता है तथा बुद्धि तीव्र होती है। इसका जप करनेसे अष्ट सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। गायत्रीके जपसे मनुष्य परम पदको प्राप्त करता है तथा आवागमनके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। गायत्रीके जपसे गायत्रीका दर्शन होता है और अन्तमें अविनाशी अद्वैत ब्रह्मका दर्शन होता है। उस समय जीव तन्मयता, तल्लीनता, तद्रूपता एवं तदाकारकी स्थितिको प्राप्त कर लेता है।

जपके लिये हरिनामका सहारा भी लिया जा सकता है।

प्रत्येक मन्त्रमें छः बातें होती हैं। पहली बात यह है कि मन्त्रका कोई ऋषि होता है, जिसको सर्व प्रथम मन्त्रके जप द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार हुआ रहता है। ब्रह्म साक्षात्कार कर लेनेके अनन्तर वह ऋषि उस मन्त्रका उपदेश अन्य लोगोंको करते हैं। उस मन्त्रके वही ऋषि कहे जाते हैं। इसलिये कहा जाता है कि अमुक मन्त्रके ऋषि अमुक व्यक्ति हैं, जैसे गायत्रीके ऋषि विश्वामित्र कहे जाते हैं। दूसरी बात यह है कि प्रत्येक मन्त्र किसी न किसी छन्दमें होता है। जैसे, गायत्री मन्त्रके नामसे जिस मन्त्रकी प्रसिद्धि है वह गायत्री नामक छन्दमें लिखा गया है। तीसरी बात यह है कि प्रत्येक मन्त्रका एक-एक अधिष्ठात्रि देव होता है। चौथी बात यह है कि मन्त्रका एक बीज होता है। इस बीजमें बहुत अधिक शक्ति होती है। उससे मन्त्रमें शक्ति भर जाती है। यह मन्त्रका सार पदार्थ है। पांचवीं बात यह कि मन्त्रमें स्वतः शक्ति होती है। अन्तिम और छठीं बात यह है कि हरेक मन्त्रमें कीलकम् होता है, जिसके कारण मन्त्रमें चेतनता भर जाती है। यदि किसी मन्त्रकी श्रद्धा भक्ति समन्वित अनवरत आवृत्ति की जाय तो उसके अन्तरमें प्रच्छन्न चेतनता जागरूक हो उठती है तथा भक्त अपने आराध्य देवका दर्शन करनेमें समर्थ हो जाता है।

इस कलिकालमें हरिनामके स्मरण मात्रसे सकल कलमष धुल जाते हैं। कलियुगमें मोक्ष-लाभका कोई अन्य साधन नहीं है। केवल हरिनामके जप मात्रसे बड़े-बड़े पापी भवसागरसे पार हो जाते हैं। हरिनामकी महिमाके विषयमें क्या कहा जाय। गोस्वामीजीने तो यहांतक कह दिया है—

राम न सकहिं नाम गुन गाई।

फिर भला हमारे जैसे इतर जनकी तो बात ही क्या? कलियुगमें तो नाम जपकी विशेष आवश्यकता है—कलियुग केवल नाम अधारा।

अतः रामनामका जप सब लोगोंको अति शीघ्र आरम्भ कर देना चाहिये। जिनके अन्दर इसके प्रति विश्वास नहीं, वे भी कमसे कम परीक्षार्थ इसका जप भक्ति और श्रद्धासे कर देखें। तर्क और बहससे कुछ होता जाता नहीं। जीवन क्षण भंगुर है, इसका एक-एक क्षण देखते-देखते बीतजाता है। अतः समय व्यर्थ नष्ट करनेसे क्या लाभ? उसका सदुपयोग करना चाहिये। प्रतिक्षण जीवन नष्ट होता जा रहा है। नाम-स्मरण अथवा नाम-जप द्वारा लाभ उठाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य

पाण्डेय पराशर भट्टाचार्य, साहित्य-आयुर्वेदाचार्य

वेदोंके साथ निरन्तर साहचर्य स्थापित किये रहने का नाम ब्रह्मचर्य है। 'ब्रह्म' शब्दका अर्थ भगवानके सिवा वेद भी होता है। पुराने भारतमें यह एक आश्रम था जिसमें प्रत्येक त्रैवर्णिक बच्चेको नियत समय तक रहकर वेदोंका अध्ययन करना पड़ता था। वह आश्रम, जीवनको हर प्रकारसे उपयुक्त बनानेका प्रथम सोपान था। यों तो प्रकट शुक्र १२-१४ वर्षकी उम्रमें दीख पड़ता है और कन्याओंमें आर्तवके प्रकट होनेका समय भी यही है किन्तु ये दोनों चीजें रहती हैं जन्मसे ही। १२ वर्षके पहले जननेन्द्रियका दुरुपयोग करनेसे, चाहे एक श्वेत-तरल पदार्थका क्षीरण न भी हो पर उससे शरीर एवं मस्तिष्ककी वह हानि होती है जो ३०-३५ वर्षकी आयुमें काफी स्त्री समागमसे भी नहीं होती। प्रथमाश्रम ही जीवनके शेष भागमें शरीरको सब तरहकी मुसीबतोंके झेलने योग्य एवं मस्तिष्कको सभी विषयों के ग्रहण करनेके लायक बनाता है और ज्ञानको अंशतः भर देता है। चूंकि इस आश्रममें वेदाध्ययन और शुक्र-रक्षा—दो कर्त्तव्य आ जाते हैं एवं बगैर शुक्र-रक्षाके पूर्ण रूपसे वेदाध्ययन, जिसकी कल्पना आर्य करते थे, सम्भव नहीं है, इसलिये 'ब्रह्मचर्य' शब्दका अर्थ भी 'वेदोंके साथ निरन्तर साहचर्य' के अतिरिक्त शुक्र-रक्षा भी हो गया। बल्कि जन-साधारणमें ब्रह्मचर्य शब्दका मुख्यार्थ दूसरा है। ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला प्राचीन भारतीय सुखी, मेधावी, दीर्घजीवी, कष्ट सहिष्णु, विवेकशील, अमोघ-वीर्य और सुसन्तति था। मकानकी नींव जितनी मजबूत होगी, उसपर उतनी ही ताकतवर और सुन्दर इमारत खड़ी की जा सकेगी। नींव मज़बूत करनेमें वर्षों समय और लाखों रुपये लग जाते हैं। ब्रह्मचर्यके लिये जीवनका चतुर्थांश अपेक्षित है। अनुशासन पालन और बान्धव-दर्शन, जिनके प्रतीक गुरु और भिक्षाचर्या हैं, यहींसे सीखा जाता है। कुछ लोगोंका, जिनमें डा० भगवानदासजी प्रमुख हैं, ख्याल है कि परिमार्जित रूपमें पुनः वर्णाश्रम धर्मका भारतमें प्रचार किया जाय। वे लोग इसीमें आपसी संघर्षका शमन, देशकी उन्नति और जन-नियन्त्रण भी समझते हैं। पर यह मेरे विवेच्य विषयसे आगेकी चीज है। मुझे तो ब्रह्मचर्यके मुख्यार्थ पर ही विचार करना है।

धर्मशास्त्रोंमें ब्रह्मचारीकी दो श्रेणियां वर्णित हैं—एक है 'उपकुर्वण' और दूसरी है 'नैष्ठिक'। प्राचीन भारत की समस्या आजकी-सी नहीं थी। प्राचीन भारतीयों की सन्तान होते हुए भी आज हमें सबसे पहले अर्थकी, रोटीकी समस्यापर विचार करना पड़ता है, यद्यपि हमारे पुरखे धर्मको पहला स्थान देते थे। अन्न एवं वस्त्रकी दुष्प्राप्यताने, नहीं चाहनेपर भी, हमारे दिमाग को खामखाह अपनी ओर उलझा रखा है। इसके मानी यह नहीं है कि आज प्राचीन भारतकी अपेक्षा अन्न कम पैदा होता है या कपड़े कम बुने जाते हैं। सन् १९१८ के बादसे तो हमारे देशमें भी इतने पुतलीघर चलने लगे हैं कि वस्त्रके लिये भारत पर-मुखापेक्षी नहीं रह गया है, बशर्ते कि वह महीन वस्त्रोंका अपना नाजायज लोभ संवरण कर दे। मगर आजका आर्थिक विषय विभाजन हमारी क्रियाशक्ति ही चाट गया है। बाजारमें अन्नकी ढेर रखी हुई है, दूकानोंमें पूड़ियां छन रही हैं, मिठाइयां सजी रखी हैं, उत्तमोत्तम कपड़े आलमारियोंमें सजे रखे हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम भूखे हैं, नंगे हैं, पर हम उन्हें खरीद नहीं सकते। कारण हमारे पास पैसे नहीं हैं। प्राचीन भारतीय अन्न, वस्त्रकी चिन्तासे मुक्त था। इसलिये इतर पुरुषार्थोंकी अपेक्षा अन्तिम पुरुषार्थ—मोक्षको ही ज्यादा सोचता था। वस्तुतः जब धर्म, अर्थ और काम अनायास सिद्ध हो जायं तो मोक्षकी समस्या ही विकट रहती है जिसे हल करना प्रत्येक समझदारके लिये आवश्यक हो जाता है। ब्रह्मचर्याश्रममें जीवनका चतुर्थांश ज्ञानार्जन में बितानेवालेके लिये जनातिरेककी सम्भावना ही नहीं है। उसे तो उतनी सन्तति उत्पन्न ही कर देनी है जिससे समयपर बर्बरोंके, दस्युओंके आक्रमणसे देशकी रक्षा हो सके। यही कारण है कि पुराने भारतीयोंके दिमागमें ऋणत्रयसे विमुक्तिके लिये सन्तान उत्पन्न करना आवश्यक था। इन ऋणोंसे छुटकारा पानेके बाद ही मनुष्य मोक्षका अधिकारी हो सकता था। 'उपकुर्वण' ब्रह्मचारी यही करता था। हरेक आदमी बुद्धि वा क्षमता एक-सी नहीं रखता, इसलिये अपनी बुद्धि एवं क्षमताके अनुसार तीन, दो या एक वेदका सांगोपांग अध्ययन कर अन्तमें गुरुकी आज्ञा ले जो ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता था उसे उपकुर्वाण कहते थे मगर जो जिन्दगी भर ब्रह्मचर्य रखता, गुरु, गुरुपुत्र गुरुपत्नी या हवनीय अग्निके अनुशासनमें रह अपना जीवन व्यतीत करता वह भी मोक्षका अधिकारी समझा जाता था। इसी दूसरी श्रेणीका नाम'नैष्ठिक'है। सोद्देश्य जीवनकी तमाम बिखरी हुई शक्तियोंकी एकमें ज्ञान पूर्वक लगानेवाले मानवके जीवनसे राष्ट्रको वे तमाम लाभ हो सकते हैं, जो योद्धा ज्ञानी एवं विधायकके रूपमें सन्तान देने वालों से। फलतः प्राचीन भारतीयोंकी दृष्टिमें मोक्षके सम्बन्धमें दोनोंकी तुल्यावस्था थी, जो उस समयके भारतीयोंको स्पृहणीय था और जो सभी युगके विचार वान व्यक्तियोंको स्पृहणीय हो सकता है। प्राचीन भारतमें उपकुर्वाणोंकी ही भांति नैष्ठिकोंका एक समूह था जिनमें हनूमान और भीष्म पितामह आदि उल्लेखनीय हैं।

भगवान बुद्धके युगमें वैदिक सभ्यता अपने रूपमें नहीं रह गयी थी। भारतकी जन-संख्या भी काफी अधिक हो गयी थी। भारतीयोंने उस समयके महान् पराक्रमी सिकन्दर एवं सिल्यूकसका मान भी अपने पैरों तले रौंदा था। इसलिये भिक्षुकों—नैष्ठिकोंकी एक सेना देशहित-साधनके लिये तैयार की गयी थी। उनके दिलमें शुक्र-रक्षासे जो अमोघता प्राप्त होती है उसके सिवा परिवारका बड़े कामोंमें अन्तराय होनेकी भावना भी काम कर रही थी। एक भिक्षुकने कहा था—तथागतकी सेनाके अन्दर हम परिवारकी चिन्तासे मुक्त हैं। आयुर्वेदसे देहसिद्धि करीब करीब हमने कर ली है। शेष है 'लौहसिद्धि'। सिद्धे रसे करिष्ये निर्दारिद्र्यमिदं जगत्।" पाराको अपने नियन्त्रणमें लानेपर संसार की दरिद्रता भगायी जा सकती है। आगे चलकर इस सङ्घमें भिक्षुणियोंका भी प्रवेश हुआ और सङ्घके टुकड़े हो गये। इसके ही एक टुकड़ेसे वाममार्गका प्रचार हुआ जो नैतिकतामें हर तरहसे गिरा हुआ था। मेरा ख्याल है कि यूरोपीय चिरकुमारोंके सामने हमारा यही दूसरा पहलू आया। विना जिम्मेदारी लिये भोग महेशः का खुला हुआ मार्ग उन्होंने अपना लक्ष्य रखा। बातचीत के सिलसिलेमें किसी दिन एक कर्मठ युवकने कहा था—नवजवान समुद्रको मथ सकता है, पहाड़ तोड़ सकता है और आकाशके तारोंको जमीनपर बिखेर सकता है, यदि बीचमें स्त्रियां, आलस्य और ममता आदि न आ जायं। राजा जनक चाहे भोगमें योगका दर्शन पा लें पर साधारण कुमार लगलमें दो-दो षोड़शियोंको बिठा कर उनके गुलाबी गालोंको चूमता हुआ अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा नहीं कर सकता। साथ ही बढ़ियासे बढ़िया भोजन करनेवाला, कीमतीसे कीमती वस्त्र पहननेवाला साधु भक्त स्त्रियोंके बीच माला खटखटाने या वैराग्यपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्यान दे डाले पर वह भीष्म पितामह आदि नहीं हो सकता। जो लोग उसे वैसा समझते हैं वे मूर्ख हैं या पागल।

ब्रह्मचर्य पालनके लिये नियमित जीवन बितानेकी जितनी आवश्यकता है और उतनी ही आवश्यकता नियमित भोजन करने की भी है। ऋषियोंने इन भावोंको ब्रह्मचर्यका विघातक बताया है:—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेवच।

—याद करना, चर्चा करना, खेल करना, देखना, एकान्तमें बातें करना, सङ्कल्प करना, प्राप्तिके लिये उपाय करना और मैथुन, यह ब्रह्मचर्यके लिये घातक हैं। काम कोई दृश्य वस्तु नहीं है जिसके अभावमें ब्रह्मचर्य की रक्षाकी जा सकती है। वह मानस है। मनकी शुद्धि पर काम अभाव और उसकी मलिनता पर काम उद्रेक है। यों तो सभी चीजें पहले मानस और फिर इन्द्रियगत होती हैं। इसीलिये दार्शनिकोंके एक दलने मनको भी ११ वीं इन्द्रिय माना है, यद्यपि वह नाक, आंख की भांति दृश्य नहीं है। मनकी शुद्धि चिन्त्य विषयोंकी प्रशस्तापर, जिसका संकेत ऊपरके श्लोकमें किया गया है और भोजनकी शुद्धिपर निर्भर करती है। मेरा ख्याल है कि हम हिन्दुओंके सामने भोजनके सम्बन्धमें जो रूढ़िवाद आज उपस्थित है उसका एक कारण यह भी है, जिसका संकेत ऊपर किया गया है।

हम भारतीयोंके पास दीनताके सिवा आज कुछ भी शेष नहीं रह गया है। समय, परिस्थिति और लुटेरोंने हमारी सभी चीजें लूट ली हैं। ऐसी हालतमें, हमें अपने ब्रह्मचर्यकी ओरसे खूब सावधान रहना चाहिये। यही एक निधि है जिसकी रक्षा हम बिना दूसरोंके मुंह ताके कर सकते हैं और उसके बलपर अपना लुप्त गौरव पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

सात्विक जीवनकी सार्थकता

खल विघ्नका ग्राह ! अकाल हीमें,
बनता कहो कौन निशाना नहीं।
किस मानवके नव जीवन को,
दिया काल करालने ताना नहीं।
क्षण एकमें क्या क्या हुआ करता,
जग ने इस तत्वको जाना नहीं।
बस सार्थक 'सात्विक जीवन' है,
इसे झूठ ही मूठ बिताना नहीं।

क्षण-भंगुर जीवन ही जब है,
तो कहो इसमें फिर सार ही क्या।
अरे जीव तू पार न पा सकता,
इस मोह समुद्रका पार ही क्या।
अघमें है सनी जब संसृति ही,
तो कहो इस भांति उबार ही क्या।
कही मान ले मानव मूढ़ अरे,
बिना सात्विक वृत्तिके सार ही क्या।

—कविवर 'श्रीश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिवाद

श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

(क्रमागत)

शक्ति ब्रह्मकी यह मायाशक्ति सत्व, रज और तमोगुणमयी त्रिगुणात्मिका हैं। यह अनादि अनन्त, असीम, निरविच्छिन्न और निर्गुण शक्ति ब्रह्म रूप परम चैतन्य पुरुष "शिव" को अपने अविद्या या घोर अज्ञान रूप आवरणसे परिमित करती और देश, काल, वस्तु, परिच्छेदके मायापाशसे बांधती हुई "सगुण ब्रह्म" के ही रूपमें परिणत कर देती है। यही इस मायाशक्ति की मायामयी 'माया' वा लीलामयीका लीलारूप विलास है। इस त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके क्रमागत विकाससे उसकी यह मायाशक्ति ही कभी सत्व, कभी रज और कभी तमोगुण रूप धारण करती हुई (सत्वगुणमयी) महालक्ष्मी, (रजोगुणमयी) महासरस्वती और (तमोगुणमयी) महाकालीके रूपमें अथवा शक्ति ब्रह्मके नाते ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें संसारकी सृष्टि स्थिति और संहारकी पुनरावृत्ति करती रहती है। प्रकृतिके सत्व, रज और तम ये तीन गुण ही परस्पर एक दूसरेसे टकराते हुए इस मृत्युमय संसारको अपनी अपनी व्यष्टिगत या समष्टिगत न्यूनाधिकताके कारण कभी तो सत्वगुणके विकास कालमें सत्ययुगके रङ्गमञ्च पर और कभी रजोगुणके विकास और सत्वगुणके ह्रास कालमें त्रेताके रंगमञ्च पर, इसी प्रकार तमोगुण के विकास और सत्व तथा रजोगुणके आपेक्षित ह्रास के समय द्वापरकी रंगस्थली पर और एक मात्र तमोगुणकी अधिकता तथा सत्व और रजोगुणकी न्यूनता वा पूर्ण ह्रास कालमें तमोगुणका ही एकाधिपत्य साम्राज्य हो जानेसे कलियुगके रंगमञ्चपर नाटकके विविध अभिनय वा दृश्य रूपमें उपस्थित किया करते हैं।

इस प्रकार 'शक्तिवाद' की साधना भी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके इन तीन प्रधान गुणोंके आधार पर ही, साधकोंकी भिन्न-भिन्न रुचि वा त्रिगुणात्मिका के अनुसार तदनुरूप कई भागोंमें विभक्त की गयी है। रजोगुण और तमोगुणको मर्यादित रूपमें रखते हुए अथवा रजोगुण और तमोगुणको भी सत्वगुणका साधन बनाते हुए, पूर्ण "सत्व" का विकास करना ही आगम व तंत्रशास्त्रकी साधनाका मुख्य उद्देश्य है।

इस दृश्य जगत वा सृष्टिका मूल कारण "बहुस्यां प्रजायेय" रूपमें उस शक्ति ब्रह्मकी इच्छा वा कामना ही है। मातृशक्तिरूप शक्ति ब्रह्मकी यह वासनामयी माया ही "सृष्टि" रूप क्रीड़ा वा लीलानाट्य किया करती है। यह सृष्टि उसकी लीला वा क्रीड़ा मात्र ही है। "सृष्टिः लीला हेत्वोः" अथवा "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्" की वासना वा कामनाका अन्त हो जाने पर यह "शक्ति ब्रह्म" रूप आधार शक्ति ही अपनी इस मायाशक्तिको अपने आपमें लीन कर प्रलय-नाट्य करती हुई अपने परम चैतन्य और निजानन्दरूप "शिव" वा कैवल्य पदमें शिव स्वरूप ही हो जाती है। "ब्रह्मैव भवति स्वयम्" जीव और शिवमें कोई भेद नहीं रह जाता। प्रकृति ब्रह्ममें लीन हो जाती है। "हम न तुम दफ्तर गुम" की ही कहावत चरितार्थ होती है। 'शिवा' और 'शिव' "अर्द्धनारिनरेश्वर" और पूर्ण शिव रूपसे एक दूसरेसे पृथक नहीं रहते। "जीवश्शिवः शिवो जीवोस्स जीवः केवलश्शिवः' का श्रुतिवाक्य ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना 'वेदवाक्य' वा 'ज्ञान' नाम सार्थक कर दिखाता है।

इसी आगम, निगम, वेद और तंत्र तथा श्रुति स्मृति प्रतिपादित सिद्धान्तकी एकवाक्यताके ही आधारपर जो जीव मनुष्य शरीर धारण कर केवल निम्न स्वार्थ जनित सकाम कर्मोंमें ही रत रहते हुए एक मात्र "प्रवृत्ति" का ही अनुसरण करते हैं, निवृत्ति वा मोक्ष की ओर ताकते भी नहीं, वे अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेके लिये बारम्बार संसार रूप पुण्य फल, स्वर्गमें नियत काल तक भोग लेने और पुण्य फलके क्षीण हो जानेपर अपनी-अपनी व्यक्तिगत शुभा-शुभ वासनाओंके नाते फिर भी मृत्युलोकमें आते हैं और इस आवागमन रूप संसार-चक्करसे कभी छूटते ही नहीं। पर जो निष्काम कर्मका आचरण करते हुए वासनाक्षय और मनोनाश द्वारा "आत्मशुद्धि" कर अपने "आत्मानुभव" से आत्म साक्षात्कार व ब्रह्म साक्षात्कार रूप आत्माकी प्राप्तिसे स्वस्वरूप वा निजानन्द रूप आत्मामें स्थित भी हो जाते हैं वे ब्रह्म वा शिव रूप हो जानेके कारण उस कैवल्य पद वा परम धामको प्राप्त करते हैं कि जहांसे इस विशिष्ट जीवको फिर भी जीव रूपसे, इहलोकमें लौटना नहीं पड़ता। यही भगवान शिवका—"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" रूप "परम धाम" है जो शाक्तोंमें शिवका कैवल्य वा परम पद ही कहा गया है।

'शक्तिवादके उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचनसे यह प्रकट है कि शक्तिवाद, शाक्तधर्म वा शाक्त दर्शनमें भी साधनका मुख्य उद्देश्य आत्मोत्सर्ग वा आत्मसमर्पण द्वारा वासनाक्षय वा कामनाओंका आत्यन्तिक और एकान्तिक त्याग ही है। आगम वा तंत्रशास्त्र "साधनाशास्त्र" वा "योगशास्त्र" ही है। इस तन्त्रोक्त 'साधना' का निरूपण स्वयं शिव रूप निर्गुण ब्रह्मने अपनी पराशक्ति वा 'शिवा' रूप शक्ति ब्रह्मसे किया है अर्थात् अपने आप को, स्वयं अपने आपसे ही व्यक्त किया है। अपने आप को ही समझाया और बताया है। शिव ही वक्ता और 'शिवा' रूपसे स्वयं शिव ही श्रोता और यन्त्रा भी हैं। शिव स्वयं ही 'साधना' रूपसे व्यक्त होकर इच्छा शक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिके त्रिगुणात्मक रूपमें प्रकट होते हैं, अतएव इस 'साधनशास्त्र' वा योगशास्त्रका नामकरण भी, स्वयं ही, "स्वयमात्मा" वा स्वयमेव परांगतिः के रूपमें स्वयं ही आने वा 'आगमन' रूप व्यापार वा क्रियाके नाते "आगम" रूपसे किया गया है और जब वही निर्गुण ब्रह्म रूप शिव आदि "गुरु" के रूपमें अपनी उपर्युक्त 'शिव' वा शिवारूप शक्ति ब्रह्मकी साधनाका "निर्गमन" शिष्य बने हुए अपने ही अपर रूप प्रकृति, जीव वा संसारके प्रति, करता है तब यह 'आगम' ही 'निगम' वेद वा ज्ञानका वैदिक वा वेदोक्त रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार आगम और निगम अथवा तन्त्र-शास्त्र और वेदमें कोई भी अन्तराय वा भेद नहीं रह जाता। दोनों एक ही शिवतत्त्व वा ब्रह्मतत्त्वके प्रतिपादन करनेवाले आगम और निगम रूपसे स्वतःसिद्ध और स्वयंसिद्ध ज्ञान रूप वेद वा वेद रूप ज्ञान ही हैं। कुलाचार वा पंचतत्त्वकी उपासना, शक्ति पूजाके रूपमें इस आगम रूप शक्तिवाद वा साधानाशास्त्रका ही प्रधान अङ्ग है। तंत्रशास्त्रमें वर्णित अनुष्ठान वा क्रियाओं की समुचित साधनासे श्री मां दुर्गाके चरणोंमें सर्वात्म-समर्पण वा आत्मोत्सर्ग करते हुए कामनाओंका आत्यन्तिक त्याग सहज ही किया जा सकता है। इस प्रकार वासनाक्षय और मनोनाशसे पूर्ण चित्त शुद्धि वा आत्म शुद्धि हो जानेपर आत्मसाक्षात्कार वा आत्मप्राप्ति अथवा ब्राह्मीस्थिति वा स्वस्वरूपस्थितिका कैवल्य रूप शिव-का परम पद भी आगम वा तंत्रकी उपासनासे भी सम-रूपसे ही अत्यन्त सुगम, सुलभ और अति सहज भी है। अन्यथा अपनी मलिन वासनाओं वा अशुभ कामनाओंका दास बना हुआ कापुरुष चिरकालके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासनाओंके पङ्कमें ही लिप्त (लिपटा हुआ) रहेगा। तन्त्रशास्त्रकी यह साधना निरी 'मूर्ति पूजा' अथवा कोरी स्तुति वा प्रार्थना ही नहीं है और न यह एक मात्र "अनमिल आखर अर्थ न भावा" की गपड़-सपड़ निरर्थक मन्त्रोंकी मिथ्या उपासना है। इसका प्रत्येक अक्षर "बीज" रूपसे साक्षात् 'अक्षर' वा ब्रह्म रूप ही है। यह एक मात्र विषय भोगमें ही रत मद्यपी, मांसाहारी अथवा "मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मिथुनमेव च" वा पंच मकारकी आड़में अतिकामी, कामकामी और विषय लोलुप व्यभिचारियोंका ही कलुषित मार्ग भी नहीं है। यह सच्ची साधना है, प्रकृति, पुरुष, जीव और ब्रह्मको एक कर दिखाने की। स्त्री और पुरुष तथा उमा और उमापति शिवको, माया और मायापति ब्रह्मको प्रकृतिरीश्वर अथवा अर्धनारी – नरेश्वरके रूपमें सुन्दर और समुचित रूपसे सुसज्जित कर व्यक्तको अव्यक्त, सगुणको निर्गुण और अपूर्णको पूर्ण कर दिखाने की। "पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादय पूर्णमेवावशिष्यते" के श्रुति वाक्यको अक्षरशः चरितार्थ कर दिखाने की। जो "मयिते तेषु चाप्यहम्" रूपसे मुझमें और मेरे रोम-रोममें "रमा" वा 'राम' रूपसे रमा हुआ है और जिसमें और जिसकी प्राप्तिके लिये मेरा व तेरा यह 'मैं' वा 'तू, दूधमें मक्खन की तरह सर्वत्र समरूपसे समाया हुआ है, चराचर वा स्थावर जंगम रूप अखिल विश्वमें ही चिर विराजमान है, उसे ही तन्त्रोक्त कुलाचार और वेदोक्त सदाचार रूप धर्मकी नेती लगाकर और साधना रूप रपीसे मथ कर हस्तामलकवत्—हाथ पर आवलेकी तरह निकाल रखना और उसका रसास्वादन कर स्वयं भी रस रूप ही "रसो वैसः" अथवा "रसो वैसा" के अखंडैकरसमें निजानन्द रूप परम चैतन्य 'शिव' परम पद 'कैवल्य' की प्राप्तिसे आत्मोन्मत्त हो:—

"ॐ आत्मानन्द स्वरूपोऽहं सत्यानन्दोऽस्म्यहं सदा, आत्माराम स्वरूपोऽस्मि ह्यमात्मा सदा शिवः" रूप आत्म संगीतका सुमधुर राग अलापना है। यही स्वराटको विराट और साधकको सिद्ध बनाकर नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्त कर देनेकी अत्यन्त सरल 'कुंजी' है। संक्षेपमें यही सिद्धान्त है आगम वा मंत्रशास्त्र वर्णित शक्तिवाद, शाक्तधर्म वा शाक्तदर्शन का। इसी शाक्त दर्शन वा शक्तिवादके कुलाचार रूप यन्त्रतत्वकी उपासनामें शक्ति ब्रह्म रूपिणी मां दुर्गाकी शारदीय पूजा अथवा शारदीय "नवरात्रि" के दिनोंमें शक्ति ब्रह्म वा मांदुर्गाके साथ शक्ति ब्रह्मकी ही मायासे उत्पन्न हुए शक्तिके ही अंश रूप अहंकृत वा अशुद्धाहंकार रूप, देहासक्त, कायासक्त और संसारासक्त अन्यान्य कामकामी और 'ध्यायते विषयान्पुंसः संगस्तेपूपजायते" इस गीतावाक्यको अक्षरशः चरितार्थ करनेवाले अहंकार विमूढ़ देहात्मवादी—दैत्यकुलाधिपति महाराज दनु के (संगात्संजायते कामः) काम रूप अत्यन्त दुर्द्धर्ष और कामाचारी पुत्र "रम्भ" से उत्पन्न हुए (कामात् क्रोधोभिजायते) क्रोध रूप महिषासुर और लोभ रूप रक्तबीज; (क्रोधाद्भवति सम्मोहः) मोह रूप निशुंभ और (मोहात्स्मृति विभ्रमः) स्मृति भ्रम रूप "शुम्भ" नामके दो दैत्य कुलाधिपति यदि (स्मृति भ्रंशाद्बुद्धिनाशः) बुद्धिनाश रूप अत्यन्त प्रबल आसुरी सेना और "बुद्धि नाशात्प्रणश्यति" दैत्य कुलका महासंहार रूप अत्यन्त घोर युद्धकी अत्यन्त प्रज्ज्वलित तथा भयङ्कर झांकी बीज रूपसे निहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायश्चित्त और शुद्धि

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी

मनुष्यकी प्रकृति स्वभाविक ही कमजोर होती है और वह अनेक सांसारिक प्रलोभनोंमें आकर, जान-बूझकर, अथवा विना जाने, नानाप्रकारके पाप करता है। पाप कर्मोंका फल उसको प्रत्यक्ष रूपसे अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। जैसा कि कहा है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

परन्तु जो पाप हो चुका है, उस प्रकारके पापोंमें फिर मनुष्य न फँसे इसलिए शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके पापोंके लिये अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त बतलाये गये हैं और हिन्दू धर्मका विचार है कि उन प्रायश्चित्तोंके कर लेनेसे किये हुए पापोंका मोचन हो जाता है। और सचमुच ही पाप-कर्मका फल जो दुःख-भोग है, वह जप, तप, व्रत इत्यादिके द्वारा स्वयं अपने ऊपर ले लेनेसे—प्रायश्चित्त कर लेनेसे--पूर्ण हो जाता है और मनुष्य आगे के लिये शुद्ध हो जाता है। अस्तु। पाप अनेक हैं, परन्तु उनमें सबसे बड़े पाप मनुजीने इस प्रकार बतलाये हैं:—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥

ब्राह्मणों और सज्जनोंकी हत्या, मदिरा पीना, चोरी करना, किसी माननीय गुरुकी स्त्री अथवा अन्य किसी दूसरेकी स्त्रीसे व्यभिचार करना, ये बड़े भारी पाप हैं और इन बातों से संसर्ग रखना भी एक बड़ा भारी पाप है।

इसका सारांश यही है कि हत्या, मदिरापान, चोरी और व्यभिचार तथा इन पापोंके करनेवाले मनुष्योंका संसर्ग, ये पांच बड़े भारी पातक हैं। इन पातकों तथा इसी प्रकारके अन्य भी सैकड़ों छोटे-मोटे पातकोंके अनेक प्रायश्चित्त--व्रत, उपवास, जप-तप इत्यादिके रूपमें मनुस्मृति, इत्यादि स्मृतिग्रन्थोंसें लिखे हुए हैं। मनुस्मृतिके ग्यारहवें अध्यायमें अनेक प्रायश्चित्तोंका वर्णन करनेके बाद मनुजीने लिखा है—

ख्यापने नानुपातेन तपसाऽध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि॥
यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वाऽनुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाऽधर्मेण मुच्यते॥
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्मगर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाऽधर्मेण मुच्यते॥
कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥
एवं संचित्य मनसा प्रेत्यकर्मफलोदयम्।
मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत्॥
अज्ञानाद्यदिवा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम्।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत्॥

इसका अर्थ यह है कि जिस किसीसे कोई पाप हो जाय, वह अपने उस पापको दूसरों पर प्रकट करे, पश्चात्ताप करे, तप करे, शास्त्रका अध्ययन करे, तो उसका पाप छूट जायगा, और यदि इन बातोंमेंसे कोई भी न कर सके, तो दान करके भी वह पापसे छूट सकता है। अपने किये हुए अधर्मको ज्यों-ज्यों मनुष्य दूसरोंसे कहता है त्यों-त्यों वह उस अधर्मसे वैसे ही छूटता जाता है जैसे सांप केंचुलीसे। ज्यों-त्यों उसका मन अपने किये हुए दुष्कार्योंकी निन्दा करता है त्यों-त्यों उसका शरीर उस अधर्मसे छूटता है। मनुष्य जो पाप करता है उस पर ज्यों-ज्यों वह अपने मनमें अपने ही ऊपर क्रोध करता है अथवा मन ही मन अपने उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप पर दुःखी होता है त्यों-त्यों वह उस पापसे बचता है और फिर जब वह प्रतीज्ञा करता है कि, 'अब ऐसा पाप न करूँगा' तब वह इस पाप-निवृत्तिके कारण शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार मनुष्यको चाहिये कि वह बार-बार अपने मनमें सोचता रहे कि मैं इस जन्ममें जो कर्म करूँगा उसका फल मुझे अगले जन्ममें भी मिलेगा; और यह सोचकर वह मन, वाणी और शरीर से सदैव शुभ कर्म करता रहे। पापोंसे अपने आपको बचाये रखे। सच तो यह है कि अज्ञान अथवा ज्ञानसे जो कोई निन्दित काम मनुष्यसे हो जाय और वह उस पापकर्मसे छूटना चाहे तो फिर दुबारा उसको न करे।

यही भगवान् मनुके उपर्युक्त श्लोकोंका अर्थ है। आज कल हिन्दू धर्मके लिये कोई राजनियम अथवा समाजनियम न होनेके कारण प्रायश्चित्तोंका प्रायः लोप हो गया है। चोरी, जुआ, मिथ्याभाषण, व्यभिचार मद्यपान, हत्या इत्यादि पापोंका तो साम्राज्य है। इन पापोंको करते-कराते हुए आज न तो कोई प्रायश्चित्त करता है और न समाज ही इनके लिये कोई प्रायश्चित्त कराता है। ये मनुजीके गिनाये हुए पातक हैं; परन्तु महापातकोंका आज कोई प्रायश्चित्त नहीं है। इसीसे यह धर्मक्षेत्र भारतवर्ष आज अधर्मका क्रीड़ाक्षेत्र बना हुआ है। हां, जो पातक संसर्गजन्य हैं, उनको आज-कल बहुत महत्व दिया जा रहा है। जैसे कोई सज्जन यदि विदेशयात्रा करें, तो उनका यह कार्य प्रायश्चितके योग्य समझा जाता है। अन्य कुछ पातक हिन्दू समाजने इस प्रकारके भी मान रखे हैं, जिनका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं हैं। जैसे, कोई अपने हिन्दूधर्मसे धर्मान्तर कर के ईसाई या मुसलमान हो जाय, तो हिन्दूसमाज इसका कोई प्रायश्चित ही नहीं मानता। फिर चाहे वह विधर्मियोंके छलके कारण, बलात्कारके कारण, अथवा भूखों मरनेके कारण ही विधर्ममें क्यों न गया हो, हिन्दूसमाज में उसके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है। इसी कारण इस पवित्र भारतवर्षमें गोभक्षियोंकी संख्या करोड़ों तक पहुंच गयी है। जो लोग हिन्दूधर्ममें रहकर गोरक्षक थे, आज अपने समाजकी कमजोरीके कारण, करोड़ोंकी संख्यामें गोभक्षक हो रहे हैं। यह धर्मकी कमज़ोरी है अथवा समाजकी निर्बलता है ? हम तो यही कहेंगे कि यह हमारे हिन्दू धर्मकी कमज़ोरी नहीं है। हिन्दूधर्म एक बहुत ही व्यापक धर्म है, उसमें प्रायश्चित्तकी विधि पापोंके क्षालनके लिए ही रखी गयी है। ऐसा कोई बड़ासे बड़ा पाप भी नहीं है कि जो हिन्दू धर्मकी अग्नितुल्य पवित्रतामें भस्म न हो जाय श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

किरातहूणान्ध्र पुलिन्द पुक्कास।
आवीरकंकायवनाः खशादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः।
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

जिस ईश्वरीय धर्मका आश्रय करनेसे किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कस, आवीर, कंक, यवन,खश इत्यादि अनार्य और पापी लोग शुद्ध होते हैं, उस परम पवित्र धर्मको नमस्कार है। और सच तो यह है कि इस प्रकारकी अनार्य जातियां भी आर्योंसे ही उत्पन्न हुई हैं। ये जातियां अनार्य किस प्रकार बन गयीं, इसका कारण मनु भगवान् इस प्रकार बतलाते हैं—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदापल्हवाश्चीनः किरातादरदाः खशाः।

ये जातियां पहले क्षत्रिय थीं। जब इनके आर्य धर्म-कर्म लोप हो गये, तो वे भारतवर्षके बाहर इधर-उधरके देशोंमें चले गये ; और वहां इनको याजन, अध्यापन और प्रायश्चित्तादिके लिए विद्वान तपस्वी ब्राह्मण न मिलने लगे, तब धीरे-धीरे अनार्य हो गयीं। वे जातियां कौन सी हैं ? उनमेंसे मनुजीने निम्नलिखित जातियां गिनायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं– पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद अपल्हव, चीन, किरात, दरद और खश।

जब भारतवर्षको छोड़कर अथवा भारतवर्षमें ही इन जातियोंने अपने धर्मकर्म छोड़ दिये और ब्राह्मणोंके दर्शन इनको न होने लगे, ब्राह्मण लोगोंने भी इनको छोड़ दिया, अथवा इनसे घृणा करने लगे, तब ये बेचारे वृषलत्वको प्राप्त हो गये। ब्राह्मणोंके अदर्शनके कारण जब इनकी यह दुर्गति हुई है, तब क्या ब्राह्मणोंके दर्शन से फिर इनकी सद्गति नहीं हो सकती?

म्लेच्छ अथवा मुसलमानोंकी तरह अन्य जो मलीन जातियां हैं, उनकी उत्पत्ति तो हमारे पुराण-ग्रन्थोंमें बड़ी विचित्र रीतिसे बतलायी गयी है। मत्स्यपुराणमें लिखा है—

ममन्थुब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्माषाः।
तत्कायात् मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातयः॥
शरीरे मातुरंशेन कृष्णांजनसमप्रभाः।

राजा वेनके शरीरका पवित्र ब्राह्मणोंने मन्थन किया और उस मन्थनके कारण, माताके अंशसे उस राजाके शरीरसे ये म्लेच्छ जातियां उत्पन्न हुई। काले अञ्जनके समान चमकीला इना वर्ण था।

श्रीमद्भागवतके चौथे स्कन्धमें भी म्लेच्छ जातियों की उत्पत्ति इसी प्रकारसे बतलायी गयी है। इससे मालूम होता है कि आर्य क्षत्रिय राजाओंसे ही इनकी उत्पत्ति है। आज तो इन जातियोंने और भी उन्नति कर ली है। इनके रङ्ग-ढङ्ग, चाल-ढालमें बहुत कुछ सभ्यता दिखायी देती है। खासकर भारतीय मुसलमानोंका रक्त-सम्बन्ध सैकड़ों वर्षसे भारतके आर्योंसे है; और इनमें बहुत कुछ आर्यत्व है। भारतीय ईसाई जातियां तो अभी बहुत थोड़े दिनसे आर्यच्युत हुई हैं। अतएव उनमें कुछ और भी विशेष सभ्यता दिखायी देती है। यदि भारतवर्षके तपस्वी विद्वान ब्राह्मण लोग इन लोगोंको बार-बार अपने दर्शन दिया करें, इनसे घृणा न करें, इनमें हिलमिल कर अथवा जिस तरहसे हो सके, इनको आर्य या हिन्दू-धर्ममें फिर ले आयें तो यह कुछ अनुचित न होगा। जो अपना अङ्ग है, उसको अपने अङ्ग में लेनेसे सङ्कोच क्यों करना चाहिये?

यह हमारा अङ्ग जो हमसे अलग हो गया है हमारी लापरवाहीके कारण हुआ है। हमने इनको घृणित समझा इनको दूर-दूर किया—ये हमसे इतनी दूर हो गये कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। अब यदि हम फिर इनको गलेसे लगानेको तैयार हों तो ये फिर हमारा प्रेम पाकर हमसे मिल सकते हैं। आठ-नौ करोड़ ईसाई-मुसलमानोंमेंसे अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जिनसे हमने घृणा की; और वे हमसे अलग हो गये। कुछ दुष्काल आदिमें भूखों मरनेके कारण हमसे अलग हुए। हमने उनके टुकड़ेका बन्दोबस्त नहीं किया; अपने ही इन्द्रियाराममें मस्त रहे। कुछ बलात्कार अथवा बहकानेमें आकर अज्ञानताके कारण हमसे अलग हुए; हमने उनकी रक्षा नहीं की उनको लापरवाहीसे छोड़ दिया। यदि हम फिर अपनी उपर्युक्त लापरवाहियोंको सुधार लें; और जो आठ नौ करोड़ हमसे अलग हो गये हैं उनसे घृणा छोड़कर प्रेम सम्बन्ध स्थापित करें तो यह कुल्हाड़ीका दण्डा जो अपने गोतका ही काल हो रहा है फिरसे अपने गोतकी रक्षा करने लगेगा।

इतनी उदारता हमारे धर्ममें है; परन्तु आवश्यकता यह है कि हम उदार बनें। हम ऊपर श्रीमद्भागवतका प्रमाण देकर लिख चुके हैं कि हमारे धर्ममें वह शक्ति है, वह उदारता है कि वह बड़े-बड़े पतितोंको पावन कर सकता है। आजके पहले हजारों वर्षका हमारा इतिहास भी साक्षी है कि आर्योंके अतिरिक्त अन्य आर्येतर म्लेच्छ इत्यादि जातियोंको प्रायश्चितसे शुद्ध किया है। सबसे पहले अत्यन्त प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थों का प्रमाण लीजिये। तांत्रिक लोग बड़े कट्टर हिन्दू थे। "महानिर्वाणतन्त्र" में लिखा है —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहो पुण्यतमाः कौलाः तीर्थरूपाः स्वयं प्रिये।
ये पुनन्त्यात्मसम्बन्धान् म्लेच्छश्वपचपामरान्॥

अहा! ये तांत्रिक लोग कितने पवित्र और पुण्यशील है कि वे म्लेच्छ, श्वपच, इत्यादि परम पापी लोगों को भी अपनेमें मिलाकर शुद्ध कर लेते हैं। इसके बाद तांत्रिक सम्प्रदाय की पवित्रता प्रकट करते हुए कहा गया है:—

गंगायां पतिताम्भांसि यान्ति गांगेयतां यथा।
कुलाचारे विशन्तोऽपि सर्वे गच्छन्ति कौलताम्॥

जिस प्रकार गङ्गामें मिला हुआ जल, चाहे जैसा अपवित्र हो, यह पवित्र गङ्गाजल हो जाता है, उसी प्रकार चाहे अपवित्र धर्मवाला मनुष्य हो, तांत्रिक लोगोंमें मिलकर तांत्रिक ही हो जाता है।

यह तो तांत्रिक लोगोंका उदाहरण हुआ। इनके सिवाय हिन्दू धर्मके प्रवल रक्षक छत्रपति शिवाजी महाराज और गुरु नानक इत्यादिके समयमें भी विधर्मियोंको प्रायश्चित्त-द्वारा शुद्ध करनेकी प्रथा थी। प्रायश्चित्त भी समय-समयके अनुसार ऋषियोंने वतलाये हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्मृतिमें कहते हैं—

दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे।
आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते॥

अर्थात् दानमें, विवाहमें, यज्ञमें, संग्राममें, देशविप्लवमें, कष्टदायक आपत्तिके समय सद्यःशौचका विधान है। जैसे आज कलका समय है। यह हमारे देशके विप्लवका समय है; और हमारी जाति पर एक प्रकारसे वड़ी भारी आपत्ति आयी हुई है। इस समय शुद्धिके लिए भी हमको कठोर प्रायश्चित्तोंके व्यवहार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इस समय तो हमको यही देखना चाहिये कि हमारे धर्मकी कोई स्त्री अथवा पुरुष किसी भी कारण-विशेषसे, परधर्ममें चला गया है, तो उसका वहांसे छुटकारा करके उसको 'सद्यःशौच' का प्रायश्चित्त करा कर तुरन्त उसको शुद्ध कर लेना चाहिये। हां, महर्षि मनुके कथनानुसार उसको अपने कार्य पर पश्चात्ताप अवश्य होना चाहिये कि हमने अपना धर्म छोड़कर बहुत बुरा कार्य किया और परमात्मा अब हमसे ऐसा कभी न करायें। परन्तु यह पश्चात्तापका प्रायश्चित्त भी उन लोगोंके लिये है कि जो जानबूझकर स्वधर्मका त्याग करते हैं; परन्तु जो अज्ञानसे, अथवा बलात्कारसे स्वधर्म छोड़नेके लिये वाध्य किये जाते हैं, वे तो अत्यन्त दयाके पात्र हैं। उनकी शुद्धि करनेके लिये प्रायश्चित्तकी भी आवश्यकता नहीं हैं; क्योंकि उनका मन स्वधर्मके विषयमें कभी अशुद्ध नहीं हुआ था। बालकों और स्त्रियोंके उदाहरण इसी प्रकारके हैं। स्त्रियोंको तो मनु महराजने सर्वथा शुद्ध माना है; और नीच कुलसे भी शीलवती स्त्रीको धर्म पूर्वक ग्रहण करनेकी आज्ञा दी है —

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि कांचनम्॥
स्त्रियोरत्नान्यथो विद्याधर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥

अर्थात् उत्तम विद्या नीचके पास हो, तो भी उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लेना चाहिये। उत्तम धर्म शूद्रसे भी श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिये; और स्त्री रत्न चाहे बुरे कुलमें भी हो, तो भी उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिये। विषसे भी अमृत ले लेना चाहिये। बालकके भी शिक्षादायक वचन ग्राह्य हैं। अच्छा चालचलन यदि शत्रुमें भी हो तो लेना चाहिये। सुवर्ण नापाक जगहसे भी उठा लेना चाहिए। इस प्रकार स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, पवित्रता, अच्छे वचन, और अनेक प्रकारकी शिल्प विद्या सब जगहसे, जहां मिलेवहींसे, ले लेना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु महाराजके इन वचनोंसे स्पष्ट है कि स्त्री चाहे जितने नीच कुलमें हो यदि वह स्वैरिणी व्यभिचारिणी नहीं है, तो उसे अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिये। परन्तु उसे धर्मपूर्वक ग्रहण करना चाहिये अधर्मसे नहीं। धर्मपूर्वक विधर्मी स्त्रीको भी ग्रहण करके हम अपने पवित्र आचरणके संसर्गसे उसे धर्मात्मा बना सकते हैं। तप और सदाचारमें बहुत बड़ी शक्ति है। महर्षि पराशरने राजा जनकसे कहा है:—

राजन्नैतद्भवेद् ग्राह्यमपकृष्टेन जन्मना।
महात्मनां समुत्पत्तिः तपसा भावितात्मनाम्॥

अर्थात् हे राजन्, नीच कुलमें जन्म पाने पर भी तपसे उच्चत्व प्राप्त हो सकता है। कई लोग कहेंगे कि यह सतयुगकी बात है आजकल ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु ऐसी बात नहीं है। तप और वीर्यका प्रभाव सदा-सर्वदा वैसा ही रहता है। महर्षि मनु कहते हैं:—

तपोबीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विहजन्मतः॥

अर्थात् तपप्रभावसे और बीजप्रभावसे प्रत्येक युगमें मनुष्य जन्मकी उच्चता और नीचताको प्राप्त होते हैं।

सारांश यह है कि जिस प्रकारसे तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण अपने संसर्गसे नीच कुलकी विधर्मी स्त्रीको भी पवित्र कर सकता है, उसी प्रकार वह अपने वीर्यसे उसके द्वारा उत्तम उच्च कुलकी सन्तति भी उत्पन्न कर सकता है। इस विषयमें मनुजीने एक जगह और भी कहा है:—

जातोनार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः।

अर्थात् अनार्या स्त्रीमें आर्य पुरुषसे उत्पन्न हुआ पुत्र गुणोंसे आर्य ही होगा। वीर्यप्रधान सदैव ही रहता है। ऐसी दशामें आर्य (हिन्दू) लोगोंको अनार्य (आर्येतर) जातिकी स्त्रियोंको ग्रहण करनेमें अब कोई लज्जा या संकोच न करना चाहिये। हम लोगोंको मनु इत्यादि अपने शास्त्रकारोंकी आज्ञाके अनुकूल आचरण करना चाहिये।

इसी प्रकार विधर्मी बालकोंको भी हम ग्रहण करके अपने धर्ममें मिला सकते हैं। जो दूसरे धर्मके बालक हैं, अथवा अपने धर्मसे अभी हालमें पतित होकर व्रात्य हो गये हैं; उनको हम फिर व्यवहार्य बना सकते हैं। पारस्कार गृह्यसूत्रका वचन है:—

तेषां संस्कारेप्सवो व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन्। व्यवहार्यो भवतीय वचनात्॥४३॥

जो बालक पतित हो गये हैं, उनको व्रात्यस्तोमयज्ञ करा कर हम अध्ययन इत्यादिमें लगाकर व्यवहार्य बना सकते हैं। परन्तु इस समय तो देशके ऊपर महा भयंकर अनिष्ट आया हुआ है, इसलिये महर्षि याज्ञवल्क्य की व्यवस्थाके अनुसार सिर्फ "सद्यःशौच" ही एक बड़ा भारी साधन है। यज्ञ इत्यादि की झंझट इस समय नहीं हो सकती। याज्ञवल्क्यस्मृतिमें शुद्धिके साधन और भी एक जगह लिखे हुए हैं। इनके अनुसार आचरण करना चाहिये:—

कालोऽग्निः कर्ममृद वायुः मनो ज्ञानं तपो जलम्
पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽमी शुद्धिहेतवः॥

अर्थात् काल, अग्नि, कर्म, मिट्टी, वायु, मन, ज्ञान, तप, जल, पश्चात्ताप, निराहार, ये सब शुद्धिके साधन हैं।

मतलब यह है कि जिसकी शुद्धि करनी हो, उसको उसकी शक्तिके अनुसार निराहार व्रत करवा सकते हैं, पश्चात्ताप उसको स्वयं ही होगा; और यदि उसको पूर्ण पश्चात्ताप है, तो फिर मनुजीके अनुसार उसको दूसरे साधनकी आवश्यकता ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपवास चिकित्सा

श्री सैन्फोर्ड बेनेट

संसारमें भिन्न-भिन्न रोगोंके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारकी चिकित्साएं प्रचलित हैं। इस प्रकारकी चिकित्साओंमें उपवास चिकित्सा भी एक है जिसे हम सर्वोपयोगी कह सकते हैं। उपवास चिकित्सा बड़ी ही सुन्दर और आशुफलप्रद है।

चालीस वर्ष पूर्व मैं गायकका कार्य करता था जिसके कारण अक्सर सार्वजनिक स्थानोंसे मेरे पास निमन्त्रण आया करते थे। उस समय जुकाम हो जानेके कारण समय-समयपर मुझे महान क्षतिका सामना करना पड़ता था। एक बार ऐसा हुआ कि मुझे एक वृहद् जलसेमें गायकके रूपमें सम्मिलित होना था। इसकी सूचना भी समाचार-पत्रोंमें धूम-धामसे दी चुकी थी। किन्तु जलसेके तीन दिन पूर्व ही मुझे जुकाम हो गया जिससे मैं घबरा गया। उस समय तक दवा-दारू पर मेरा पूरा विश्वास था। किन्तु तीन दिनमें किसी प्रकारकी दवासे जुकाम अच्छा होते मैंने न देखा था अतः यह अनुभव कर कि मेरे लिये नियत तिथिपर गा सकना असम्भव होगा मैंने जलसेके आयोजकसे अपनी बात कह सुनायी। उन्होंने सारी कथा सुनकर कहा यदि आप मेरे बताये हुए मार्गका अनुसरण करें तो नियत दिनके पूर्व ही रोग-मुक्त हो सकते हैं। मैं आपको प्राकृतिक विधि बतलाऊंगा जो सभी विधियोंसे श्रेष्ठ है। आप दवादारू कुछ न कर केवल मात्र उपवास करें। पानी खूब पीयें। और जबतक नाड़ीकी गति ११० से घटकर ७२ तक न पहुंच जाय तबतक भोजन बिलकुल न करें। इससे आपका ज्वर और जुकाम दोनों ही शान्त हो जायंगे और निश्चय ही आप उस दिन अच्छी तरह गा सकेंगे। मैंने उनकी बात मान ली और घर जाकर तदनुरूप आचरण किया। दूसरे ही दिन मैं अच्छा हो चला और नियत दिन मैंने उस उत्सवमें सोत्साह भाग लिया। उसी समयसे उपवास चिकित्सा पर मेरा विश्वास जम गया। इस अनुभवके आधारपर मैं प्रत्येक प्राणीको यह सलाह दे सकता हूं कि उन्हें जब कभी इस दारुण रोग का शिकार होना पड़े तो अवश्य ही इस प्राकृतिक चिकित्साका सहारा लें। इसमें न किसी दवाकी आवश्यकता है और न डाक्टरोंको लम्बी फीस ही देनेकी आवश्यकता है। मुझे यह पूरा विश्वास है कि जो लोग मेरी सलाहके अनुसार कार्य करेंगे उनको अवश्य लाभ पहुंचेगा।

बहुतसे लोग अधिक भोजन करने या बिना भूखके भी बराबर खाते रहनेसे तथा कितने ही लोग बिना भली भांति चबाये खानेसे रोग ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसे ८० प्रतिशतक मनुष्य अजीर्णके शिकार हो जाते हैं और शेष २० प्रतिशतक तम्बाकू आदिके कारण बेकार हो जाते हैं। लड़कोंपर यह बात लागू नहीं होती। मैंने स्वयं कई लड़कोंको खूब खिलाकर देखा है किन्तु उन्हें अजीर्ण नहीं हुआ। बात यह है कि उनकी पाचनशक्ति अत्यन्त तीव्र होती है अतएव वे जो कुछ भी खाते हैं शीघ्र ही पच जाता है। यदि शरीरमें काफी रक्त बनता रहे तो भोजन अति शीघ्र पच जाता है। पहलवानों या नियमित रूपसे व्यायाम करनेवालोंको मन्दाग्नि या अजीर्णकी शिकायत विरल सुनी जाती है। इसकी वजह यह है कि उनका रक्त व्यायामके कारण काफी शुद्ध और परिष्कृत रहता है। इसलिये वे जो कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाते हैं सब हजम हो जाता है। बालकोंका भी यही हाल है। मैंने स्वयं कई बालकोंको अधिक भोजन करा कर देखा है, उन्हें कभी भी अजीर्णकी शिकायत नहीं होती। उनकी पाचन शक्ति तीव्र होती है अतः उनपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कारण यह है कि वे इतना अधिक दौड़-धूप खेल-कूद करते हैं कि उनका रक्त सदा ही शुद्ध और साफ रहता है।

खानेके सम्बन्धमें मेरी अपनी राय यह है कि भोजन बहुत संयमित रूपसे और खूब चबाचबा कर करना चाहिये। साथ ही भोजनको पचानेके लिये व्यायाम भी आवश्यक है। यह स्मरण रखना चाहिये कि कोई भी पाचकचूर्ण या दवादारू पाचनशक्तिको बढ़ा सकनेमें समर्थ नहीं है। इन दवाओंसे क्षणिकलाभ होता अवश्य देखा गया है किन्तु वे भूखको मार देती हैं और फल यह होता है कि हमारे शरीरमें और भी विकार पैदा हो जाते हैं। पाचनशक्तिको उत्तेजित और ठीक करनेके लिये सबसे बड़ी चीज उपवास है। जो कभी-कभी उपवास कर लिया करते हैं उनको अजीर्ण अथवा अग्निमान्द्यकी शिकायत कभी नहीं होती। यदि किसी प्रकारकी गड़बड़ी पेटमें पायी जाय तो उपवाससे बढ़कर और कोई भी औषधि उपयुक्त नहीं हो सकती। रोग प्रारम्भ होते ही उपवासका प्रारम्भ करना चाहिये। रोग बढ़नेपर कुछ विशेष लाभ तो उपवासका मेरे अनुभवमें नहीं आया पर हां कुछ-कुछ लाभ अवश्य होता है। यदि नियमित रूपसे उपवास किया जाय तो रोगकी कोई आशंका नहीं रहती।

संसारके सभी लोगोंको मेरी सलाह है कि जब कभी पेटमें किसी प्रकारकी शिकायत हो तो तुरन्त उपवास कर लिया करें। और जबतक शिकायत दूर न हो उपवास जारी रखें। उपवास ही एक ऐसी चीज है जो पेटके समस्त विकारोंके लिये रामवाण औषधि है। किन्तु मेरी राय है कि उपवास लगातार न करके कभी-कभी वीचमें नागा दे-देकर करना चाहिये। इसका कारण यह है कि लगातार लम्बे उपवाससे शरीर के अशक्त होनेकी सम्भावना रहती है। दूसरी बात यह है कि सब लोगोंके लिये लम्बे उपवासोंका करना भी सरल नहीं है।

कैलिफार्नियाके श्री विलसन साहेबको, जो अमेरिकाके राष्ट्रपति भी हो चुके हैं, जुकाम हो गया। अनेक प्रकारकी दवाओंसे जब उन्हें कोई लाभ न हुआ तो उन्होंने उपवास करनेका निश्चय किया। पूरे एक मासतक उन्होंने उपवास किया और इससे उन्हें यथेष्ट लाभ हुआ। कुछ दुर्बल तो वे अवश्य हो गये थे किन्तु उनकी नाड़ीकी गति और आंखोंकी ज्योति बिलकुल ठीक थी।

उपवास दो प्रकारके होते हैं - एक तो रोग मुक्त होने के लिये किया गया उपवास और दूसरा भोजन न न मिलनेके कारण लाचारीसे किया गया उपवास। मैंने दोनोंका ही अनुभव प्राप्त किया है। दोनोंमें आकाश पातालका अन्तर है। पहला उपवास इच्छासे किया हुआ होता है और दूसरा अनिच्छासे। अनिच्छा या बलपूर्वक किया हुआ कार्य शरीरपर किस प्रकारका प्रभाव डालता है यह सहज ही समझा जा सकता है। जो इनके अन्तर को समझता है वह दोनों प्रकारके उपवासोंके अन्तरको भली भांति समझ सकता है।

लम्बे उपवास करनेवालोंसे मेरा एक निवेदन है। उपवास-समाप्तिवाले दिन भोजनमें काफी सावधानी रखने की आवश्यकता है। उस दिन बहुत ही हलका और सादा भोजन करना चाहिये। यथा सम्भव पके फलोंका रस या थोड़ा दूध अधिक ठीक रहता है। अधिक भी नहीं खाना चाहिये। भोजन इतना कम और इतना हलका हो कि शीघ्र ही पच जाय। इसके बाद जो भी खायँ खूब चबा-चबाकर खायँ। उस समय भूख खूब खुलकर लगती है जिससे अधिक लाभ होता है। छोटे उपवासोंमें कुछ विशेष तैयारीकी तो आवश्यकता नहीं है पर संयम और सावधानी तो रखनी ही चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोधका शमन कैसे करें ?

श्री जी० एस० एन० मूर्ति

उत्तेजनाका ही दूसरा नाम क्रोध है। जबतक कि इसका सर्वथा उन्मूलन नहीं हो जाता किसीके लिये भी यह संभव नहीं है कि वह शान्ति और आनन्दका जीवन व्यतीत कर सके। मानव शरीरके भीतर यह एक अत्यन्त ही घातक और दुष्ट वस्तु विद्यमान है। इसके अस्तित्वका अभिप्राय है सद्गुणोंका अनस्तित्व। इसके रहनेसे मनुष्य साधारण सांसारिक उन्नति भी नहीं कर सकता फिर आध्यात्मिक उन्नतिकी तो बात हीं क्या।

क्रोधोत्पत्तिका प्रधान कारण वासनाका आधिक्य और उसकी अपूर्ति है। वासनाकी अधिकता होनेसे मनुष्य उत्तेजित हो जाता है, उसका रुधिर उष्ण हो जाता है और उसकी रुधिर वाहिनी नालियोंमें एक प्रकारकी तेजी आ जाती है। परिणाम यह होता है कि उसकी उत्तेजना क्रोधमें फूट पड़ती है और इस प्रकार क्रुद्ध होकर वह अपनी शक्तिका अपव्यय करता है। जो कभी भी अच्छा नहीं कहा जा सकता। क्रोधके और भी कारण हैं। कभी-कभी तो क्रोध ईर्षा द्वेषसे भी उत्पन्न होता है। यदि रामके भीतर श्यामके प्रति द्वेष बुद्धि उत्पन्न हो जाय और क्रमशः उस द्वेषकी मात्रा बढ़ती जाय तो अन्ततोगत्वा वह क्रोध और अनिष्टमें परिणत हो जाती है। मनकी अस्थिरता भी क्रोधका कारण है। यदि आपको सब ओरसे विपत्तियों और कठिनाइयोंका सामना करना पड़े तो निश्चय है कि आप ऊब जायंगे और आपके अन्दर निश्चय ही उस व्यक्तिके प्रति क्रोधका भाव उत्पन्न हो जायगा जो उस अस्थिर मनोभावकी दशामें आपके सम्मुख आकर किसी प्रकारकी छेड़-छाड़ करेगा।

क्रोध इतनी बुरी चीज है कि इसके वशीभूत होने पर लोग अपना होश-हवास खो बैठते हैं। क्रोध आने-पर लोग अपने सगे सम्बन्धियों तकका खून करनेमें नहीं झिझकते। क्रोधके ही वशीभूत होनेपर लोग अपनी मधुर और अच्छी वाणीको विकृत कर लेते हैं तथा ऐसे-ऐसे अश्लील शब्दोंका व्यवहार करते हैं जिनका व्यवहार स्वस्थचित्त होकर वे किसी भी दशामें नहीं कर सकते। किन्तु उत्तेजित होकर लोग क्या-क्या नहीं कर डालते। अपने आपको लोग भूल जाते हैं, तथा अपनी पारिपार्श्विक अवस्थाका लोगोंको ज्ञान नहीं रहता। उत्तेजित होकर मनुष्य पशु, बर्बर और असभ्य हो जाता है। क्रोधावेशमें उसका चेहरा तथा उसकी आंखें लाल और डरावनी हो जाती हैं। मन उसका चञ्चल हो जाता है और शरीर कांपने लगता है। उसका जीवन अशान्त और उद्विग्न हो जाता है। प्रायः कमजोर व्यक्ति ही क्रोधके शिकार होते हैं। जो लोग तनिक-सी बातपर ही उत्तेजित और क्रुद्ध हो जाते हों उनको अत्यन्त दुर्बल चित्तका समझना चाहिये। उनका मन अत्यन्त ही अशक्त और कमजोर होता है। वे आत्मनियन्त्रण नहीं कर सकते। उनको कायर समझना चाहिये। इसके विपरीत एक स्वस्थ और सबल व्यक्ति जल्दी क्रुद्ध नहीं होता। चाहे वह कितनी ही अधिक कठिनाइयोंमें पड़ा हो, चाहे उससे कोई कितना ही छेड़-छाड़ करे उसके मनकी शान्ति कभी नहीं जायगी, वह कभी आवेशमें नहीं आयेगा। उसके चेहरेपर सदा ही शान्ति और प्रसन्नता विराजमान रहेगी। अपने अनिष्टकर्ताके साथ भी वह सद्व्यवहार ही करेगा। उसके मनमें उसके प्रति तनिक भी द्वेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि न रहेगी। ऐसे व्यक्तिका जीवन वास्तवमें आत्म-नियन्त्रित जीवन है। हर तरहकी कठिनाईका सामना वह शान्ति और प्रसन्नता पूर्वक कर सकता है। ऐसा ही व्यक्ति संसारमें उन्नति कर सकता है तथा अपने साथ ही साथ दूसरोंका भी लाभ कर सकता है।

यदि आप अपना मस्तिष्क शुद्ध और शान्त रख सकें तो आप किसी विषयपर शान्ति और गम्भीरतासे विचार कर सकते हैं। आप समयका सदुपयोग आत्म-जिज्ञासा और आत्म विश्लेषणमें कर सकते हैं। उस समय और शक्तिका उपयोग आप दुनियाके लिये कोई अच्छा कार्य करनेमें कर सकते हैं। आप चाहें तो कितनी नयी बातें सीख सकते हैं तथा अपनी इच्छा एवं कल्पना शक्तिको बढ़ा सकते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि आप निश्चिन्त और उद्वेगहीन दशामें जितना ही अच्छा कार्य कर सकते हैं उतना ही बुरा क्रोध और आवेशकी दशामें।

क्रोधसे सर्वथा मुक्त व्यक्ति विश्वमें विरले हैं। शायद ही ऐसा कोई हो जिसे कभी न कभी क्रोध न आ जाता हो। यद्यपि सबल व्यक्ति कम उत्तेजित होते हैं तथापि क्रोधका भाव उनके चेहरेपर भी कभी-कभी लक्षित होता है। किन्तु यह भी बुरा है। इसको भी नहीं होना चाहिये। क्रोधको रोकनेके लिये नीचे कतिपय उपाय दिये जाते हैं—

सबसे पहली बात तो यह है कि जब आपको क्रोध आये तो आप उस स्थानसे तत्काल हट जायं तथा तुरन्त स्नान कर डालें और किसी आसनपर बैठकर कुछ देर तक 'ओम् शान्तिः शान्तिः" का जप करें। यदि आप स्नान न कर सकें तो इसी तरहसे आंखें बन्द कर बैठ जायं और कमसे कम १०८ बार उल्लिखित मंत्रका जप करें। इससे आपका क्रोध तुरन्त ही शान्त हो जायगा और यदि आप इस मन्त्र-जपका क्रम आध घण्टेतक जारी रखें तो निश्चय ही आपके भीतरसे क्रोधका भावोन्मूलन हो जायगा।

दूसरी बात यह है कि आप तुरन्त ही ठण्डा पानी लेकर हाथ-मुंह अच्छी तरह धो डालें और थोड़ा पानी पी भी लें। उस समय किसी महात्माकी मूर्तिका ध्यान करना भी अच्छा और कल्याणप्रद होता है।

तीसरा तरीका यह है कि आप तत्काल जोर-जोर से दीर्घ श्वास लेना प्रारम्भ कर दें। इससे भी क्रोध जाता रहता है।

किन्तु सर्वोत्तम तरकीब यह है कि शीर्षासन कर डाला जाय। यह जरूरी है कि प्रत्येक समय और स्थानपर शीर्षासन करना सरल और सम्भव नहीं है फिर भी यह अमोघ और सर्वोत्तम तरीका है।

एक और नियम है। जिस समय आपको क्रोध आये आप तत्काल ही अपने इष्ट मन्त्रका या यदि और कोई मन्त्र रुचिकर हो तो उसका ही जप आरम्भ कर दें। यदि आप आध घण्टेतक इस प्रकार मन्त्र जप करते रहेंगे तो निश्चय ही आपका क्रोध शान्त हो जायगा।

ऊपर क्रोधके शमनके कुछ नियम दिये गये हैं। यदि इनका अभ्यास किया जाय तो मनुष्य क्रोधके ऊपर विजय प्राप्त कर सकता है। एक और तरीका है। यह है तो कठिन किन्तु साथ ही अमोघ भी है। यह है क्रोध करने वालेके प्रति प्रेम और दयाका भाव रखना। जहां सभी उपाय असफल हो जाते हैं वहां प्रेम-मार्ग विजयी होता है। प्रेमसे बढ़कर संसारमें और कुछ भी नहीं है। प्रेमसे भगवान भी जीते जाते हैं। अतः आप यदि प्रेमका अवलम्बन करें तो निश्चय ही अपने विकटसे विकट शत्रुको भी विजित कर सकते हैं। उसको आप क्षणमात्र में अपना घनिष्ट मित्र बना सकते हैं। इस प्रकार आप अपने क्रोधका तो शमन कर ही लेंगे साथ ही अपने विरोधीके हृदयसे भी क्रोधका भाव दूर भगा सकेंगे। प्रेम ही संसारमें एक सारभूत पदार्थ है। प्रेममें अमित शक्ति सन्निहित रहती है। अतएव सबको ही इसका आश्रय लेना श्रेयस्कर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख और शांतिका साधन

श्री स्वामी कैवल्यानन्द

दो दशाब्दियोंके अनन्तर ही संसारमें पुनः भीषण, प्रलयङ्कर संग्राम छिड़ गया। अभी लोग पिछले युद्धके परिणाम स्वरूप उत्पन्न कठिनाइयों और परेशानियोंसे उन्मुक्त होकर सुखकी सांस भी नहीं ले पाये थे कि पुनः वही उत्पात, मारकाट और हाय-हाय। अमूल्य मानवशरीरका कोई मूल्य ही नहीं समझा गया। इनको भूखे भेड़ियोंके सम्मुख फेंका जाने लगी पिछले युद्धमें विश्वकी जो सांसारिक अथच आत्मिक क्षति हुई थी उसको लोगोंने विस्मृत कर दिया। बहुतसे लोग सोच रहे हैं कि एक भीषण संग्रामका सूत्रपताकर संसारकी उन सभी बुराइयोंको—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा इसी प्रकारकी अन्य सभी—इसमें भस्मीभूत कर दिया जाय जो मानव समाजके लिये अभिशाप हैं, जो मनुष्यको मनुष्य नहीं बने रहने देतीं तथा जो उसकी हर तरहकी उन्नतिके मार्गमें बाधास्वरूप हैं। इसका परिणाम यह होगा कि इन दोषोंके कारण विनष्ट हो जायंगे और संसारमें सुख और शान्तिका साम्राज्य छा जायगा। किन्तु वे भ्रममें हैं। उनको जानना चाहिये कि बुराईसे बुराई नहीं मिटायी जा सकती। वर्तमान युद्धके मूलमें वे सभी बातें हैं जो गत महायुद्धके मूलमें थीं। पिछले महायुद्धके बादसे यदि संसारकी कथमपि उन्नति हुई है तो यही कि इस बीच विज्ञानमें मनुष्य काफी आगे बढ़ गया है। किन्तु यदि कहा जाय कि यह उन्नति मनुष्यको महानाशकी ओर बढ़ानेमें सहारा देनेवाली हुई है तो अत्युक्ति न होगी। ऐसी दशामें संसार अभी भी शान्तिके अयोग्य है। यदि युद्धको ही शान्तिकी आधारशिला मान लिया जाय तो एक प्रसिद्ध चीनी दार्शनिकके शब्दोंमें कहा जा सकता है कि मनुष्यके लिये युद्ध स्वाभाविक है या शान्ति यह कह सकना कठिन है।

आजके आधिभौतिक युगमें जब कि सर्वत्र मशीनोंका जोर है मनुष्य अपनी नैसर्गिक प्रतिभा और बुद्धिका उपयोग अपने लाभके लिये न कर हानिके लिये कर रहा है। इसका प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं। जो आजके इस विश्वकी अवस्थापर ध्यान देगा वह स्वयं ही इस बातको समझ लेगा। दुनियामें आज शक्तिका अभाव नहीं, बुद्धिकी कमी नहीं, प्रतिभाकी न्यूनता नहीं और फिर भी जहां देखिये वहां तकलीफ। इसका कारण यही है कि इन सबका सदुपयोग नहीं हो रहा है। शक्ति और बुद्धिका अपव्यय हो रहा है। लोग अनावश्यक कार्योंमें लगकर अपनी शक्तिको क्षीण कर डालते हैं। आजकी इस दुरवस्था और विपत्तिका निवारण राजनीतिक एवं आर्थिक सुधारोंसे सम्भव नहीं है। चाहे आपका उद्देश्य कितना भी महान् हो किन्तु इस प्रकारके सुधारोंसे आप अपना एवं संसारका कोई भी कल्याण नहीं कर सकते। मानव समाजकी उन्नतिका आधार यदि किसी चीजको बनाया जा सकता है तो धार्मिक भावनाको। नैतिक दृष्टिकोण यदि सब चीजोंके प्रति रखा जाय तो इन दोषोंका बहुत कुछ शमन हो सकता है। यदि आज कल लोगोंके अन्दर धार्मिक और नैतिक भाव भरे जायं तो मानवताकी बहुत कुछ रक्षा की जा सकती है। यद्यपि यह कार्य आजकी परिस्थितिको देखते हुए कठिन प्रतीत हो रहा है तथापि इसके सिवाय और कुछ चारा भी नहीं है। अतएव संसारके कतिपय बुद्धिमान और प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको चाहिये कि मनुष्यके अन्दर छिपी हुई नैतिकताकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनाको जगायें और इससे संसारका कल्याण करें। नैतिकताका आधार लिये हुए जो सभ्यता रहेगी उसको ही असली सभ्यता कहेंगे। हमारा खयाल है कि यह युद्ध लोगोंकी आंखें खोलनेमें समर्थ होगा।

धार्मिक या नैतिक भावनाके प्रसंगमें यह आवश्यक हो जाता है कि इनकी स्पष्ट व्याख्या की जाय। धर्म क्या है, नैतिकता किसको कहते हैं आदि बातोंको बतलाना जरूरी है। यहांपर यह कह देना बहुत ही आवश्यक है कि धर्मकी परिभाषा बतलाना या इसकी व्याख्या करना बहुत कठिन कार्य है। आजकल तो यह कार्य और भी कठिन है, क्योंकि धर्म शब्दका अर्थ आज दिन बहुत ही ज्यादा विपर्यस्त हो गया है। अस्तु। कुछ लोगोंकी दृष्टिमें धर्म वह चीज है जो पुरातन काल से हमारे साथ लगी चली आ रही है और हमारी हर तरहकी उन्नतिमें बाधक है। कुछ लोग समझते हैं कि धर्म, जिसका मूलाधार सदाचार है, हमारे लिये परमावश्यक वस्तु है और हमारा जीवन अवश्य ही धार्मिक होना चाहिये। उनका कहना है कि यदि हमें दुनियामें किसी प्रकारकी भी उन्नति करनी है तो हमारे लिये सदाचारका पालन अनिवार्य है और जबतक हमारे आचरणमें धर्मकी पुट न रहेगी हमारा जीवन सदाचारी नहीं हो सकता।

धर्मके विवेचनमें हम यह देखते हैं, कि धर्म कार्य न होकर कारण स्वरूप होता है। धर्म व्यावहारिक वस्तु है, आचरणमें लानेकी चीज है। सर्वत्र ही धर्मके इस स्वरूपको ग्रहण किया गया है। ईश्वर और सत्यके सम्बन्धमें चाहे लोगोंके विचारोंमें कितना भी अन्तर क्यों न हो धर्मका जो रूप ऊपर बतलाया गया है उससे सभी सहमत होते हैं। अतः हमारे सभी अच्छे-अच्छे कार्य धार्मिक भावसे प्रेरित होते हैं। सद्विचारों से ही हमारे कार्य सद् हो सकते हैं यह प्रमाणित हो चुका और यह सद्विचार या उच्च भावना किसी सत्य, अविनाशी और अव्यय चीजके प्रति श्रद्धा एवं दृढ़ विश्वासके कारण होती है यह भी निश्चित हो चुका। यहां हम देखते हैं विश्वास ही—वह विश्वास चाहे किसी प्रकारकी चीजके प्रति हो—मुख्य वस्तु है। यदि हमारी भावना अच्छी हो और हमारे मनमें उसके प्रति दृढ़ विश्वास हो तो अवश्य ही हमारी इच्छा सद् होगी, इच्छा शक्ति बलवती होगी तथा कुविचार एवं कुभावनाएं हमारे अन्दर न उत्पन्न होंगी।

इच्छा और विश्वासका परस्पर साहचर्य है। जिसके अन्दर दृढ़ विश्वास होगा उसीकी इच्छा शक्ति बलवती होगी। दृढ़ इच्छाका होना ही सफलताके लिये आवश्यक है और यह इच्छा किसी चीजके लिये तभी हो सकती है जब हमारे अन्दर उस वस्तुके प्रति विश्वास हो, हम उसमें संशय या सन्देहसे परे हों।

विश्वासके अतिरिक्त दूसरी ध्यान दी जानेवाली चीज श्रद्धा है। श्रद्धाका भाव हमारे भीतर किञ्चिन्मात्र भी नहीं रह गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारा नैतिक और अध्यात्मिक पतन हो गया है।

उपर्युक्त दोनों बातोंके अभावमें मनुष्यके भीतर अपवित्रता आ जाती है और इनके भावमें पवित्रता। धार्मिक जीवनका अर्थ ही पवित्रता और सदाचारका जीवन है। जीवनमें पवित्रता लानेका जहां प्रश्न उपस्थित होगा वहां तुरन्त आध्यात्मिकताकी ओर ध्यान जायगा। हिन्दू और बौद्ध जिसको धर्म कहते हैं उसको ही इसाई दया, प्रेम और सहिष्णुता कहते हैं।

आजकल धर्मके नामपर बहुत कुछ पाखण्डका प्रचार हो गया है और धर्मकी ओटमें अनेक प्रकारकी बुराइयां फैल गयी हैं। किन्तु यहां उनका समर्थन नहीं किया गया है। हमारे कहनेका अर्थ यही है कि धर्मके उन मूल तत्वोंका, जिनका निर्देश ऊपर किया गया है, प्रचार होनेसे ही हमारा जीवन सुखमय हो सकता है और हम अपनी अभीप्सित वस्तु शान्तिको प्राप्त कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्थ रहनेकी विधि

श्री रामचन्द्र जोशी

हम सभी उन्नतिकी कामना करते हैं। इस लिये हमें यह अवश्य जान लेना चाहिये कि उन्नतिके लिये स्वास्थ्यरक्षा परमावश्यक है। इस बातको बहुत कम लोग समझते हैं कि स्वास्थ्यरक्षा और शरीर संयम भी मनुष्यके अत्यावश्यक कर्तव्य हैं। जब तक शरीर है तभी तक मनुष्य कुछ कर सकता है। लोग यह बात प्रायः कहा करते हैं कि हमारा शरीर है हम इसको चाहे जिस प्रकार रखें। प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करनेसे जो बाधा होती है उसे वे एक दैवी आपत्ति कहकर रह जाते हैं। यद्यपि इस शारीरिक व्यतिक्रम का कुफल भी कुटुम्ब और परिवारके लोगोंको उतना ही भोगना पड़ता है जितना और अपराधों का। पर इस प्रकारका व्यतिक्रम करनेवाला अपनेको कारण नहीं गिनता। स्वास्थ्यके नियमोंका उल्लंघन भी पाप है। जब शरीर अस्वस्थ रहता है तब चित्त भी ठीक नहीं रहता। प्रौढ़ बुद्धि और सूक्ष्म विवेकके लिये पुष्ट शरीर का होना जरूरी है। कहा है—शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्।

स्वास्थ्यके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि हमारे शरीरका जो प्रतिक्षण क्षय होता रहता है, उसकी यदि ठीक-ठीक पूर्ति होती रहे तो हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा। शरीरकी जो गरमी बराबर निकलती रहती है, उसके संयोजक द्रव्योंका जो क्षय होता रहता है उसकी कड़ी सूचना भूख और प्यासके वेग द्वारा बराबर मिलती है। बुद्धिमान मनुष्य उनकी सूचना पर ध्यान देकर उसी परिमाणमें कमीको पूरा कर देते हैं तथा संयमसे रहकर उनका क्षय भी कम होने देते हैं, अतः वे अधिक स्वस्थ रहते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो शरीरके भीतर जो क्षय होता है वह पोषणकी अपेक्षा अधिक होगा जिसका परिणाम है रोग और मृत्यु। इसी लिये समझदार आदमी भोजन और व्यायाम द्वारा अपनी इस कमीको पूरा किया करते हैं। संचारक अवयवोंको रसका ठीक-ठीक संचार करनेमें व्यायाम सहायता देता है तथा संचारक और मलवाहक अवयवोंकी क्रियाका उपक्रम भोजन करता है। स्वास्थ्य के लिये और भी बहुत सी बातोंका विचार रखना होता है। पर स्थूल रूपसे यह कहा जा सकता है कि यदि मनुष्य भोजन और व्यायामके विषयमें पूरी चौकसी रखे तो वह सदा चंगा रह सकता है। यह भी आवश्यक है कि मनुष्य सफाईसे रहे और कोई ऐसा व्यवसाय न करे जो स्वास्थ्यके लिये हानिकर हो।

भोजनके विषयमें पक्का सिद्धान्त यह है कि न बहुत अधिक खाया जाय न बहुत कम। अधिक खानेसे कभी कभी जितनी हानि हो जाती है उतनी कम खानेसे नहीं। आप यदि पक्वाशय या अंतड़ियोंपर इतना बोझ डालेंगे कि वे संभाल न सकें तो उनका काम बन्द हो जायगा। इस विषयका ध्यान हमेशा रखना चाहिये कि हम जीने के लिये खाते हैं, खानेके लिये नहीं जीते हैं। भोजन केवल उतना ही करना चाहिये जो शरीर रक्षाके लिये पर्याप्त हो। केवल स्वादेन्द्रियको तृप्त करनेके लिये खाते रहना बहुत ही बुरा है। शरीर पोषणके लिये यह अत्यावश्यक है कि हम जो कुछ खायँ वह कई प्रकारके द्रव्योंसे संयुक्त हो, जैसे—सत्त, चिकनाई, लसी और खनिज पदार्थ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्यके लिये जैसे यह आवश्यक है कि भोजन बहुत अधिक न किया जाय वैसे ही यह भी आवश्यक है कि कोई एक प्रकारकी ही वस्तु अधिक न खायी जाय। भोजन सदा मिला जुलाकर करना चाहिये। हमारे भोजनमें उन सभी द्रव्योंको आवश्यक मात्रामें पहुंचना चाहिये जो शरीर पोषणके लिये आवश्यक हैं। कोई पदार्थ बराबर भोजनका काम नहीं कर सकता जबतक कि उसमें शरीर-तन्तु बनानेवाला सत्त न हो। जिस पदार्थमें यह सत्त आवश्यक मात्रामें रहता है वही बराबर आहारके लिये उपयोगी हो सकता है। खनिज अंशका भी उसमें रहना बहुत जरूरी है। लसी व चिकनाईमेंसे यदि एक भी हो तो काम चल सकता है।

यद्यपि भोजनमें सत्तवाले पदार्थोंका उपयोग बहुत होता है पर उसका व्यय भी ज्यादा हो जाता है। एक स्वस्थ व्यक्तिको शरीरकी पूर्तिके लिये ४,०० ग्रेन कार्बन और ८०० ग्रेन नाइट्रोजन अपेक्षित है। सत्तवाले पदार्थोंमें साधारणतः ५३ भाग कारबन और १५ भाग नाइट्रोजन होता है जो आवश्यकसे चौगुना है। अतः ४००० ग्रेन कारबनके लिये मनुष्यको ७५०० ग्रेन सत्त खाना चाहिये। ७५०० ग्रेनमें ११०० ग्रेन नाइट्रोजन होता है जो आवश्यकतासे चौगुना है। इससे सत्त ही अधिक खानेसे मेदेपर बहुत जोर पड़ता है और आंतों को फालतू नाइट्रोजन निकालनेमें बड़ श्रम करना पड़ता है। स्निग्ध पदार्थोंमें तथा चीनी आदिमें कारबनका भाग बहुत अधिक होता है और नाइट्रोजन कुछ भी नहीं होता। भोजनके साथ घी, मक्खन आदि मिला लेनेसे सत्तकी बहुत कुछ जरूरत पूरी हो जाती है। भोजनमें कुछ चीनी आदिका रहना भी उपकारी है।

भोजनके विषयमें ठीक-ठीक कुछ नियम निर्धारित करना असम्भव है। प्रत्येक व्यक्तिको अपने निजी अनुभवके आधारपर यह देखना चाहिये कि उसको किस-किस वस्तुकी कितनी कितनी आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्तिकी प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। किसीको कुछ विकार करता है किसीको कुछ; एक ही चीज किसीके लिये हानिकर सिद्ध होती है किसीके लिये लाभकर। अतः प्रत्येक मनुष्य यह अपने आप निर्णय कर सकता है कि उसे कौन-सी चीज अनुकूल सिद्ध होती है कौन-सी चीज प्रतिकूल। यह सबको ध्यान रखना चाहिये कि भोजन भिन्न-भिन्न प्रकारका हो और खानेमें संयम रखा जाय। दूसरी बात यह है कि दो भोजनोंके बीचमें यथेष्ट अन्तर होना चाहिये। ऐसा न होनेसे पहलेके भोजनको पचनेका अवसर न मिलेगा और परिणाम बुरा होगा। यदि प्रातःकाल कोई जलपान करे तो उसे दस बजेके पूर्व भोजन नहीं करना चाहिये। इसी तरह यदि सायङ्काल भी जलपान किया जाय तो फिर रातको नव बजेके पूर्व भोजन करना ठीक नहीं। व्यायामके अनन्तर तुरन्त ही भोजन करना बहुत ही घातक है। खाने-पीने की चीजें सदा ताजी व अच्छी हों। भोजन अच्छी तरह पका रहना चाहिये। कच्चा भोजन हानिकर होता है। अनाजके साथ शाक-भाजी यथेष्ट मात्रामें खाना चाहिये। दूध इस तरह पीनेके बजाय यदि भोजनके साथ खाया जाय तो अधिक अच्छा है। जाड़ेमें स्निग्ध पदार्थोंको कुछ बढ़ा देना चाहिये तथा गरमीमें कम कर देना चाहिये। जबतक भूख खुलके न लगे भोजन कभी नहीं करना चाहिये। भोजनका उतना ही अंश उपकारी होता है जितना पचता है। शेषांश हानि छोड़कर लाभ नहीं करता। बहुत लोग ऐसा समझनेकी भूल कर बैठते हैं कि जितना ही खाया जाय उतना ही अच्छा है। इसका परिणाम यह होता है कि वे सदा ही कुछ न कुछ पेटमें डालनेकी चिन्तामें रहते हैं और अन्तमें अपनी पाचन शक्तिको बिगाड़ कर मन्दाग्नि और संग्रहणी आदि कई रोगोंके शिकार हो जाते हैं।

भोजनके बाद व्यायामका विषय आता है। शरीर और चित्तकी स्वस्थता, मनकी स्फूर्ति और उमंग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिकी तीव्रता और मननशक्तिकी सूक्ष्मता इन सबकी रक्षा नियमित व्यायामसे ही हो सकती है। व्यायाम भी हमारी शिक्षाका अंग है। जैसे खाने और सोनेके बगैर हमारा काम नहीं चल सकता, वैसे ही व्यायामके बिना भी नहीं चल सकता। व्यायामके ही द्वारा हम अङ्गों, अवयवों और नाड़ियोंकी शक्तिको स्थिर रख सकते हैं। इसके ही द्वारा हम अपने शरीरके प्रत्येक भागमें रक्तका संचार समान रूपसे कर सकते हैं, क्योंकि व्यायामसे पेशियोंका दबाव रक्तवाहिनी नाड़ियों पर पड़ता है जिससे रक्तका संचार तीव्र होता है। व्यायाम ही के सहारे जीवन सुखमय प्रतीत हो सकता है क्योंकि व्यायामसे पाचनमें सहायता मिलती है और पाचन ठीक होनेसे उदासी नहीं रह सकती। व्यायाम ही के प्रभावसे मस्तिष्क अपना काम ठीक-ठीक कर सकता है। संसारमें जितने प्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं सबने व्यायामका कोई न कोई ढंग निकाल रखा था। गोस्वामी तुलसीदास नित्य टहलने जाया करते थे, भूषणको घोड़ेपर चढ़नेका बड़ा शौक था। इसी प्रकार महात्मा गान्धी चाहे कुछ भी हो टहलना नहीं छोड़ते।

जबतक मनुष्य आनन्ददायक और नियमित व्यायाम द्वारा अपनेको स्वस्थ नहीं कर लेता तब तक न तो उसका मस्तिष्क ही ठीक रह सकता है और न वह ठीक-ठीक विचार या निर्णय ही कर सकता है। व्यायामके सम्बन्धमें जो समयाभावकी शिकायत करता है वह महामूर्ख है; वह अपने पैरोंमें आप कुल्हाड़ी मारता है।

व्यायाम किस प्रकारका अथवा कितना किया जाय इसमें भी किसीका अनुकरण या उपदेश लेनेके बजाय उचित यही है कि देश-काल-परिस्थितिका विचार कर जो प्रणाली अपनी प्रकृतिके अनुकूल हो वही ग्रहण करे। सबसे अच्छा और सरल व्यायाम टहलना है। परन्तु उसमें भी यह निर्देश करना कठिन है कि कौन कितना टहला करे। ध्यान इस बातका रखना चाहिये कि कोई भी नियम एकबारगी न प्रारम्भ कर धीरे-धीरे उसका अभ्यास करना चाहिये अन्यथा हानिकी सम्भावना रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी संसारमें हलचल पैदा कर देनेवाला

'जीवन सखा' का 'व्यायाम अंक'

१ जनवरी सन् १९४२ को प्रकाशित होगा

'जीवन-सखा' के छठें वर्षमें प्रवेश करनेके अवसर पर आगामी जनवरीमें इसका 'व्यायाम अङ्क' निकलने जा रहा है, जो प्राकृतिक साधनों द्वारा स्वास्थ्य लाभ करनेके इच्छुक हिन्दी प्रेमियोंके लिये स्वास्थ्य विषयक एक अभूतपूर्व ग्रन्थ होगा।

इसमें क्या रहेगा।

१ फेफड़े और मांसपेशियोंपर व्यायामका प्रभाव
२ हृदय पर व्यायामका प्रभाव।
३ जर्मन व्यायाम प्रणाली।
४ स्वीडिश व्यायाम प्रणाली।
५ फ्रांसीसी व्यायाम प्रणाली।
६ जापानी व्यायाम प्रणाली।
७ हिन्दुस्तानी व्यायाम पद्धति।
८ युवक और युवतियोंके लिये व्यायाम।
९ पेटकी कमजोरी और आंत उतरनेका इलाज।
१० व्यायाम बीमारियोंके लिये।
११ मालिश।
१२ कब्जकी मालिश।
१३ श्वास रोगका इलाज।
१४ रक्त संस्थानकी बीमारियोंका इलाज।
१५ मोटापा, इसके कारण और इलाज।
१६ नाड़ी दौर्बल्य और दर्दमें व्यायाम चिकित्सा।
१७ फालिजका इलाज।
१८ भोजन और व्यायाम।
१९ आंखोंके लिए व्यायाम।
२० सूर्य नमस्कार।
२१ योग व्यायाम।
२२ अन्दरूनी सफाईके लिए यौगिक क्रियाएं।
२३ हिन्दुस्तानके व्यायाम केन्द्रोंका सिंहावलोकन
२४ व्यायामके समय शरीरकी आन्तरिक अवस्था
२५ व्यायामके लिए अवस्था, व्यवसाय तथा स्त्री पुरुषका विचार।
२६ खेलाड़ियों (Sportsman) का व्यायाम।
२७ स्कूलोंकी व्यायाम पद्धति।
२८ कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें व्यायाम।
२९ लड़कियोंके स्कूलों और कालेजोंमें व्यायाम।
३० कन्धोंकी विषमताका कारण और इलाज।
३१ हकलाना और गलेका इलाज।
३२ व्यायाम और विश्राम।
३३ शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गका व्यायाम।
३४ हिन्दुस्तानी व्यायाम प्रवर्तकोंकी जीवनी और उनके कार्य।
३५ हिन्दुस्तानके प्रान्तोंमें व्यायाम।
३६ शरीर पर व्यायामका प्रभाव।
३७ देशमें व्यायाम प्रसारकी आवश्यकता।

अनेकानेक चित्रोंसे सुसज्जित इस विशेषांकका मूल्य १) होगा

किन्तु 'जीवन-सखा' के सभी नये व पुराने ग्राहकोंको मुफ्त मिलेगा। इसलिये यदिआप अब तक 'जीवन सखा' के ग्राहक न बने हों, तो शीघ्र बनकर इसे प्राप्त करें, अथवा **१५ दिसम्बरके पूर्व ही १) अग्रिम भेजकर विशेषांक की कापी अपने लिये रिजर्व कर सकते हैं।** युद्धके कारण जो अनिवार्य कठिनाइयां उत्पन्न हो गयी हैं उनकी वजहसे यह विशेषांक सीमित संख्यामें प्रकाशित होगा। इसलिये १५ दिसम्बरके पूर्व ही जिन्होंने केवल विशेषांककी प्रतिके लिये आवेदन नहीं किया, उन्हें फिर बादमें अंकमें प्राप्त नहीं हो सकेगा। अतः शीघ्रता कीजिये, अन्यथा निराश होना पड़ेगा।

मैनेजर—**'जीवन सखा'** ८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यका स्वाभाविक आहार

श्री श्यामकृष्ण कपूर बी० एस०, सी०

मनुष्यका स्वाभाविक भोजन फल, फूल और कन्द आदि है। इस बातको हम, यहां पर सप्रमाण सिद्ध करना चाहते हैं, क्योंकि स्वाभाविक भोजनके छोड़ने ही से हम लोग विविध भांतिके रोगोंसे पीड़ित हो रहे हैं। अभ्याससे मनुष्योंने अपनी इन्द्रियोंकी स्वाभाविक शक्तिको ऐसा बिगाड़ डाला है कि जिस वस्तुको देख कर हमें घृणा होनी चाहिये उसे ही हम प्रसन्नता पूर्वक खाते हैं। इस विषयमें पशु भी हमसे अच्छे हैं। जो पशु घास खाते हैं वे मांसकी ओर देखते तक नहीं, और जो मांस खाते हैं वे घासकी ओर दृक्पात नहीं करते। इसी प्रकार फल और कन्द आदिके खानेवाले जीव उन पदार्थोंको छोड़कर घासपात नहीं खाते। प्यास लगने पर भी पशु 'सोडावाटर' और मद्य नहीं पीते। परन्तु मनुष्य एक विलक्षण पशु है। वह घास-पात, फल-फूल, मांस-मदिरा सभी उदरस्थ कर जाता है। फिर, भला, उसका शरीर क्यों न रोगोंका घर हो जाय ?

भोजनके अनुसार थल-चर पशुओंके तीन भेद हैं। मांस भक्षी, वनस्पति-भक्षी और फल-भक्षी। बिल्ली, कुत्ते और सिंह आदि जितने हिंस्र जीव हैं सब मांस-भक्षी हैं। उनका स्वाभाविक भोजन मांस ही है। इस-लिये उनके दांत लम्बे, नुकीले और दूर-दूर होते हैं। इस प्रकारके दांतोंसे ये विविध जीवोंका मांस फाड़ कर निगल जाते हैं। उनके दांतोंकी रचनासे यह स्पष्ट सूचित होता है कि ईश्वरने उन्हें मांस खानेके लिये ही वैसे दांत दिये हैं। गाय, बैल, घोड़ा, बकरी इत्यादि जीव घास-भक्षी हैं। इसलिये ईश्वरने उनके दांत ऐसे ही बनाये हैं जिनसे घास आदि खानेका कान लिया जा सके। उनके दांतोंकी रचना ही उनके घास-भक्षी होनेका प्रमाण है।

मनुष्यके दांत न तो मांस-भक्षी पशुओंसे मिलते हैं और न घास-भक्षी पशुओंसे ही। उनकी बनावट ठीक वैसी ही है जैसी बन्दर आदि फल-भक्षी जीवोंके दांतों की होती है। अतएव यह बात निर्विवाद है, निर्भ्रान्त है, निःसंशय है कि ईश्वरने मनुष्यके दांत फल ही खाने के लिये बनाये हैं। परन्तु हम लोग अब उनसे मांस और मछली काटने लगे हैं, बिस्कुट चबाने लगे हैं तथा और भी बहुत-सी ऐसी चीजें खाने लगे हैं जो मनुष्यका भोजन नहीं कही जा सकतीं। इस पर भी यदि कोई नीरोग होनेका दावा करे तो उसकी मूर्खता है ?

मांस-भक्षी जीवोंका मेदा छोटा और गोल होता है। उनके शरीरसे उनकी अंतड़ियां ३ से लेकर ५ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। वनस्पति-भक्षी पशुओंका मेदा बहुत बड़ा होता है; वे खाते भी अधिक हैं। उनकी अंतड़ियां उनके शरीरसे २० से लेकर २८ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। अब रहे फल-भक्षी जीव। उनका मेदा मांस-भक्षी जीवोंके मेदेसे अधिक चौड़ा होता है; और उनकी अंतड़ियां उनके शरीरसे १० से लेकर १२ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। अब इन तीनों प्रकारके जीवोंसे मनुष्यका मिलान कीजिये। सिरसे लेकर रीढ़की हड्डीके छोर तक मनुष्य की लम्बाई १॥ से २॥ फुट तक होती है और मनुष्य की अँतड़ियोंकी लम्बाई १६ से लेकर २८ फुट तक होती है। अर्थात् उनकी लम्बाई शरीर (सिरसे लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीढ़के छोर तक) की लम्बाईसे १०-१२ गुना अधिक हुई। यहां भी फल-भक्षी पशुओंसे मनुष्यकी समता हुई। शरीरके अनुसार मनुष्यकी अंतड़ियां फल खानेवाले पशुओंकी-सी ही निकलीं। अतएव मनुष्यके फल-भक्षी होनेका यह दूसरा प्रमाण हुआ।

जिस वस्तुको उसकी स्वाभाविक दशामें, देख कर खानेको जी चाहे वही मनुष्यके खाने योग्य है।

जो वस्तु स्वभावसे जैसी है उसे वैसे ही खानेसे वह शीघ्र पच जाती है और शरीरमें बल बढ़ाती है। परन्तु हजारों वर्षसे हम लोग अस्वाभाविक भोजन कर रहे हैं, अतएव कच्चे अन्नको उसके स्वाभाविक रूपमें हम नहीं चबा सकते क्योंकि हमारे दांत और हमारा मेदा अशक्त हो गया है। इसलिये जबतक वे बलवान न हो जायं तबतक अन्नको नरम करके खाना चाहिये। उत्तम यह होगा कि मनुष्य चोकर समेत—बिना छाने हुए—आटेकी रोटी खाय। चोकरमें एक विशेष प्रकार की पाचक-शक्ति है। अतएव यह न समझना चाहिये कि उससे कोई लाभ नहीं होता। पेटमें जाकर चाहे उसका रूप न बदले और चाहे वह अपने पहले ही रूपमें बाहर आ जाय, तथापि उसका खाना निष्फल नहीं होता। पेटमें पहुंच कर वह अपना काम किये बिना रहता ही नहीं।

जैसा ऊपर कहा गया मनुष्य फल-भक्षी है। खेत, बाग और जङ्गलमें होनेवाले फल, कन्द आदि मनुष्यका स्वाभाविक भोजन है। इन पदार्थोंमें से, जिनको देखने, सूंघने अथवा स्वाद लेनेसे, घृणा हो, जी मचलाने लगे, दुर्गन्धि आये अथवा कड़ुवे लगें, उनको न खाना चाहिये। कन्द अर्थात् जड़की अपेक्षा फल खाना अधिक लाभदायक है। कन्द कभी-कभी खाना चाहिये। चौराई, पालक, मेथी आदि साग मनुष्यके लिये उपयोगी नहीं, उनको वनस्पति-भक्षी जीवोंके लिये छोड़ देना चाहिए।* जो पदार्थ अपने स्वाभाविक रूपमें खाये जानेसे अच्छे लगते हैं, अथवा जिनको, स्वाभाविक रूपमें देखकर खानेको जी चाहता है, वे शीघ्र पच जाते हैं, और वे ही सबसे अधिक बलवर्द्धक होते हैं। जिनको कूटना, पीसना, उबालना, भूनना, मसाला या नमक लगाना, और तेल या सिरकेमें डालना पड़ता है, उनकी पाचकता जाती रहती है अतएव स्वाभाविक पदार्थोंकी अपेक्षा वे कम बल-वर्द्धक होते हैं। जिन पदार्थोंको उनके स्वाभाविक रूपमें देख कर घृणा हो अथवा जी मचलाने लगे वे, तलने, भुनने और मसाला लगाने पर चाहे जितने स्वादिष्ट क्यों न लगे, हानि ही करेंगे, क्योंकि वे मनुष्यके खानेके लिये बनाये ही नहीं गये हैं।

* यहां लेखकसे हम सहमत नहीं हैं। प्रायः सभी प्रकारके हरे शाक अधिक विटामिनवाले और रक्तशोधक तथा रक्तवर्द्धक होते हैं। अतएव उनको तो अवश्य ही हमें खाना चाहिये। फल और दूधके बाद हरे शाकोंका ही नम्बर आता है। अन्नसे तो वे निश्चय ही काफी अच्छे हैं। अन्य प्रकारकी तरकारियोंकी अपेक्षा भी हरे शाक अधिक गुणकारक हैं।

—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य या पशु ?

पं० ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्यभूषण, अमृतधारा, लाहौर ।

[पिछले अङ्कमें विद्वान् लेखकने स्वास्थ्यके कतिपय सर्वोपयोगी और सर्वजन-सुलभ नियमोंका निर्देश किया था। तदुपरान्त लेखकने यह बतलाया था कि स्वास्थ्यके मूल—आहार—में लोग किस प्रकार कुछ ऐसे पदार्थ सम्मिलित कर लेते हैं जो उसके स्वास्थ्यके शत्रु तो है हीं साथ ही ऐसे हैं जिन्हें पशु भी नहीं ग्रहण करते। ऐसे ही पदार्थोंमें बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, शराब, अफीम, चरस आदि हैं। तम्बाकू आदिकी बुराइयोंपर गतांकमें प्रकाश डाला गया था। इस अङ्कमें अन्य कई चीजोंके वर्णन किये गये हैं और बतलाया गया है कि उनके सेवनसे व्यक्ति, समाज तथा देशकी किस प्रकार हानि हो रही है। हम अपने पाठकोंसे इन लेखोंको ध्यानपूर्वक पढ़नेका, उनपर मनन करनेका और फिर उनसे लाभ उठानेका अनुरोध करते हैं। सम्पादक]

सुरापान अंगरेज़ीमें एक उक्ति है—जहां शैतान स्वयं नहीं जा सकता वहां शराबको भेज देता है। कितने ही पाश्चात्य डाक्टरोंकी यह निश्चित सम्मति है कि मद्यसे पाप की इच्छा बढ़ती है।

कहावत है कि एक साधु एक उद्यानको देखना चाहता था। वह एक द्वारपर गया तो द्वारपालने कहा कि सुरापान करके भीतर जानेकी आज्ञा है। उसने इसको पाप समझा और दूसरे द्वारपर गया। वहांके द्वारपालने कहा कि जो जुआ खेले उसे भीतर जानेकी आज्ञा है। साधुता कब आज्ञा देती है कि वह ऐसा करे। वह तीसरे द्वारपर गया, वहां उसको उद्यान देखनेके अतिरिक्त उपहार देनेका भी यदि लालच दिया गया यदि वह अमुक व्यक्तिको मारे। इस घोर अपराधका दोषी होकर वह बधक कहा जाना पसन्द नहीं कर सकता था। आगे बढ़ा तो चौथे द्वारपर और ही गुल खिला था वहां एक वेश्या रहती थी। द्वारपालने बताया कि इसके पास जाये बिना कोई नहीं जा सकता। साधु अब सोचने लगा और अन्तमें यह निश्चय किया कि शराब एक साधारण अर्क है। उसके पीनेमें कोई विशेष दोष नहीं ज्ञात होता। केवल थोड़ी देर नशा आ जायेगी। वह फिर वहां गया और उसने एक प्याला शराब पी ली। कहते हैं उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और साधुता दूर हो गयी। उसे जुआ भी खेलाया गया, वेश्या-गमन भी करया गया और शत्रुको भी मरवाया गया। सुरापान शैतानका एजेन्ट इसीलिये लिखा गया है। जिसके भीतर बुद्धि ही नहीं है उसे पापोंसे भय ही क्या हो सकता है। सुरा पीनेके लिये झूठ बोलना, किसीको धोखा देना, छल डालना, व्यभिचार करना, किसीकी बहू बेटीपर कुदृष्टि करना और नशेमें अपनी मां, बहिन सबको कुदृष्टिसे देखना और कभी-कभी बलात्कारसे मुंह काला करना कोई बड़ी बातें नहीं हैं।

डाक्टरोंने अपने अनुभवसे सिद्ध किया है कि सुरापीके मस्तिष्कमें एक प्रकारकी घबराहट हो जाती है और उससे वह अपराधोंकी ओर खिंच जाता है। डाक्टरोंकी सम्मति है कि सुरा आमाशय, प्रकृति, तिल्ली, अंतड़ियों, हृदय और फेफड़ों सबपर बुरा प्रभाव करती है। गुर्दों पर भी इसका कुप्रभाव पड़ता है। इसकी नालियां सुरापानसे भर जाती हैं और रुधिरकी गति बहुत मन्द हो जाती है जिससे ब्लड प्रेशर बढ़ता है। सुरा पीनेवाले मनुष्योंकी संतति प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी आयु पाती है और दुर्बल तथा रोग ग्रस्त रहती है। जो बड़े सुरापी होते हैं उनकी संतति बन्दीघर, विक्षिप्तालय, (पागलखाना). अथवा आतुरालय (अस्पताल) में प्राण देकर अपने वंशको समाप्त करती है। एक डाक्टरकी उक्ति है कि उसने ३२० पागलोंके वृत्तान्त ज्ञात किये तो उनमेंसे १४८ सुरा पीनेवालोंकी सन्तति थे।

जिस भांति तम्बाकूसे सुस्ती और खिन्नता उत्पन्न होती है उसी तरह सुरापानसे अभिमान तथा निरपेक्षाके विचार उपजते हैं जो अपमान आदिके कारण होते हैं।

अफीम—भारतमें आत्महत्याएं प्रायः अफीम हीसे होती हैं। अफीमके अभावमें अधिकतर इसके आदी संखियाका सेवन करते हैं। भारतमें जितनी मौतें विषसे होती हैं उनमेंसे ४० प्रति शतक अफीमसे ही होती हैं। बच्चोंकी मौतें बेसमझीमें हो जाती हैं। स्त्रियां सुलानेके लिये उनको प्रतिदिन अफीम देती हैं। कमी अधिक दी जाय अथवा दो बार दी जाय अथवा एक स्त्री पहले देकर जाय और फिर दूसरी दे दे तो मृत्यु हो जाती है। इसे घोलकर पीकर प्रायः आत्महत्या करते हैं। कई बार बच्चे अफीमकी डिबिया उठाकर उसमेंसे थोड़ी खाकर मर जाते हैं। बालहत्याके लिये भी भारतमें अफीम सेवन की जाती है। विलायतमें विशुद्ध अफीमके स्थान में अफीमका टिंक्चर, जिसे 'लाडीनम' कहते हैं, बरतते हैं। एक व्यक्तिके उदरपर पोलटिस, जिसमें एक औंस लाडीनम भी बांधी। उसका विष चढ़ गया और मृत्यु हो गयी। घावपर मरफिया लगानेसे भी मौतें हुई हैं। मरफ़ियाकी पिचकारी त्वचाके नीचे करनेसे भी मृत्यु हो जाती है। अफीममें ६ प्रति शतक मारफ़िया (अफीम का सत) घोर विष होता है और कोडा या नारकोटिन, नारसिन, मीकोनीन, मीकोनिस ऐसिड आदि और बहुतसे अंश भी पाये जाते हैं। परन्तु बड़े अंशी जिनके होनेसे ही अफीमकी विद्यमानता समझी जाती है मरफ़िया और मीकोनीन ऐसिड हैं।

अफीम खानेकी प्रथा सबसे अधिक चीन देशमें है। और यही उनके शताब्दियों पीछे पड़े रहनेका कारण है। अब कुछ समयसे वहां भी अफीमका विरोध हो रहा है और रिवाज घटता जाता है। कई लोग आगे कदम भी रखने लगे हैं। भारतमें भी इसने थोड़ा नशा नहीं किया।

अफीमका सेवन भारतमें कई प्रकारसे होता है। कोई काढ़ा, कोई चन्डू, कोई मदक आदि पीते हैं। राजस्थानमें कदाचित् इसका चीनसे बढ़कर प्रचार है। हैरानी है कि विषका इस तरह प्रचार है और बिना चिकित्सककी सम्मतिके लोग यह व्यसन लगा लेते हैं। सब चिकित्सक इससे सहमत हैं कि अफीमके सेवनसे शरीर दुर्बल हो जाता है, भोजन घट जाता है। आक्षेपक आदि रोग उत्पन्न होते हैं, पाचनशक्ति तथा विचारशक्ति और उच्च आन्तरिक शक्तियोंका ह्रास हो जाता है। दृग्शक्ति, धारणाशक्ति, श्रवणशक्ति तथा स्पर्श शक्तिमें न्यूनता हो जाती है। अफीमची छोटी-सी बातसे ही भयभीत हो जाता है। आमाशय, यकृत, मस्तिष्क, तथा हृदयमें निर्बलता आ जाती है, कोष्टबद्धता तथा पाचनशक्तिकी न्यूनता रहने लगती है, शूल, मूत्रकृच्छ, मस्तिष्ककी शुष्कता, नासिकाकी शुष्कताके रोग सताते हैं। स्वर विकृत हो जाता है, राईका पहाड़ बनता है, कृपणता उत्पन्न हो जाती है। और सन्तति थोड़ी उत्पन्न होती है। आदमियोंमें बैठनेसे घृणा होती है, देरतक नींद नहीं आती, बाह्य तथा आभ्यन्तरीय इन्द्रियां मलिन हो जाती हैं। मनुष्य विक्षिप्त तथा उतावला हो जाता है।

भांग—इसका भी कई प्रकारसे सेवन करते हैं। कोई घोंटकर लवण वा सिता (मिश्री) डालकर पीते हैं कोई [illegible] तथा इलायची आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ डालकर घोंटते हैं और इसको सरदाई वा ठण्ढाई कहते हैं। जितनी अधिक घोंटी जाती है इतनी नशा बढ़ती जाती है। कोई इसकी शुष्कता दूर करनेके लिये पानीके स्थानमें दूध मिलाते हैं। सदाके अनुरागी ऋतुके परिवर्तनके साथ सेवनमें भी परिवर्तन करते रहते हैं। यथा वर्षा ऋतुमें अजवायन, खुरासानी, सरदीमें बड़ी इलायची मिलाते हैं। कुछ लोग भांगको जलमें भिगोकर हाथसे मलकर सुखाकर घीमें भूनकर तिलोंके साथ कूट-कर खाते हैं। भांग पीसकर दूधमें घोलकर और छानकर दूधका खोया करके इसमें चाशनी मिलाकर पेड़े वा बरफी बनाते हैं और यह माजूम (पाक) के नामसे बाजारोंमें मिलती है। कोई-कोई भांग लेकर साफ करके कुछ जल और घीको आगपर चढ़ाकर थोड़ा सा जल रहने तक उतार छानकर रख देते हैं और फिर घीको अलग कर लेते हैं और जल फेंक देते हैं; इस घीमें खांड़-की चाशनी मिलाकर बरफीकी तरह काट लेते हैं।

चाहे किसी भांति इसका सेवन किया जाय इसका सेवन स्वास्थ्यके लिये हानिकर और भयङ्कर है ही क्योंकि यह अफीमकी भांति नारकोनिक है। इसका पहला प्रभाव उत्तेजक होता है। मनुष्य भला फुरतीला दिखायी देता है। वाजीकरण शक्ति भी अधिक प्रतीत होती है। भिन्न-भिन्न विचार उत्पन्न होते हैं। कई वस्तुओंकी भ्रान्ति हो जाती है। यों ही शब्द सुनायी देते हैं। कोई हंसने लगता है, कोई कूदता नाचता है, कोई गाता है। कोई दौड़ने लग जाता है, आमाशय भी तीव्र भूख प्रकट करता है। होश ठिकाने नहीं रहता, अन्तमें यह उत्तेजक प्रभाव समाप्त होकर सुस्ती करनेवाला प्रभाव आरम्भ होता है। उद्वेग तथा आवेश दूर हो जाता है, शिथिलता तथा ऊंघ आती है, प्रायः आपने यह देखा होगा कि भङ्गी तीसरे पहरको भङ्ग पीकर राततक भली-भांति फुरतीले रहते हैं फिर सुस्ती आती है और अचेत पड़ जाते हैं। हकीमोंकी प्रकृति भी कुछ ऐसी ही है। वह लिखते हैं कि भांगके पत्तोंमें दो भाग होते हैं। एक उष्ण और सूक्ष्म जिससे आमोद-प्रमोद, कल्पना-शक्ति, नशा, विचार-शक्तिमें तीव्रता, मुखपर तेज, भूख, प्यास, पुंसत्व आदिकी अधिकता होती है। दूसरा भाग शीत तथा स्थूल होता है,इससे सुस्ती तथा शिथि-लता होती है, मुखपर मलिनता इन्द्रियोंकी क्रिया मन्द और मानसिक शक्तियां तमपूर्ण होती है; मस्तिष्क तथा शिरमें पीड़ा और आमाशयकी विकृति होती है। यदि बहुत अधिक खायी हुई हो तो यह सुस्ती बढ़ती है जिससे अफीमकेसे लक्षण प्रकट होते हैं और मनुष्य पर-लोकको सिधारता है।

कहांतक लिखा जाय मनुष्यने अपने आहारमें इन व्यर्थकी वस्तुओंको मिलाकर अपने स्वास्थ्य तथा श्रेय मार्गमें कांटे बोये हैं, जिसका फल उसकी सन्ततिको शायद प्रलय कालतक मिलता रहेगा।

कोकीन - भारतीय कैसे हतभाग्य हैं कि आये दिन इनपर नयी नयी विपत्तियां आती रहती हैं। यह इतने गिर गये हैं कि बुराईको शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। कोकीनका प्रयोग मादक द्रव्यके रूपमें इतना बढ़ता जाता है कि देखकर रुलाई आती है।

परन्तु यह अच्छा है कि राज्यने सर्वसाधारणको इसके बेचनेको विशेष करके बहुत फैलनेको रोक दिया। कोकीन घोर विष है। एक रत्ती एक मनुष्यको मार सकती है। दांतोंके सर्जन दांतको उखाड़ते समय इसका पतला सा घोल तनिक लगाते हैं और दम घुटने लगता है। यह अत्यन्त शिथिलकारक है। इसका सेवन करने वाले कहते हैं कि इससे पानका मजा बढ़ जाता है और अफीमसे बढ़कर काम करती है। आंध रत्तीसे ऊपर कोकीन यदि त्वचामें पहुंचा दी जाय तो मनुष्यके ऊपर तुरन्त प्रभाव उत्पन्न करती है।

१८९६ ई० में मैंने किसी समाचार पत्रमें पढ़ा था कि सहारनपुरके रसिक लोग कोकीन बहुत खाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९०० ई० में मैं सहारनपुर गया और यह जानना चाहा कि कोकीन क्या है और क्यों खाते हैं? क्या इससे लाभ भी होता है ? मैं सैय्यद मुहम्मद हुसैन साहबसे जो कि इसको सहारनपुरमें प्रचलित करनेवाले थे, मिला। पूछनेसे पता लगा कि सुस्वादु और स्तंभक होनेके अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं होता। उन्होंने बहुत बलपूर्वक कहा कि इससे कोई हानि नहीं होती। डाक्टरों से पता लगा कि यह एक प्रकारका विष है। इसे बहुत थोड़े लोग खाते हैं। १९०३ ई० तक बहुतसे लोग प्रत्युत सैकड़ों कोकीनपर मोहित हो चुके थे और इसका सेवन दिन-दिन बढ़ता जाता था। यहांतक कि १९०५ ई० में यह इतनी उन्नति कर गयी थी कि कोई गणना यथार्थ रूपसे करता तो मनुष्योंमें प्रतिशत ८० कोकीनके खानेवाले थे।

१९०५ में एक मित्रके यहां मेरा निमन्त्रण था। वहां जानेपर पता लगा कि यहां नृत्य तथा संगीतका उत्सव भी है। वहां मेरे और भी बहुतसे मित्र उत्सवमें सम्मिलित थे। खाना खानेके पश्चात् गाना आरम्भ हुआ तो सभी लोग कोकीन खाने लगे। बहुतसे मित्रों-के कहनेसे मैंने भी उस दिन इसका सेवन किया और स्वादिष्ट वस्तु होनेसे मैं इसे प्रतिदिन खाने लगा। परन्तु कोकीनके सेवनने मुझे एक मासमें ही यह बतला दिया कि यह नवयुवक तथा बड़ीसे बड़ी काम-शक्ति रखनेवालेको भी पुंसत्व-शक्तिसे वञ्चित कर देती है क्योंकि सेवनकालमें तीन मास तक नितान्त इस ओर रुचि नहीं हुई। शान्तिमें सोचने और विचार करनेपर विदित हुआ कि यह कोकीनके सेवनका परिणाम है।

यह सिद्ध होनेपर मैंने इसका सेवन छोड़ दिया और एक चिकित्सकसे अपनी चिकित्सा करायी। एक मास लगातार औषधि खाने मुझमें पहले जैसी शक्ति उत्पन्न हो सकी। मैंने परम प्रभुका धन्यवाद किया, और इस निश्चेष्टकारिणी,धिक्कृत कोकीनका परित्याग कर दिया।

कोकीनका सेवन देहरादून, देहली, रुड़की तथा अम्बाला आदिमें सहारनपुरके अनुरागियोंका फैलाया हुआ है। और सहारनपुरके प्रान्तों, क़सबों और तहसीलोंमें इसका सर्वसाधारणमें प्रचार हो गया है।

चरस तथा गांजा—चरस और गांजा भी भांगकी भांति हानिकारक हैं। परन्तु शीघ्रतर प्रभाव करते हैं। भांगके मुक़ाबलेमें इससे और बहुत सी हानियां होती हैं। क्या कोई व्यक्ति बतला सकता है कि चरस पीनेवाला हट्टा-कट्टा और रक्त-मुख देखा गया है ?

गांजा हुक्केकी भांति पिया जाता है और चरस एक लम्बी चिलममें रखकर ऊपर कोयले रखकर जोर-से सूंटे लगाते हैं, सूंटेकी विशेषता यह है कि चिलमपर आग जलने लगती है।

ज्यों ही दम लगाया घंटों ठूं-ठूं आरम्भ हुई। पीनेवालेके मुखसे बड़ी दुर्गन्धि आती है। इसके धुएंसे प्रत्यक्ष दुर्गन्धि फैलती है। न पीनेवाला चरसीके स्थानसे दस पग इधर ही दुर्गन्धिसे व्याकुल हो जाता है। चारों ओर कफके ढेर लगे होते हैं। खांसी, दमा, और मुंहपर उदासीनता और शिथिलता इसके आवश्यक अङ्ग है। चरस पीनेवाले निर्धन ही रहते हैं और संसारमें कभी नाम नहीं पाते। वह इसमें घुल-घुल कर मर जाते हैं। गांजा भी चरसका भाई है अपितु इससे भी अधिक हानिकारक है। थोड़े दिनोंमें शरीर सूखकर कांटा हो जाता है। शरीर दुर्बल, आंखें लाल, मस्तीसे युक्तहड्डियां ही हड्डियां दिखायी देती हैं। न इधर के न उधरके। बुराईकी ओर ही रुचि रहती है। गांजा सेवन करनेवाला मानों जल-जल कर राख हो जाता है। भारतमें चरस तथा गांजेने जितना नाश किया है उसका वर्णन लेखनीकी शक्तिसे बाहर है। किसी चरस पीनेवालेको देखो; पता लगेगा कि लाखों ऐसे व्यक्ति हैं। भला सोचिये इस देशका क्या हाल होगा, जहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे लोग भरे हुए हों तथा जहांकी आय और देशोंकी आयसे बहुत ही कम हो।

दो चरस पीनेवाले थे। एकने मट्टीका पात्र(इसमें राख पड़ी होती है, वह थोड़ी सी अग्नि इसमें छिपाये रखते हैं कि नशा टूटनेके समय ईश्वर जाने हर जगह आग मिले या न मिले) अपने गलेमें बांधा रखा था। रातको वे सो गये। किसी एकने वह पात्र एकके गलेसे उतार कर दूसरेके गलेमें बांध दिया। प्रात:कालके समय आप लेखा करते हैं—'मैं तुम हो गया हूं वा तुम मैं हो गये।' जब यह मद(नशा) बहुत बढ़ जाता है तब मांगनेकी नौबत आती है। सारा दिन मांगते रहना और रातको सब भस्म कर देना इनका काम बन जाता है। मद्य तो कमायी हुई सम्पत्तिको लुटाती है पर यह सम्पतिकी उत्पत्ति होने ही नहीं देता। उपर्युक्त विषोंके अतिरिक्त जिनका हमने वर्णन किया और भी विष यथा धतूरा तथा संखिया आदि नशेके तौरपर भारतमें सेवन किये जाते हैं। परन्तु ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। कदाचित् ऐसा कोई-कोई देखनेमें आता है और वह भी कोई गया बीता। अतः हमने उनका पृथक्-पृथक् वर्णन नहीं किया है।

—क्रमशः

'सर्वाधिकार सुरक्षित'

सच्ची शिक्षा

मनुष्य बँधा हुआ है, अज्ञानी है। कुवासनाओंसे घिरा हुआ है, परिस्थितिसे जकड़ा है। उससे उसकी आत्मा दब गयी है। विकासके लिये उसे मौका नहीं मिलता। इन सब बन्धनोंसे जो मुक्त करे वही सच्ची शिक्षा है। शरीरको रोग और दुर्बलतासे, ज्ञानको बुरे विचारोंसे, हाथ पैर वगैरह अंगोंको निष्क्रियता से, मनको लालच, डर और क्षुद्र विचारोंसे, स्वार्थ जैसी खराबियोंसे, हृदयको कठोरतासे, मनुष्यको आर्थिक, राजनैतिक और बौद्धिक आदि सभी गुलामियोंसे जो मुक्त करे और आत्माको कृपणता या अहंकारके पंजेसे जो छुड़ा दे वही विद्या है, वही शिक्षा हैं।

—काका कालेलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्यके सहायक कुछ नियम

प्रोफेसर रमेश शर्मा

हमारे प्राचीन ऋषियोंने मनुष्य जीवनको चार आश्रमों तथा चार वर्णोंमें विभक्त कर रखा था। इनके पूर्णतया पालन होनेसे ही उस समय हमारा देश उन्नति कर सका था। आज हमारे देशकी जो अधोगति हुई है उसका प्रधान कारण इन नियमोंका सम्यक् न पालना ही है। चार आश्रमों और चार वर्णोंकी वैज्ञानिक व्यवस्था होनेसे उस समय देशमें सर्वत्र एकता और हारमनी थी और सब कार्य उत्तम ढङ्गसे होते थे तथा हमारा देश और समाज यथेष्ट समुन्नत था। इन आश्रमोंके नियमोंमें विपर्यय होनेसे ही आज हमारे देश की यह दशा है। ये आश्रम निम्न चार भागोंमें विभक्त थे—ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वाणप्रस्थाश्रम एवं संन्याश्रम। आगेके जो तीनों आश्रम हैं वे सब ब्रह्म-चर्याश्रम पर ही अवलम्बित हैं। यदि ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंका ठीक प्रकारसे पालन किया जाय तो किसी प्रकारकी भी गड़बड़ी आगे चल कर नहीं हो सकती। अतएव यदि हम अपनी और अपने देशकी उन्नति चाहते हैं तो यह बहुत आवश्यक है कि नियमानुसार ब्रह्मचर्यका पालन करें और कमसे कम नवयुवकोंका तथा बालकोंका तो ध्यान अवश्य ही इस ओर आकृष्ट करें। ब्रह्मचर्यके साधक कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं। आजकलकी प्रचलित शिक्षा प्रणाली इतनी दोषपूर्ण है कि हमारे नवयुवकोंमें जहां भारतीयताके प्रति अश्रद्धा और दोषभावना प्रवेश कर जाती है, वहां उनके अन्दर कुसंस्कारों और तज्जन्य अनेक बातोंके कारण बहुत सी बुराइयां भी घुस आती हैं। अतएव उनके लिये इन पर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

सबसे पहली बात तो यह है कि हमारे नवयुवकों को सूर्योदयसे दो घण्टे पूर्व अवश्य उठ जाना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्त्त सूर्योदयके ९६ मिनट पूर्व प्रारम्भ होता है और ४८ मिनट तक रहता है। प्रातःकृत्य ब्राह्ममुहूर्त्त की समाप्तिके पूर्व ही समाप्त हो जाना चाहिये। इससे मन दिनभर प्रसन्न, स्वस्थ और स्फूर्तियुक्त रहता है।

शय्या-त्यागके अनन्तर तुरन्त ही शौचादिसे निवृत्त होना चाहिये। मुख प्रक्षालनादि कृत्य अवश्य ही नियत समयसे और विधिपूर्वक करना चाहिये। मुंह धोनेके लिये जहां तक सम्भव हो नीम या बबूलकी दतुवन ही काममें लायी जाय। नमक तेल या अन्य प्रकारके दन्तमञ्जन भी उपयोगमें आ सकते हैं परन्तु बालू या कोयलेका तो इस हेतु स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। इसी आशयका पद्मपुराणमें एक श्लोक भी आता है—

तृणाङ्गार कपालाश्म बालुकायस चर्म्मभिः।
दन्तधावनकर्त्तारः भवन्ति पुरुषाधमाः॥

दन्तधावनादि कर्म समाप्त करनेके अनन्तर देश, काल और अपनी प्रकृतिका खयाल करके कुछ व्यायाम प्रतिदिन करना चाहिये। व्यायाम कई प्रकारके हो सकते हैं। यथा—टहलना, स्नायुओंका संकोच-विकोच बागबानी, देशी किस्मके व्यायाम, आसन प्राणायामादि। विविध व्यायाम प्रणालियों आसन प्राणायामका स्थान बहुत ही ऊंचा है। व्यायाम चाहे कोई भी किया जाय उस नियत समयसे और नियमित रूपसे करना चाहिये। अपनी शक्तिसे अधिक व्यायाम करना बुरा है। नित्य व्यायाम करनेसे रक्त शुद्ध और परिष्कृत हो जाता है तथा संचारिणी नालियोंकी सफाई हो जाती है जिससे कोई भी दूषित वस्तु जमने नहीं पाती। हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशके लिये पाश्चात्य व्यायाम-प्रणालीकी अपेक्षा देशी प्रणाली कहीं उत्तम है। अधिक फुटबाल, हाकी वगैरह खेलना हानिकर है। देशी ढङ्गके खेल, जैसे—लाठी चलाना, घोड़ेपर चढ़ना, तैरना, कबड्डी आदि अच्छे व्यायाम हैं जिनका उपयोग एतद्देशीय लोग भली प्रकार कर सकते हैं। व्यायाम कितना करना चाहिये इस विषयमें एक सर्वसाधारण नियम यही बतलाया जा सकता है कि जब आप थक जायं या आपके लिये नाकसे ही सांस लेना कठिन हो जाय तो आप समझ लें कि आपको अब इससे अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये।

व्यायाम करनेके बाद कुछ विश्राम करना चाहिये। इसके बाद विधिवत् स्नान करना चाहिये। स्नान करनेके लिये जहां तक सम्भव हो नदीकी ही शरण लेनी चाहिये। बहता हुआ जल बहुत ही उत्तम होता है। नदीके अभावमें कूप, सरोवर आदि कहीं भी स्नान किया जा सकता है। मनुस्मृतिमें लिखा है—

नदीषु देवखातेषु तड़ागेषु सरःसु च।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च॥

स्नान चाहे कुछ भी हो नित्य ही करना चाहिये। इससे शरीर स्वच्छ और पवित्र हो जाता है, मन प्रफुल्लित और स्फूर्तियुक्त हो जाता है तथा आलस्य और शिथिलता मिट जाती है। किन्तु स्नान जहां तक हो सूर्योदयके एक घण्टा पूर्व समाप्त कर देना चाहिये। घर्षण-स्नान ही सबसे अधिक गुणकारी और स्वास्थ्यप्रद है। इस प्रकार नदीमें गोता लगा लेनेसे या पानीका घड़ा ऊपर डाल लेनेसे कोई लाभ नहीं होता।

स्नानके अनन्तर कुछ देर तक किसी आसन पर बैठकर शान्त-चित्तसे भगवानका ध्यान करना चाहिये। यम-नियमादिके पालनका व्रत भी लेना चाहिये। सदा इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मैं सदा दूसरोंका भला करूंगा तथा अपनेको दुष्कर्मोंसे बचाऊंगा। यह कार्य प्रति दिन नियत समय पर करना चाहिये। इससे मनमें कुभावनाओंका प्रवेश नहीं होता तथा इच्छा-शक्ति बढ़ती है। आत्मबलकी प्रधानता होती है जिससे मनुष्य शीघ्र उन्नति करता है। यही सर्वोत्तम प्रार्थना एवं भगवानका भजन है, सत्यप्रिय और न्याय-परायण होना एवं प्रत्येक दिशामें इनके पालन करनेका व्रत लेना ही भगवानकी सेवा है। अन्य प्रकारकी प्रार्थनाएं, जो लोग किया करते हैं कुछ विशेष लाभप्रद नहीं होतीं। इसका कारण यह है कि उनमें कृत्रिमता होती है। प्रार्थना करनेवाला प्रायः प्रार्थनाके मन्त्रोंको ही नहीं समझता, फिर भला वह कैसे अपना सुधार कर सकता है। दीन हीन बनकर भिक्षा मांगनेसे कोई लाभ नहीं होता। भीख मांगने वालेको भी कभी कुछ मिलता है? यदि आपमें शक्ति हो, क्षमता हो तो सभी कुछ प्राप्त कर सकते हैं। अतएव सबसे बड़ी बात यह है कि आप शक्ति और क्षमता प्राप्त करें। उसके बाद तो आप जो चाहेंगे हो जायगा। इच्छा और उसकी पूर्ति तत्काल होगी। किसीसे मांगने या प्रार्थना करनेकी आवश्यकता न रहेगी। इस बुरी आदतको छोड़ देना ही अच्छा है।

वीर्यरक्षाकी कामना करनेवालोंको भोजन जलपान आदिपर भी पूरा ध्यान देना चाहिये। प्यास लगनेकी दशामें सदा शुद्ध और ताजा जल पीना चाहिये। सोडा लेमनेड तो भूलकर भी न छूना चाहिये। इनसे प्यास तो जाती ही नहीं है उलटे हानि होती है और पैसेका अपव्यय होता है सो अलग। भोजनके मामलेमें भी बहुत सावधान रहनेकी जरूरत है। उत्तेजक चटपटे पदार्थोंका खाना अपनी शामत बुलाना है। आजकल अधिक खाना भी एक व्यसन हो गया है। लोग बिना विचारे जब जो मनमें आया खा लिया करते हैं। वे इस बातका तनिक भी विचार नहीं करते हैं कि पहलेकी खायी हुई चीज पची या नहीं। जब स्वादेन्द्रियने किसी चीजको मांगा उन्होंने उसको देनेका निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया। इस बातका वे तनिक भी विचार नहीं करते कि इस प्रकार अनावश्यक रूपसे पेटमें पदार्थ ठूंसते रहनेसे लाभके बदले हानि ही अधिक होती है। अति भोजन करनेवाला कभी भी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। इसके साथ ही साथ उत्तेजक पदार्थोंका सेवन भी बुरा है। उनसे भी वीर्य रक्षा नहीं हो सकता। अतएव खान-पानके मामलेमें नियमितता और सादगी का समुचित ध्यान रखना चाहिये।

नशा करनेवाली भी कोई चीज कभी नहीं ग्रहण करनी चाहिये। पान, बीड़ी, सिगरेट, चाय, काफी, कोको, भांग, गांजा, शराब, अफीम आदि बड़ी ही घातक वस्तुएं हैं। ब्रह्मचारीको तो इनका भूलकर भी स्पर्श नहीं करना चाहिये।

इनके अतिरिक्त मनुष्यको अपनी प्रवृत्तियों, अपने विचारों और अपनी चेष्टाओंपर भी पूरा नियंत्रण रखना चाहिये। ब्रह्मचर्य-पालन अथवा वीर्यरक्षाके जो कतिपय नियम ऊपर दिये गये हैं वे बाहरी अथवा ऊपरी हैं। किसी भी कार्यको यदि आप करने चलें तो जबतक आपके मन और कर्म सर्वथा उसमें दृढ़ता पूर्वक न लगे रहें तबतक कोई सफलता नहीं मिलती। इसलिये यदि ब्रह्मचर्यका पालन करना है तो उस दशामें भी इस बातका ध्यान रखना होगा कि हमारा यह कार्य, मन, विचार और कर्म तीनोंके अनुरूप हो। बाह्याचरण ही कर्म है। मनकी दशाके अनुसार ही विचार बनते हैं। इसलिये मनपर नियन्त्रण रखना, मनको वशमें रखना बहुत ही आवश्यक हो जाता है। यदि कोई आदमी मानसिक पापमें लीन रहता है तो वह वाह्याचरण कितना भी पवित्र रखे उससे कुछ लाभ नहीं और वह अपनी कर्मेन्द्रियोंपर सदा नियन्त्रण रख भी तो नहीं सकता। यदि उसके विचार दूषित होंगे, यदि उसके मनमें कुभावनाएं उठती रहेंगी तो भला यह किसप्रकार सम्भव है कि वह अपना आचरण ठीक रखे। सदोष मन होनेसे उसके विचार गन्दे होंगे और विचार बुरे होनेसे कर्म बुरे होंगे। इसलिये ब्रह्मचर्य-पालनका व्रत लेनेवालेको सबसे पहले अपने मनको ठीक रखना चाहिये। मनकी इच्छाओंका, वासनाओंका दमन करना चाहिये। मन कुछ भी मांगे उसपर पहले विचार करना चाहिये। यदि वह बुद्धि युक्त और अपने सिद्धान्त और विचारोंके अनुकूल हो तो उसकी पूर्ति करे अन्यथा उसको वहीं समाप्त कर दें। विवेक बुद्धि हमें ईश्वरने इसीलिये दी है कि हम उससे भले बुरेकी पहचान करें। भगवान कृष्णने कहा है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परंमनः
मनसस्तु परा बुद्धिः················ ॥

अथात् मन आदि सबसे ऊँचा दरजा बुद्धिका है। यदि मनुष्यकी बुद्धि ठीक रहे तो वह सभी कुछ अपने लाभके लिये कर सकता है।

कहनेका अभिप्राय यह है कि हमारे पास बुद्धि नाम की एक ऐसी चीज है जिसका आश्रय लेकर हम अपनेको बचा सकते हैं। यदि हमारी बुद्धि अच्छी रहेगी तो हम कुमार्गकी ओर नहीं प्रवृत्त हो सकते। यदि हमारी बुद्धि दुष्ट रहेगी तो हम पतनकी ओर तेजीसे बढ़ जायंगे। बुद्धि अच्छी रहनेसे ही हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान ही तो सब कुछ है।

बुद्धिको ठीक रखनेके लिये तथा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हम एक उपायका आश्रय ले सकते हैं। वह यह कि अच्छे रास्तेपर चलें। महाराज युधिष्ठिरने यक्षके यह पूछनेपर कि अच्छा रास्ता कौन सा है कहा था—

महाजनो येन गतः स पन्था।

पूज्य महात्माओं द्वारा निर्दिष्ट पथपर चलकर ही हम ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते हैं और अपनी उन्नति कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श दिनचर्या

निद्रात्याग—रातमें जल्दी सो जाना और प्रातःकाल जल्दी उठना ही स्वास्थ्यकी कुञ्जी है। ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर ईश्वरका चिन्तन करे। इस समयको अमृत वेला भी कहते हैं। लगभग ४॥ बजे मनुष्य मात्रको निद्रा-त्याग कर देना चाहिये। इस समय शरीर, इन्द्रियां, बुद्धि आदि स्वच्छ और विमल रहती हैं। इस समयकी वायु स्वास्थ्यकी वृद्धि करती है और निद्रा-त्याग करने से शरीर और मनमें दिन भर स्फूर्ति बनी रहती है साथ ही क्रमशः तेज और ओजकी वृद्धि होती है। इस समय उठनेसे स्वप्न-दोष नहीं होता ऐस भी विद्वानोंका मत है। निद्रा-त्याग करते ही जल स्पर्श करना चाहिये। आंख और मुंह धो डाला जाय और हो सके तो थोड़ा पानी पी लिया जाय। पानी पीनेका अभ्यास पेटकी शिकायत रखनेवाले व्यक्तियोंको लाभकर है। और जिन्हें कब्जियत हो वे तो अवश्य ही इसका व्यवहार करें।

शौच—निद्रा-त्यागके बाद ही मल-त्याग कर देना आवश्यक है। यदि तत्काल ही मल-त्याग न किया गया तो उस समयकी शारीरिक एवं मानसिक स्वच्छता नष्ट हो जाती है। देरतक सोते रहने और मल-त्याग न करनेसे एक प्रकारकी गैस (वायु) उठती है जो शरीरके ऊपरी भागोंकी ओर चलती है जो शरीर और क्रमशः मस्तिष्कको हानि पहुंचाती है। मल-त्याग भी दो बार सुबह और शाम अवश्य ही करना चाहिये। मल-मूत्र-त्यागमें जल्दी न करनी चाहिये। मल-मूत्रकी शङ्काको किसी समय भी रोकना नहीं चाहिये, रोकना स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है।

दांतोंकी सफाई—मल-त्यागके बाद ही दांत साफ कर लेना अच्छा है। दांतोंकी सफाईके लिये नीम, बबूल आदिके दतुवन अच्छे होते हैं। देशी मञ्जन भी काममें लाया जा सकता है। इस अवसरपर साफ पानीसे कुल्ला आदि करना तथा खांसकर बलगम आदि निकालना चाहिये। दांतकी एक नसका सम्बन्ध मस्तिष्कसे होता है अतः बुद्धिपर उसकी सफाई और गन्दगीका असर पड़ता है। यदि दांत और मुंह गन्दा रहा तो उसके विकार पेटमें जायंगे जिसका परिणाम अत्यन्त भीषण होता है। दांतोंके साथ जीभको साफ रखना आवश्यक है।

स्नान—स्नान प्रातःकाल शीतल जलसे ही करना चाहिये। जाड़ेके दिनमें यदा-कदा गर्म जलसे स्नान करना हानिकारक नहीं है, लेकिन यह ध्यान रहे कि सिरपर गर्म जल कदापि न पड़े। मोटे तौलिये या गमछेसे खूब रगड़-रगड़कर स्नान करनेसे शरीरका मल दूर होता है। घर्षण स्नान शरीरकी सफाई तथा रोमकूपोंसे मल-पसीना—निकालनेकी सर्वोत्तम रीति है। घर्षणसे त्वचा सुन्दर और मुलायम होती है। स्नानसे अग्नि और बलकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि एवं दीर्घायु प्राप्त होती है। स्नान दो बार गर्म ऋतुमें आध घण्टे और जाड़ेमें १५ मिनट करना चाहिये। सूर्योदयके पहले स्नान करना लाभकर है।

संध्योपासना—स्नानके बाद ही मनुष्यको सन्ध्या, पूजा एवं ईश्वरोपासनामें रत हो जाना चाहिये। यह कर्म एकान्त और शुद्ध स्थान तथा खुली हवामें करना चाहिये। इनसे मनकी शुद्धि प्राप्त होती है और मुखकी कान्ति बढ़ती है। जो सन्ध्या की जाय उसके श्लोकादि का अर्थ जानना चाहिये। प्राणायाम करना अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभकर है। दोनों समय संध्योपासना करनी चाहिये। ईश्वरका ध्यान सदैव रहे।

व्यायाम-- व्यायामसे स्फूर्ति, क्रियाशक्ति, अग्निवृद्धि, चर्बीका क्षय होता है और शरीरके समस्त भाग बलिष्ठ एवं यथोचित रूपसे पुष्ट और सुन्दर होते हैं। स्वास्थ्य को बचाये रखने बुढ़ापेको रोकने तथा स्वास्थ्यवर्द्धक भोजनको पचानेके लिये व्यायाम अत्यावश्यक है। इससे पसीनेके द्वारा गन्दगी दूर होती है और द्वारा रक्त प्रवाह एवं फेफड़ोंमें रक्तकी विमलता प्राप्त होती है। व्यायाम उतना ही करना चाहिये जितना शरीर सह सके। खुली हवामें टहलना सर्वोत्तम व्यायाम माना गया है। अन्य प्रकारके व्यायामादि भी लाभकर हैं। कसरत के समय लंगोटा बांधना भी आवश्यक है। व्यायामके बाद सहसा जलपान या स्नान न करना चाहिये। व्यायामके कमसे कम आध घण्टे बाद जिनकी पाचनशक्ति ठीक है वह दूध अथवा फलका रस पी सकता है, ठोस खाना हानिकारक है। नौ बजेके पहले भोजन नहीं करना चाहिये।

भोजन—प्रथम भोजन १२ बजेके पहले अवश्य कर लेना चाहिये। भोजन सर्वथा सात्विक होना स्वस्थ रहनेके लिये आवश्यक है। गरिष्ट, मिर्च-मसालेदार, तली हुई चीजें बासी, उष्ण आदि चीजें नहीं खानी चाहिये। इससे वीर्य क्षीणता शक्तिहीनता आदि रोग एक साथ आक्रमण करते हैं और बहुधा अकाल मृत्युका कारण भी यही होता है। भोजन ईश्वरका ध्यान करके शान्ति पूर्वक तथा स्वच्छ और पवित्र मनसे करना चाहिये। भोजन खूब चबा-चबाकर करना चाहिये। प्रत्येक ग्रासको इतना चबा डालना चाहिये कि वह थूक के माफिक हो जाय। थूक (राल) में पाचन शक्ति होती है। भोजनके आध घण्टे पहले तथा भोजनके बीचमें थोड़ा जल पिया जा सकता है लेकिन भोजनके बाद जल पीना हानिकारक है। भोजनका स्थान स्वास्थ्यकर, हवादार और शुद्ध होना चाहिये। भोजन ऐसा हो कि वायुके लिये थोड़ा-सा स्थान खाली रहे। ठूंस-ठूंसकर खाना अत्यन्त हानिकारक है। जलकी प्यासको कभी न रोकना चाहिये। पीनेकी चीजोंको धीरे-धीरे पीना चाहिये, गटागट पीना आयुके लिये हानिकारक है। भोजनके बाद १०० कदम धीरे-धीरे टहलना चाहिये लेकिन दौड़ना या मेहनत करना हानिकारक है। भोजनके एक घण्टे बाद पानी पीना चाहिये। साधारणतः दो बारसे अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। शामको ८ बजेके पूर्वही भोजन कर लेना चाहिये। सुबह और शामके भोजनोंके बीचमें पीनेकी चीज लेनी चाहिये, ठोस चीज नहीं खानी चाहिये। भोजनके साथ या सोनेके एक घंटा पहले दूध पीना चाहिये।

जल पीकर पेशाब करके और हाथ-पैर धोकर ईश्वर भजन करते हुए सोना चाहिये। १० बजेके पहले सो जाना चाहिये।

ग्राहकोंकी सेवामें निवेदन किया जाता है कि वे पत्र भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें अन्यथा उनके पत्रोंपर विचार हो सकना सम्भव नहीं है। —व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात्विक जीवन ग्रन्थमाला

प्रथम पुष्प—

ब्रह्मचर्य नाटक

रङ्गमञ्च सफलता पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं, हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य केवल ॥)।

द्वितीय और तृतीय पुष्प

आध्यात्मिक शिक्षावली

आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू धर्म और अध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया है। आज ही मंगा कर पढ़िये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रथम खण्ड ।॥), द्वितीय खण्ड ।॥)

चतुर्थ पुष्प—

सचित्र हठयोग (सजिल्द)

(आसनोंके ३८ चित्रों सहित)—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है वह अन्य कई पुस्तकें पढ़कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान योगी हैं। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक दूसरी नहीं है। मूल्य केवल १), स्थायी ग्राहकोंसे ।॥)।

प्रशंसा-पत्रके लिये कवरका चौथा पृष्ठ देखिये।

पञ्चम पुष्प—

स्वामी शिवानन्दजीकी जीवनी और उनके उपदेश (अंग्रेजीमें)

प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी जीवनी और उनके उपदेशोंका सार संग्रहीत है। स्वामीजीकी जीवनी तथा उनके उपदेशोंका एक ही स्थानपर संग्रह करनेका अभिप्राय यही है कि लोग उनके जीवनकी घटनाओंको उनके उपदेशोंके प्रकाशमें देखें और अपने जीवनको भी तदनुकूल बनानेका प्रयत्न करें। यह पुस्तक विशेषकर उन लोगोंके लिये लिखी गयी है जो स्वामीजीके सभी ग्रन्थ नहीं खरीद सकते। पुस्तकमें प्रयुक्त भाषा सरल तथा सुबोध है। साधारण अंग्रेजी जाननेवाला व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता है। बीसों चित्रोंसे सुशोभित सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल १॥)

स्थाई ग्राहकों तथा थोक खरीददारोंको पर्याप्त कमीशन दिया जायगा

प्रकाशक—

जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

112919

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

(१) जीवन सौरभ

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानके हाथमें दें। मूल्य केवल ।-) ।

(२) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल -)

(३) सदाचारका महत्व—

पुस्तकके सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्ग पर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

(४) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवनकी दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमीटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

(५) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास—

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन हुआ तो अवश्य है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

(६) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अब तकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति स्थान, समयकी सूचना और उस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमीटेशन आर्ट पेपरपर साइज २०"×३०", दो रङ्गोंकी मनोहर, छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

जेनरल प्रिण्टिंग वर्क्स लि०, ८३ पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचार डायरी १९४२ मूल्य ।-)

विद्यार्थियों तथा नवयुवकोंको अद्वितीय उपहार

आज विश्वमें जो इतना अज्ञान फैला हुआ है, मानव जाति उन्नति तथा विकासके पथसे फिसल कर पतनकी ओर जो द्रुत गतिसे बढ़ती जा रही है इसका प्रधान कारण प्राचीन ऋषियों द्वारा बतलाते हुए मार्गका परित्याग ही है। ऋषियोंके पद-चिन्होंका अनुकरण करनेके बजाय हम पाश्चात्य सभ्यताकी चकाचौंधमें आ गये, हमारे भीतर नयी रोशनीकी चकाचौंधसे अन्धकार छा गया और परिणामस्वरूप हम कुसंस्कारोंमें पड़ गये। सन्मार्ग पर चलनेके स्थान पर हम कुमार्गपर चलने लगे, इसलिये जहां हम विश्वका सर्वतोमावेन नेतृत्व करते थे वहां अनुकरण करने लगे और अनुकरण भी ऐसा कि जिसने हमें गड्ढेमें गिरा दिया। जिनके हम सिर-मौर थे उनके पादत्राण भी नहीं बनने योग्य हैं। हमारी दुर्दशाका और क्या रूप होगा। अब भी तो हमें मोह-निद्रासे जागना चाहिये। देशको इस महानिद्रासे बचानेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम अपने युवकोंको उन्हीं नियमोंके अनुसार चलनेके लिये प्रेरित करें जिनका निर्देश हमारे महर्षियोंने किया है।

इन नियमोंकी जानकारी आप सदाचार डायरी

छपाई, बंधाई, साइज आदि अति उत्तम है।	१९४२ से कीजिये	कागजके मूल्यमें इतनी अधिक वृद्धि होनेपर भी इसका मूल्य गत वर्षकी भांति केवल पांच आने रखे गये हैं।

जेनरल डायरी (रजिस्टर्ड) १९४२ मूल्य ।-)

हमारी डायरियोंमें जेनरल डायरीकी अपनी निजी विशेषता है। इसमें दैनिक व्यवहारकी तथा डाक, तार, बधाईके तार, चिट्ठी-पोस्टकार्ड, रेल आदि इनकम टैक्स, सुपर टैक्स, स्वास्थ्य, सदाचार सम्बन्धी अनेक बातें दी गयी हैं और साथ ही साथ साधारण ज्ञानकी बहुत सी ऐसी बातें दी गयी हैं जिनकी आवश्यकता हमारे प्रति दिनके कामोंमें पड़ती है। कागज अच्छा और गेट-अप आकर्षक, फिर भी मूल्य केवल पांच आने।

प्रकाशक—

जेनरल प्रिण्टिंग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहक बनिये ! ग्राहक बनाइये !!

शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास सम्बन्धी प्रमुख मासिक

जिसमें ब्रह्मचर्य, सदाचार, स्वास्थ्य आरोग्यता, नैतिक विकास, मानव जातिकी क्रमिक उन्नति,

सात्विक जीवन

आध्यात्मिक विकास आदि पर विचार पूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं।

देशके प्रतिष्ठित विद्वानों तथा सार्वजनिक कार्यकर्ताओंने मुक्तकण्ठसे 'सात्विक जीवन' के उद्देश्यों एवं प्रकाशनकी प्रशंसा की है। उन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि ऐसे संकटकालमें जब कि भारतीय ही क्यों, समस्त मानव जाति अधःपतनकी ओर अग्रसर होती जा रही है तथा धर्म, सदाचार एवं नैतिक बलका ह्रास हो रहा है 'सात्विक जीवन' जैसे पत्रकी विशेष आवश्यकता है।

अनेकमें-से कुछ सम्मतियां—

(१) माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन—'सात्विकजीवन' के कुछ अङ्क मुझको मिले। मैंने इन अंकोंका देखकर यह समझा है कि जीवनमें पवित्रता लाना 'सात्विकजीवन' का ध्येय है ····मैं पत्रका हृदयसे स्वागत करता हूँ।

(२) श्री युगलकिशोर बिड़ला—........पत्रको देखनेसे पता चलता है कि कई लेख विशेष हितकर और आर्य संस्कृतिके गौरवको प्रकट करनेवाले हैं। आपका उद्योग प्रशंसनीय है। मुझे आशा है कि आपके पत्र द्वारा अधिकाधिक आर्य संस्कृतिके गौरवका विस्तार होता रहेगा।

(३) पं० ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्य, मालिक अमृतधारा, लाहौर—'सात्विक जीवन' देखकर प्रसन्नता हुई, क्योंकि केवल सदाचार सम्बन्धी पत्र देखनेमें नहीं आये। पत्र सदा उन्नति करे ऐसी हमारी कामना है।

(४) श्री बृजलाल वियाणी, अकोला—'सात्विक जीवन' जैसे पत्रोंकी देशको अत्यन्त आवश्यकता है। मैं 'सात्विक जीवन' की हृदयसे प्रगति चाहता हूँ। मुझे आशा है कि 'सात्विक जीवन' अपने ध्येयकी प्राप्तिमें सफल होगा।

(५) सम्पादक 'आर्यमहिला'—'सात्विक जीवन' का जन्म भारतके उज्वल भविष्यका द्योतक है - इसकी शैशवकालीन आभा हमें इस बातका पूर्ण विश्वास दिलाती है। हम हृदयसे इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि चाहते हैं।

(६) आचार्य, अभयदेवजी गुरुकुल कांगड़ी—आपका पत्र बहुत उपयोगी बातोंको बतानेवाला होता है। और मनुष्योंको उच्च जीवनकी तरफ प्रेरणा देनेवाला होता है।

(७) व्याकरणाचार्य श्री नारायणदत्त त्रिपाठी, प्रधानाध्यापक, मारवाड़ी संस्कृत कालेज, काशी—इस पत्रको देखकर मुझे अतीव हर्ष हुआ। मैं विश्वेश्वर विश्वनाथसे प्रार्थना करता हूं कि 'सात्विक जीवन' मनुष्य जगत्के ऊपर अपनी छाप डालकर उनके जीवनको सात्विकतापूर्ण बनाये।

वार्षिक मूल्य ३), विद्यार्थियों, पुस्तकालयों एवं विद्यालयोंसे २), नमूनेके लिये ।) का टिकट भेजें।

'सात्विक जीवन' कार्यालय

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हो गयीं ! अभी आर्डर भेजें !!

भारतकी सुप्रसिद्ध सर्वोपयोगी अद्वितीय डायरियां

(१) राष्ट्रीय डायरी (रजिस्टर्ड) मूल्य ।=)

१९३९ की डायरी ५००० }
१९४० की डायरी २०,००० } प्रकाशित हुई।

तथा १९४१ की डायरी ज़ब्त हो गयी

राष्ट्रीय डायरी की प्रशंसा भारत के सभी प्रतिष्ठित पत्रोंने की है।

१९४२ की डायरी में ४३ नेताओंके चित्र तथा उनके जीवन परिचय दिये गये हैं तथा पहलेके सभी वर्षोंकी डायरियोंसे अधिक आकर्षक व उपयोगी बनाया गया है।

(२) सदाचार डायरी १९४२ मूल्य ।-)

(३) जेनरल डायरी (रजिस्टर्ड) १९४२ मूल्य ।-)

कागजके अभावसे डायरी बहुत कम संख्यामें छापी गयी है अत: अपना आर्डर शीघ्र भेजें।

थोक खरीददारों तथा पुस्तक विक्रेताओंको काफी कमीशन व विज्ञापनकी सुविधाएं दी जायंगी।

प्रकाशक—

जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

फोन बड़ाबाजार २१०४ तारका पता '*Bhaikashi*'

सभी रैलवे बुक स्टालों पर बिकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Regd. No. D. 2175.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र हठयोग (सजिल्द)

(आसनोंके ३८ चित्रों सहित)

अनेकमेंसे कुछ सम्मतियां

आज—काशी—प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्री स्वामीजी एक महान योगी हैं। आपकी पुस्तकोंका सात्विक जीवन ग्रन्थमाला नाम देकर कलकत्तेके जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्सने प्रकाशन किया है। उसीका यह चतुर्थ पुष्प है। अभ्यासीकी कठिनाईका पूरा ध्यान रखकर श्री स्वामीजीने हठयोग जैसे विषयको इस उत्तम और सरल ढङ्गसे समझाया है कि देखकर आश्चर्य होता है। गुरुकी सहायताके बिना भी इस पुस्तककी सहायतासे अभ्यास करना सुगम है। हमारी रायमें पुस्तक सबके पास होनी चाहिये। उपयोगिताको देखते हुए सजिल्द पुस्तकका दाम कोई अधिक नहीं है।

नव भारत नागपुर—प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्री स्वामीजी विश्वविश्रुत योगी हैं। हठयोग जैसे कठिन विषयका वर्णन इस उत्तम ढङ्गसे किया गया है कि साधक बिना गुरुकी सहायताके इसमें वर्णित आसनादिका अभ्यास कर सकता है। भाषा बोधगम्य और स्पष्ट है। पुस्तक काफी अच्छी बन पड़ी है। अबाल वृद्ध सभी इससे एक साथ लाभ उठा सकते हैं। प्रकाशकको हम धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिसने केवल एक रुपयेमें ऐसी सजिल्द और सचित्र पुस्तक प्रकाशितकर जनताका कल्याण किया है। हम ऐसी पुस्तकका घर-घर प्रचार चाहते हैं।

लोकमान्य कलकत्ता—यह पुस्तक यौगिक क्रियाओंके साधकोंके लिये नहीं वरन् सर्वसाधारणके लाभार्थ लिखी गयी है। यह साधकोंके लिये सहायक और सर्वसाधारणके लिये स्वास्थ्यदायक सिद्ध होगी। इसमें आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध आदि प्रकरण हैं। पुस्तक [illegible]

वीर अर्जुन देहली—सचित्र हठयोग—यह पुस्तक मुख्यतया हठयोगके आसन-व्यायामोंका परिचय देनेके लिये लिखी गयी है—ऐसे आसन व्याख्याके लिये चुन लिये गये हैं जो व्यायाम और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे स्त्री-पुरुष मात्रके लिये उपयोगी हैं। इन आसनोंका श्रेणी-विभाग भी ऐसे ढंगसे किया गया है कि नियमसे आसनोंका अभ्यास करनेसे अभिलाषीको वे सुगमतापूर्वक याद हो सकते हैं। उसे बार-बार पुस्तक देखनेकी आवश्यकता नहीं होगी। आसनोंके वर्णनके साथ-साथ स्पष्ट मुद्रित चित्र होनेके कारण उनका समझना और भी सरल हो गया है।

लोकमत नागपुर—........ "हठयोग" उजड़े हुए हिन्दुस्तानको पुनः हरा-भरा बनानेकी शक्ति रखता है।........पुस्तकके अन्दर स्त्री-पुरुषोंके लिये शीर्ष, सर्वाङ्ग, पश्चिमोत्तान, हल, मत्स्य, भुजंग, शलभ, मयूर आसनोंके ३८ चित्र हैं। तथा ....प्राणायामोंका सरल सुबोध वर्णन है।........निश्चय ही पुस्तक संग्रहणीय और पठनीय है। तथा साहित्यके अन्दर अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड, ८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Printed & published by Ruliaram Gupta at the General Printing Works, Ltd. 83, Old China Bazar Street Cal.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar